ISSN-2993-4648

शोध उत्कर्ष

Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly
International E-Journal

https://shodhutkarsh.com/

वर्ष - 04, अंक 13

जनवरी – मार्च-2026

अतिथि संपादक – प्रो.डॉ.शशिकांत 'सावन'

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly international E- Research Journal
वर्ष-04 अंक - 13 जनवरी - मार्च -2026

सलाहकार मण्डल (Advisory Board)

Shri Jai Prakash Pandey
Director-Department of Education And Literacy, Ministery Of Education, Govt.Of India.
Prof. Prabha Shankar Shukla
Vice Chancellor North Eastern Hill University (NEHU) Shillong
डॉ. कन्हैया त्रिपाठी पूर्व (OSD),महामहिम राष्ट्रपति 'भारत'
प्रो. दिनेश कुशवाह,रीवा (म.प्र.)
प्रो. राजेश कुमार गर्ग प्रयागराज (उ.प्र.)
प्रो. अनुराग मिश्रा द्वारका, नई दिल्ली
प्रो. के. एस. नेताम सीधी (म.प्र.)
डॉ.एम.जी. एच. जैदी पन्त नगर (उत्तराखण्ड)
डॉ.राजकुमार उपाध्याय 'मणि' बठिंडा (पंजाब)
डॉ. संगीता मसीह शहडोल (म.प्र.)
डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव मोतिहारी विहार
डॉ. अनिल कुमार दीक्षित,भोपाल (म.प्र.)
श्री संकर्षण मिश्रा ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड
प्रो.एम.यू.सिद्दीक़ी सिंगरौली (म.प्र.)
डॉ. बी.पी. बडोला (हिमांचल प्रदेश)
डॉ.अजय चौधरी,नागपुर (महारष्ट्र)
श्री प्रदीप कुमार- मूल्यांकक केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली
डॉ. रेणु सिन्हा,रांची- (झारखंड)
डॉ. निशा मुरलीधरन,वड़पलनी- चेन्नई
डॉ. अंजलि एस. एर्नाकुलम, (केरल)
श्री पांडुरंग एस. जाधव बेंगलुरु, (कर्नाटक)

संपादक मंडल

प्रधान संपादक -डॉ. एन. पी. प्रजापति सह संपादक - प्रो.यूरी बोत्वीकिन तारास शेव्चेंको कीव (युक्रेन), प्रो.सिराजुद्दीन नूर्मतोव (उज़्बेकिस्तान गणराज्य) प्रो. रीनू रानी मिश्रा (उत्तराखंड), डॉ. संतोष कुमार सोनकर अमरकंटक (म.प्र.)प्रो. मोहन लाल 'आर्य' निदेशक एवं डीन IFTM (U.P.) डॉ. बालेन्द्र सिंह यादव, उँचाहार–रायबरेली(उ.प्र.) डॉ.उमाकांत सिंह सिंगरौली (म.प्र.) कैप्टन डॉ.बाबासाहेब माने पुणे (महाराष्ट्र) प्रो। चंद्रकांत सिंह (धर्मशाला) डॉ. जगदीश कन्नौजे (इंदौर)डॉ. सुनंदा मरावी (छ.ग.)प्रोमिला देवी (नार्वे)डॉ. शतीश पिपलोदे(भोपाल)

लेख भेजने के लिए :– Mail-ID-shodh utkasrsh@gmail.com नोट:- पत्रिका में प्रकाशित लेख / शोध आदि में विवाद की स्थिति में लेखक /शोधार्थी स्वयं जिम्मेदार होंगे. पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें:-

Website:–http:// www.shodhutkarsh.com

प्रकाशक :-

Radha publications

Mail id-radhapub@gmail.com **फोन** -087505 51515, 9350551515 **Website:**-https://radhapublications.com

पता :-4231, 1, Ansari Rd, Delhi Gate, Daryaganj, New Delhi, Delhi, 110002

दलित उत्कर्ष समिति द्वारा प्रकाशित

शोध उत्कर्ष

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Research E-Journal

वर्ष-04 अंक –13 जनवरी - मार्च - 2026

Table of Content

S.N.	Title and Name of Autho(s)	Page No.
	संपादकीय...	5
1.	हिंदी कविता में राष्ट्रीय-चेतना बोध - **प्रो. (डॉ.) विजयकुमार रोडे**	6-7
2.	भारतीय ज्ञान परंपरा की वर्तमान प्रासंगिकता- **डॉ. प्रमोद पडवळ**	8-10
3.	बैगा जीवन शैली में पारंपरिक ज्ञान और शब्द-संपदा - **डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय & डॉ. रुचि मिश्रा तिवारी**	10-14
4.	'विष्णु पुराण में भारतबोध'- **डॉ. अनिल कुमार सिंह**	14-17
5.	संत काव्य परंपरा में संघर्ष -चेतना एवं जीवन-मूल्य - **डॉ. जितेंद्र गौतम**	17-19
6.	हिन्दी भाषा सीखने वाले विदेशी विद्यार्थियों पर भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव का विश्लेषण-**डॉ. दीपामणि बरुवा & डॉ. अभिजीत प्रसाद**	20-22
7.	खेलों में करियर अवसरों का अनावरण: नियम, आय एवं राष्ट्रीय व वैश्विक स्तर पर औद्योगिक प्रभाव- **श्रीमती साधना यादव**	23-25
8.	नए व्यवसायों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव- **डॉ. श्वेता कुमारी**	25-26
9.	सांप्रदायिकता के संदर्भ में असगर वजाहत के कथा-साहित्य : एक अद्ययन- **अन्सिफा नवास & डॉ. अंजली एस.**	27-29
10.	आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से युवा पीढ़ी का व्यक्तित्व निर्माण - **डॉ राकेश कुशवाहा**	29-32
11.	भारत में शिक्षक – शिक्षा की नवीन धारणा - **डॉ.उमा बणिचुल**	32-33
12.	अकेलेपन का सौंदर्यशास्त्र: समकालीन हिंदी कविता में आधुनिक मनुष्य की आंतरिक दुनिया - **डॉ.सलीजा ए पी**	33-35
13.	सूर्यबाला के 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में स्त्री स्वत्व की विश्लेषण - **श्री लक्ष्मी. वी & डॉ.अंजली. एस**	36-37
14.	ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में व्याप्त सामाजिक समस्याएँ - **डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय & संजीव कुमार वर्मा**	37-38
15.	Marginalization and poverty: A study of the social status of tea garden labourers of Badla Batá tea estate in Tinsukia district and its impact on children - **Ms. Joymati Panika & Prof. Stuti Deka**	39-44
16.	Role of NEP 2020 in Promoting Indian Knowledge Systems in Curriculum and Pedagogy- **Dr. Govind Kumar Rohit**	45-49
17.	भारतीय ज्ञान परंपरा तथा हिन्दी साहित्य- **डॉ. सुधामणि एस.**	49-50
18.	Indigenous Knowledge, Tribal Mobilization, and Green Innovation: A Holistic Approach Towards Development- **Mr. Sachidananda Rath & Prof. Usha Vaidya**	51-56
19.	खड़ी बोली के साहित्य निर्माण में भारतेंदु हरिश्चंद्र की भाषाई नीति - **रोहित मिश्रा**	57-58
20.	आचार्य चतुरसेन के 'श्रीराम' में रस-निष्पत्ति - **हरमनजोत कौर**	59-60
21.	धूमिल के काव्य में सत्ता-संघर्ष - **जय कुमार तिवारी**	61-63
22.	अकाल में उत्सव- समकालीन भारतीय ग्रामीण समाज का प्रतिरूप - **प्रो.प्रिया**	63-65
23.	आतंकवाद-विरोधी गतिविधियाँ - **डॉ. लाल बहादुर राम**	66-68
24.	बदलते वैश्विक परिदृश्य में भारत के समक्ष चुनौतियों के समाधान में ग्राम पंचायतों की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन-**मौ.सुलेमान & प्रोफेसर (डॉ.) दिनेश सिंह**	69-72
25.	वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में चरित्र- चित्रण - **जोशी सुनिल कुमार भावेशभाई**	72-73
26.	Applications of Fungal Pigments: A Sustaibable Approach Across Industries- **Harsh Bag-dare[1], Mukesh Kumar Katakwar[2], Ishwar Bharti[3], Indira Khale[4], Satish Piplode[5] Rohit Sharma[6], Vinars Dawane,[7]**	74-77
27.	भारतीय ज्ञान परम्परा के विविध आयाम- **डॉ. शबनम खान**	78-79
28.	बालिकाओं के शैक्षिक विकास में महात्मा गांधी का योगदान - **रागिनी गौतम**	80-81
29.	छापा कला में भारतीय महिला छापाकारों का योगदान - **आशुतोष त्रिपाठी & (प्रो.)डॉ.जया जैन**	82-83

संपादकीय ...

आधुनिक अनुसंधान : अभिव्यक्ति के विविध आयाम

बहुआयामी शोधकार्य को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय शोधपत्रिका 'शोध उत्कर्ष' का संपादकीय लिखते हुए ,अनुसंधान के विविध आयामों को निकट से अंतर-बाह्य रूप में देखने का प्रयास कर रहा हूं। सृष्टि के सृजन से या उससे भी पूर्व आरंभ हुई इस शोधकार्य की परम्परा अखंडित रूप से आज हम तक विविध रूपों में आ पहुंची है। शोध की अनेक दिशाओ और दशाओं को अनुसंधान ने विश्व के सामने अबतक प्रस्तुत किया है। नए सिद्धांतों तथा तथ्यों को भी अन्वेषण ने बारी बारी उजागर किया है। विविध धारणाओं और मूल्यों की पुनरव्याख्या अन्वेषण के द्वारा होती रही है । इसलिए अन्वेषण सत्य के धरातल की एक सक्षम कड़ी है। आधुनिक युग ज्ञान, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास का युग है। इस विकास की प्रक्रिया में अनुसंधान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनुसंधान के माध्यम से नई अवधारणाएँ, विचार, सिद्धांत और ज्ञान के विविध आयाम सामने आते हैं। आधुनिक अनुसंधान केवल विज्ञान तक सीमित नहीं रहा, बल्कि साहित्य, समाजशास्त्र, इतिहास, संस्कृति, भाषा, कला तथा मानविकी के विभिन्न क्षेत्रों में भी इसकी प्रभावी अभिव्यक्ति दिखाई देती है। अनुसंधान मानव की जिज्ञासा और ज्ञानार्जन की स्वाभाविक प्रवृत्ति का परिणाम है। जब मनुष्य किसी विषय के बारे में गहराई से सत्य की खोज करता है, तो वह अनुसंधान की प्रक्रिया में प्रवेश करता है। आधुनिक युग में अनुसंधान का स्वरूप अत्यंत व्यापक और बहुआयामी हो गया है। आज अनुसंधान केवल तथ्यों की खोज तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नए विचारों, दृष्टिकोणों और अभिव्यक्ति के विविध रूपों को भी जन्म देता है। आधुनिक अनुसंधान के माध्यम से ज्ञान की नई दिशाएँ खुलती हैं और समाज के समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। समय साक्षी है कि हर युग में सत्य, सत्य की खोज और सत्य की अभिव्यक्ति का झठें मठाधीशों ने, पाखंडियों ने खूब विरोध किया है । किन्तु वह विरोध मात्र विरोध के लिए रहा है। शोध आविष्कार के विकल्प में इन विरोधियों ने कोई भी नई भौतिक वस्तु या अलौकिक शक्ति, जिसका ये आजीवन दावा कर रहे थे इजाद नहीं की है। इसलिए शोध और सत्य का विरोध करनेवाले भी अनुसंधान को निश्चित रूप से स्वीकारते हैं क्योंकि अनुसंधान तथा आविष्कार के लिए दूसरा कोई सक्षम विकल्प नहीं है। नया आविष्कार ही इसके लिए विकल्प है। इसलिए आज का युग हो प्राचीन समय हो अनुसंधान अपनी शोधयात्रा निरंतर कर रहा है, जिससे समग्र मानवी जीवन और सांसारिक सृष्टि भौतिक दृष्टि से समृद्ध हो रही है। इस परिप्रेक्ष्य में विश्वदीप तथागत गौतम बुद्ध का लोकसंदेश विशेष महत्व रखता है और जो वर्तमान समय में तथा हर युग में प्रासंगिक भी है वह कहते हैं कि मैं कहता हूं इसलिए उसे सत्य मत समझो मैंने जो कहा है ,उसे अपनी बुद्धि की और तर्क की कसौटी पर जांचकर, परखकर देखो ।यदि वह सत्य है तो ही उसे स्वीकारो और यदि वह भ्रम है ,झूठ है तो उसे ठुकरा दो।

आधुनिक अनुसंधान की अवधारणा- अनुसंधान सृष्टि के आरंभिक युग से ,आदिकाल से चलती आ रही है निरंतर ज्ञान प्रक्रिया है जो शाश्वत सत्य और यथार्थ की धरातल पर सक्रिय है । हर युग में अनुसंधान अपने बलबूते पर समग्र मानव जीवन और सृष्टि को सुख संपदा एवं ज्ञान के लिए निरंतर प्रयोग से और उपलब्धियां से युक्त रहा है।आज 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य आधुनिक अनुसंधान की अवधारणा अत्यंत व्यापक और व्यवहारोपयोगी है।नामचीन शोधसंस्थाओ , विश्वविद्यालयो के साथ-साथ गूगल ,ए.आई. के साथजुडकर सामान्य जनता भी शोधपरक दृष्टि से अपने संबंधित क्षेत्र विशेष में शोध कार्य के प्रति सजग और जिज्ञासु दिखाई देती है।वर्तमान समय में मीडिया के माध्यम से कला साहित्य शिक्षा व्यापार उद्योग मनोरंजन जैसे विविध क्षेत्रों में अधुनातन प्रयोग निरंतर शुरू है । ये सारे प्रयोग, इनकी नूतन उपलब्धियां अनुसंधान की नई परतें हैं। बहुउपयोगिता इसकी वह उपलब्धि है, जो समग्र मानव समाज और विश्व को एक सूत्र में जोड़ने का कार्य करती है। विश्व के विविध विश्वविद्यालयों, शोध संस्थाओ, शिक्षा संस्थानो एवं शिक्षा-संस्कृति मंत्रालयों के माध्यम से तरह -तरह की शोध परियोजनाएं, क्षेत्रीय शोधकार्य तथा शोध उपाधियो हेतु कार्य आधुनिकअनुसंधान के विस्तृत पटल पर सक्रिय है। इसलिए आज के दौर का आधुनिक अनुसंधान वह व्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रक्रिया है ,जिसके माध्यम से किसी विषय, समस्या या घटना के सत्य और तर्कसंगत समाधान की खोज की जाती है। यह अधिकांश प्रक्रिया अवलोकन, विश्लेषण, परीक्षण और निष्कर्ष पर आधारित है।आधुनिक अनुसंधान की प्रमुख विशेषताओ में वैज्ञानिक दृष्टिकोण,तर्कसंगत विश्लेषण,नवीनता, मौलिकता,वस्तुनिष्ठता एवं बहुआयामी दृष्टिकोण का समावेश है।आज डिजिटल युग में अनुसंधान में पारंपरिक पद्धतियों के साथ-साथ डिजिटल तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सांख्यिकीय विश्लेषण और अंतर्विषयक अध्ययन का भी समावेश हो गया है।

आधुनिक अभिव्यक्ति के विविध आयाम-अभिव्यक्ति एक ऐसा माध्यम है, तथ्य को और यथार्थ को समाजहित के लिए प्रस्तुत करती है ।यहसत्यान्वेषी अभिव्यक्ति सामाजिक तथा वैश्विक समस्याओं के निराकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है इसलिए अभिव्यक्ति जो अनुसंधानकेंद्री है, वह सटीक एवं शाश्वत होती है । किसी भी युग में अन्वेषणयुक्त अभिव्यक्ति भौतिक धरातल पर और मूल्यों की कसौटीयों पर जांचा- परखा जा सकता है। इसलिए अभिव्यक्ति अनुसंधान का एक सक्षम और शाश्वत सेतू है, जिस पर समग्र मानवीय जीवन की समस्याएं निराकरण, संतुष्टि और समाधान के लिए अग्रसर होती हैं। अभिव्यक्ति के आयाम समय के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं ।आज के समय में कुछ आयाम अत्यंत महत्वपूर्ण माने गए हैं। जैसे.. वैज्ञानिक आयाम , साहित्यिक आयाम, सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम, डिजिटल और तकनीकी आयाम एवं अंतर्विषयक आयाम। यह सारे आयाम अनुसंधान की दिशाये हैं,जो समस्याओं को दूर करके, नए विचारो ,सिद्धांतों निष्कर्ष और उपलब्धियों को उजागर करने का काम करते हैं। ज्ञान के तमाम क्षेत्रों में अभिव्यक्ति तथा अनुसंधान की यह आयाम समाज और सृष्टि के लिए छिपे हुए तथ्य और नई उपलब्धियां विकसित करते हैं । वर्तमान समय में राष्ट्रीय शिक्षा नीति ,शोध नीति एवं कार्यप्रवण योजनाएं अनुसंधान को केंद्र में रखकर तैयार की जा रही है। वर्तमान शिक्षा नीति में अनुसंधान को असाधारण महत्व दिया गया है ।शोध की दृष्टि और वृत्ति शोधार्थियों में विकसित हो उनके विचार सटीक एवं तर्कयुक्त हो और विवेकशील विज्ञाननिष्ठ समाज, नव राष्ट्र साकार हो इसलिए अनुसंधानकेंद्री शिक्षा आज विश्व में सर्वत्र देखने को मिलती है। सच्चा शोधार्थी इसी पैनी दृष्टि को लेकर शोधकार्य करता है अत्यंत विवेकशील , तटस्थतापूर्ण ,अध्ययन केंद्री, तर्कसंगत, विज्ञाननिष्ठ और स्थायी रहनेवाला अनुसंधान इसी तरह कि शोध प्रक्रिया में होता है। आधुनिक अनुसंधान का महत्व ज्ञान-विकास,समाज-कल्याण,नवाचार और प्रगति तथा शैक्षिक उन्नति जैसे अनेक क्षेत्रों में देखा जाता है। अंतत: कहा जा सकता है कि आधुनिक अनुसंधान ज्ञान-विकास की एक सशक्त प्रक्रिया है, जो अभिव्यक्ति के अनेक आयामों को उजागर करती है। विज्ञान, साहित्य, समाज और संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान नई दृष्टि और नवाचार को जन्म देता है। वर्तमान समय में अनुसंधान की बहुआयामी प्रकृति ने इसे और अधिक प्रभावी तथा प्रासंगिक बना दिया है। इसलिए आवश्यक है कि अनुसंधान की संस्कृति को प्रोत्साहित किया जाए, ताकि ज्ञान और समाज दोनों का संतुलित विकास संभव हो सके। आधुनिक अनुसंधान की प्रक्रिया में अंधानुकरण की संभावना निश्चित है किंतु यह अनुकरण लंबे समय तक टिकता नहीं है। जो नया है , सत्य है और जो जीवनोपयोगी है वही शोध सर्वत्र एकसमान स्वीकार किया जाता है ।उसका जीवनमूल्य सर्वत्र उच्च स्तर का होता है। इसलिए वर्तमान अनुसंधान अंधानुकरण को भले ही कहीं अभिव्यक्त करता होगा,पर लंबे समय तक यह कल्पित चित्र सत्य की कसौटी पर टिक नहीं पता है खरा नहीं उतरता है । पाखंड ,भ्रम, अंधविश्वास, चमत्कार ,काल्पनिकता और प्रदर्शन यह सारी स्थितियां वर्तमान अनुसंधान के दायरे से पल भर में दूर हो जाती है ।और इनकी असलियत पलभर में उभरकर आती है। 'शोध उत्कर्ष' की इस शोध पत्रिका के सभी शोधआलेख तथा सर्जनाएं इसी अनुसंधानकेंद्री दृष्टि को, तथ्यपरख विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, भारतीय संत, काव्य ,प्राचीन मान्यताएं, भारतीय भाषाएं एवं मूल्य, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, लोक संस्कृति, भारतीय ज्ञान परंपरा अर्थ विज्ञान ,राजनीति एवं समाज विज्ञान, शोषित वंचित पीढ़ी, सर्वहारा वर्ग की अभिव्यक्तियां, उनकी साहित्यिक संवेदनाएं और उनसे प्रभावित कृतियां आधुनिक अनुसंधान के सक्षम आयाम हैं । शोध की इन सभी परतों को शोधार्थी रचनाकारों ने डंके की चोट पर प्रस्तुत किया है। निश्चित ही या अंक पठनीय और संग्रहणीय रहेगा इसमें दो राय नहीं है। अनुसंधानयात्रा में शोध उत्कर्ष हो और साथ-साथ सत्य का स्थायी रूप शाश्वत बना रहे। तथ्य की विविध परतें इस अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका के माध्यम से खुलती रहे.. इसी मंगल कामना के साथ..!

प्रो.डॉ.शशिकांत 'सावन'
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी शोध विभाग, प्रताप स्वशासी महाविद्यालय,
अमलनेर क.ब.चौ.उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगांव
Professorsaawan@gmail.com

हिंदी कविता में राष्ट्रीय-चेतना बोध

प्रो. (डॉ.) विजयकुमार रोडे
हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे,विश्वविद्यालय, पुणे
मेल- priyabhaskarannair@gmail.com मो - 8668918426

देश पर कुरबान होते जाओ तुम, ऐ हिंदियो,
जिंदगी का राज मुजमिर खंजरे-कातिल में है।
साहिले-मक्सूद पर ले चल खुदारा, नाखुदा,
आज हिंदुस्तान की कश्ती बड़ी मुश्किल में है।''1
- 'रामप्रसाद 'बिस्मिल'

शोध-सार: हिंदी कविता भारतीय समाज की संवेदनाओं, आकाक्षाओं और संघर्षों की सशक्त अभिव्यक्ति रही है। राष्ट्रीय-चेतना- बोध हिंदी कविता का एक ऐसा केंद्रीय तत्व है जिसने न केवल स्वतंत्रता आंदोलन को वैचारिक ऊर्जा प्रदान की, बल्कि स्वतंत्रता ने उत्तर भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विमर्श को भी दिशा दी। हिंदी कविता न केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में पाठकों के सम्मुख आती है, अपितु भारतीय समाज की सामूहिक चेतना, सांस्कृतिक बोध, सामाजिक उत्थान तथा ऐतिहासिक विकास को प्रतिबिंब के रूप में भी उसने अपनी उपस्थिति दर्ज की है। यह कविता- परंपरा एक ओर जहाँ भावात्मक और कलात्मक सौंदर्य के चरम तक पहुँचती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक दृष्टिकोण और राष्ट्रीय आकांक्षाओं का संवाहक भी बनती है। हिंदी काव्य परंपरा के विविध युगों में राष्ट्रीय-चेतना का स्वर विभिन्न रूपों में प्रकट होता रहा है, जिसने जनमानस को उद्बोधित कर स्वतंत्रता, अस्मिता और सांस्कृतिक स्वाभिमान के लिए प्रेरित किया ''साहित्यकार की अँजुरी के इस अर्घ्य में एक गहरी पवित्रता और सघन सत्प्रेरणा थी और राष्ट्र के स्वातंत्र्य में इसी लिए राष्ट्र प्रेम और प्रतिबद्धता में सराबोर सृजन उस पूरे कालखंड में राष्ट्रीय साहित्य का एक ऐसा अमृत-व्यंजन बना रहा, जिसकी स्मृति आज भी हमें एक प्रेरणा और दृष्टि देती है।''[2] अतः यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय चेतना-बोध आधुनिक हिंदी काव्य में सर्वव्याप्त था।

बीज शब्द: कविता, राष्ट्रीय-चेतना, बोध, संवेदना, सांस्कृतिकता, सामाजिक उत्थान, प्रतिबिंब, प्रतिबध्दता, राष्ट्रवाद, छायावाद, प्रगतिवाद आदि।

प्रस्तावना: साहित्य किसी भी राष्ट्र की आत्मा का प्रतिबिंब होता है और कविता उस आत्मा की सर्वाधिक संवदेनशील एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति। भारतीय संदर्भ में हिंदी कविता ने राष्ट्रीय चेतना के निर्माण, विकास और प्रसार में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। जब राजनीतिक दासता, सामाजिक असमानता और सांस्कृतिक संकट ने भारतीय समाज को जकड़ रखा था, तब कविता जनमानस की आवाज बनकर उभरी। ''राष्ट्रीय एकता साम्राज्यवाद से संघर्ष के संदर्भ में एक जरूरी भावना के रूप में देखी गयी है। शांति, विकास और मजबूती के लिए भी यह अपरिहार्य मानी जाती है।''[3] इसी कारण हिंदी कवियों ने राष्ट्र-चेतना का आवश्यक औजार कविताओं को मानकर उस दिशा में सृजन कार्य किया

राष्ट्रीय-चेतना बोध का अर्थ केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा नहीं है। बल्कि इसमें सांस्कृतिक गौरव, सामाजिक समानता, भाषाई अस्मिता, मानवीय मूल्य और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना निहित रहती है। हिंदी कविता ने इन सभी पक्षों को अपने काव्यात्मक रूप में समाहित करने का प्रयास किया है। राष्ट्रीय-चेतना बोध एक ऐसी मानसिक और भावनात्मक अवस्था है, जिसमें व्यक्ति स्वयं को राष्ट्र की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक इकाई के रूप में अनुभव करता है। यह चेतना व्यक्ति को व्यक्तिगत, स्वार्थ से ऊपर उठकर राष्ट्रहित के लिए सोचने और कार्य करने की प्रेरणा देती है। ''हमें जो विचार सूझते हैं वे भी हमारी स्थिति के हालात से प्रेरित होते हैं। ये हमारे चिंतन के तत्व हैं और इनके विभिन्न संयोजनों से अनिवार्यतः हमारी भावनाओं, मतों और इच्छाओं का जन्म होता है।''[4] राष्ट्रीय-चेतना बोध से प्रेरित होकर समग्र देश में काव्यमय आंदोलन उत्पन्न होने में स्वतंत्रतापूर्व काल की राजनीतिक परिस्थितियाँ भी जिम्मेदार रही हैं।

विषय वस्तु: राष्ट्रीय चेतना किसी राष्ट्र के नागरिकों में अपने देश, उसकी सीमाओं, सांस्कृतिक मूल्यों और ऐतिहासिक विरासत के प्रति गर्व, आत्मीयता एवं उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करती है। हिंदी कविता में यह चेतना विभिन्न प्रतीकों, रूपकों और भाव-धाराओं के माध्यम से प्रकट होती रही है- कभी स्वतंत्रता संग्राम की उद्घोषणा के रूप में, तो कभी उपेक्षित वर्गों की पीडा के माध्यम से राष्ट्र के पुनर्निर्माण की माँग करते हुए हिंदी कविता, भारतीय साहित्य की एक सशक्त विधा के रूप में, न केवल सौंदर्यबोध का माध्यम रही है अपितु सामाजिक,सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय विमर्शो की संवाहक भी सिद्ध हुई है। हिंदी कविता में अभिव्यक्त चेतना-बोध से परिचित होने के लिए पाठक -चिंतक को राष्ट्रवाद की अवधारणा और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विचारात्मक ह्रोतों को समग्रता में समझना आवश्यक है। क्योंकि राष्ट्र केवल राजनीति सरोकार नहीं, अपितु एक सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक इकाई के रूप में प्रतिष्ठित होता है।

हिंदी कविता में राष्ट्रीय-चेतना की अभिव्यक्ति किसी एक क्षणिक प्रेरणा का परिणाम नहीं अपितु एक दीर्घकालीन वैचारिक एवं काव्यात्मक प्रक्रिया रही है, विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भो में विकसित हुई है। यह प्रक्रिया हिंदी साहित्य के विभिन्न युगों में विशिष्ट काव्य पप्रवृत्तियों एवं कवियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती रही ''उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय इतिहास में एक नवीन अध्याय का श्री गणेश हुआ। इस कालखण्ड में नवचेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुए। शिक्षित जनता की बदली हुई मनोवृत्तियों ने साहित्यिक गतिविधियों को बहुत दूर तक प्रभावित किया।''[5] यह काल राजनीतिक पराधीनता के प्रति असंतोष के साथ-साथ सांस्कृतिक पुनरुत्थान न का भी था।

हिंदी कविता में अभिव्यक्त राष्ट्रीय-चेतना बोध का आकलन विभिन्न कालखण्डों पर दृष्टिपात करने पर होगा। हिंदी साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल और रीतीकालीन कविता में भी राष्ट्रीय-चेतना बोध हमें किसी न किसी रूप में प्राप्त होता है। परंतु आधुनिक काल का यह राष्ट्रीय-चेतना बोध कई अर्थो में एक स्पष्टता के साथ उभरकर आता है। जिसे हम भारतेंदु युग, द्विवेदी युग छायावादी युग तथा प्रगतिशील कविता में देख सकते हैं। भारतीय नवजागरण काल के प्रथम चरण में भारतेंदु हरिश्चंद्र को हिंदी कविता में प्रथम स्वर का उद्घोषक माना जाता है। ''कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय चेतना का उ व सबसे पहले भारतेंदु की कविता में हुआ। इसलिए उन्हें राष्ट्रीय काव्यधारा का जनक माना जा सकता है।'' [6] उनकी कविताओं में अतीत की महानता का स्मरण और वर्तमान की दुर्दशा का उल्लेख है।

उन्होंने राष्ट्र की दुर्दशा पर गहन संवदेना व्यक्त करते हुए जनता को जागरूक करने हेतु कविता को एक सामाजिक और राजनीतिक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया। द्विवेदी युगीन कविता में राष्ट्रीय- चेतना बोध को अधिक संगठित एवं वैचारिक दिशा प्राप्त होती है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादनकाल में 'सरस्वती' पत्रिका राष्ट्रीय चेतना के संवाहन का प्रमुख माध्यम बनी। इस युग की कविताओं में नैतिक पुनर्जागरण, ऐतिहासिक गौरव गाथाएँ, देशप्रेम आदि भावों की प्रधानता रही है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' इस युग की प्रतिनिधि काव्यकृति मानी जाती है, जिसमें भारत के अतीत गौरव, वर्तमान की दीनता एवं भविष्य के नवनिर्माण का चित्र अंकित है। इसके अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे कवियों की रचनाओं में स्वतंत्रता संग्राम की स्पष्ट गूँज सुनाई देती है।

छायावाद को सामान्यतः आत्मचेतना का युग कहा जाता है, किंतु गहन विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इस युग की आत्मचेतना राष्ट्रचेतना में विलीन हो जाती है। इस युग के कवियों ने राष्ट्र को एक आध्यात्मिक, मातृस्वरूप, एवं संवदेनात्मक इकाई के रूप में चित्रित किया है। ''स्वातंत्र्य संघर्ष का स्वर छायावादी काव्य में कई प्रकार से व्यक्त हुआ है। एकरूप है भारतमाता की वंदना इन कवियों ने महासरस्वती, महालक्ष्मी और महादुर्गा को 'माँ' भारतीया के रूप में प्रस्तुत किया है।''[7] प्रगतिशील कविता आंदोलन सीधा जनता से जुड़ते हुए राष्ट्र को जनजीवन की यथार्थवादी अभिव्यक्ति में रूपांतरित कर दिया। इस युग में राष्ट्रभक्ति सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता, पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतिरोध आदि के रूपों में अभिव्यक्त होती पायी जाती है। इन सभी तत्वों को इस युग के कवियों ने राष्ट्रबोध के साथ जोडने का प्रयास किया

स्वतंत्रता के उपरांत राष्ट्रबोध का स्वरूप पुनर्परिभाषित हुआ। राष्ट्र अब केवल एक प्रतिष्ठान नहीं रहा, बल्कि उसके भीतर मौजूद अंतर्विरोध, बहिष्कृत समूदायों की पीड़ा समाप्त कर नए राष्ट्र के निर्माण का दयित्व कवियों पर आ पड़ा। क्योंकि स्वतंत्रता के पश्चात देश में राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियाँ स्थिर नहीं थी। सरदार वल्लभ भाई पटेल को कहना पड़ा- ''एकता के लिए हमें जाति और धर्म के भेद को भूलकर एक बात याद रखनी चाहिए कि हम सभी भारतीय हैं और सभी एक समान हैं। आज़ाद मुल्क में इनसान-इनसान में भेद नहीं हो सकता है। सभी को समान अवसर समान अधिकार और समान दायित्व मिलने चाहिए।''8 अर्थात स्वातंत्र्योत्तर कवियों की रचनाओं में राष्ट्र एक बहुलतावादी संघर्षशील और आलोचनात्मक इकाई के रूप में उभरता है। इस युग की कविता राष्ट्र को एक प्रश्न, एक खोज और एक नैतिक चुनौति के रूप में प्रस्तुत करती है। यह युग कविता के माध्यम से राष्ट्र की स्तर से संवाद करता है, और उसमें निहित जन विरोधी नीतियों, सामाजिक असमानताओं, तथा संवेदनहीनता पर गहरा प्रश्न चिन्ह अंकित करती है।

निष्कर्ष: अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी कविता में राष्ट्रीय-चेतना बोध का विकास कालक्रमिक रूप से न केवल ऐतिहासिक घटनाओं से प्रभावित रहा, बल्कि यह कविता की सौंदर्य दृष्टि, विचारधारा और सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ भी निरंतर रूपांतरित होता रहा हिंदी कविता में राष्ट्रीय-चेतना को विस्तृत, प्रभावी और धारदार बनाने में मैथिलीशरण गुप्त, भारतेंदु हरिश्चंद्र, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, श्रीधर पाठक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि कवियों ने अपनी भूमिका निभाई। हिंदी साहित्य के इतिहास में राष्ट्रीय-चेतना बोध के काव्य ने भारतीयों के मन-मस्तिष्क में राष्ट्रवाद की नई परिभाषा गढ़ने में अपनी संकल्पनाएँ तथा प्रतिभा को समर्पित किया।

इस दौर के कवियों ने न केवल राष्ट्रगान या देशभक्ति के उद्घोष तक कविता को सीमित न रखते हुए राष्ट्र के भीतर मौजूद विसंगतियों, असमानताओं और चुनौतियों को भी उजागर करते हैं। इस दृष्टि से राष्ट्रीय चेतना एक जागरुक और जिम्मेदार वैचारिक प्रक्रिया बन जाती है। जो राष्ट्र के निर्माण और उसके सतत विकास में सक्रिय भूमिका निभाती है।

****

संदर्भ सूची-

1.सं. कुमकुम शर्मा, (उत्तर रप्रदेश जब्तशुदा साहित्य विशेषांक, जन-अप्रैल, 2023) पृ.93
2.सं. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, (साहित्य अमृत, अगस्त 2005 अंक), पृ.6
3.सं. शंभुनाथ, हिंदी साहित्य ज्ञान कोश 6, पृ.3180
4.रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, पृ.215
5.डॉ. रामसजन पाण्डेय, साहित्यिक निबंध, पृ. 202
6.सं. शंभुनाथ, हिंदी साहित्य कोश 6, पृ.3184
7.सं. डॉ. महीपाल सिंह राठौड, (साहित्य संवाद, राष्ट्रीय काव्यधारा विशेषांक जन- दिसं, पृ.91
8.सं. इरफान हबीब, भारतीय राष्ट्रवाद: एक अनिवार्य पाठ, पृ.207

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

भारतीय ज्ञान परंपरा की वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ. प्रमोद पडवळ
सहयोगी प्राध्यापक,
हिंदी विभाग,
चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय, शिरूर, जिला-पुणे (महाराष्ट्र)
मो. 9767916364 Email- padwalpramod9@gmail.com

सार- भाषा एवं ज्ञान की परंपरा का विकास मनुष्य सभ्यता के विकास की महत्वपूर्ण सीढ़ियाँ है। विश्व के सभी जनजातियों में ज्ञान परंपरा का विकास दिखाई देता है। भारत में भी हजारों सालों से यह ज्ञान परंपरा गतिमान रही। इसमें जीवन के नैतिक, अध्यात्मिक, बौद्धिक पक्ष पर लक्ष्य रखकर सत्य, दया, क्षमा, शांति, नम्रता, आत्मनिर्भरता जैसे मानवीय मूल्यों की शिक्षा निहित थी। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसे अनेकों विश्वविद्यालयों, शिक्षा केंद्रों, गुरुकुलों के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा प्रवाहित होती रही। मगर समय के साथ, परकीय आक्रमणकारियों के कारण, पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव स्वरूप वर्तमान समय तक आते-आते यह परंपरा खंडित होती गई। आज पर्याप्त भौतिक सुख-सुविधाओं के बावजूद मनुष्य का जीवन अशांत है। मनुष्य आज जीवन जीना ही मानो भूल गया है। इसकी एक वजह अपनी सभ्यता, संस्कृति की उपेक्षा कही जा सकती है। पुराने और आज के समय को तौलनिक दृष्टि से देखने के बाद भारतीय ज्ञान परंपरा को पुन्हा पुनर्जीवित करके प्रवाहमान करना वर्तमान समय की दरकार दिखाई देती है, चूंकि भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल में समूची मानव जाति के उन्नयन की कामना रही है, जो कि आज के व्यक्तिवादी, उपभोक्तावादी संस्कृति एवं सभ्यता में नदारद है।

बीज शब्द- ज्ञान परंपरा, सभ्यता का विकास, लोक साहित्य, ज्ञान और विज्ञान, गुरुकुल, मौखिक परंपरा, पुरुषार्थ, भौतिक और आध्यात्मिक सुख, अवरुद्ध, संस्कृति, भारतीयता, वैश्वीकरण, अंधानुकरण, मूलाधार, मानव मूल्य, विश्व बंधुत्व, राष्ट्रीय शिक्षा नीति।

प्रस्तावना- मानव जाति के विकास में भाषा तथा ज्ञान का अनन्यसाधारण महत्व है। अन्य प्राणियों से मनुष्य ने इन्हीं के कारण अपनी अलग पहचान बनाई है। अपने अनुभव से प्राप्त ज्ञान का विस्मरण न हो और भावी पीढ़ी के लिए उसका उपयोग हो इसके लिए मनुष्य ने ग्रंथों का निर्माण किया। ग्रंथों के विकास की प्रारंभिक अवस्था में पत्ते, ताम्रपत्र, शिलालेख आदि ज्ञान संग्रह के संवाहक बने। कागज के आविष्कार के बाद पुस्तकें ज्ञान धारा की संवाहक बनी। इसके समानांतर मौखिक रूप से भी ज्ञान परंपरा प्रवाहित होती रही। 'लोक साहित्य' के रूप में इसे अभिहित किया जाता है। समयानुरूप लोक साहित्य रूपी मानव विकास की यही धरोहर लुप्त होती गई। मगर आज के मानवी जीवन को देखने के बाद भारतीय ज्ञान परंपरा की आवश्यकता समझ में आती है। भारतीय ज्ञान परंपरा की इसी प्रासंगिकता का भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप, भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता, भारतीय ज्ञान परंपरा की उपेक्षा, भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता इन मुद्दों के आधार पर विस्तृत विवेचन औचित्यपूर्ण रहेगा।

भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप- भारतीय ज्ञान परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है। इसमें वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता, पुराण तथा धर्म शास्त्रों का विशेष महत्व है, जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म, भोग और त्याग आदि का अद्भुत समन्वय है। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, काशी, उज्जैनी आदि विश्व प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केंद्रों में विश्व के समस्त समुदायों एवं प्राणी मात्र के कल्याण की शिक्षा दी जाती थी।इन केंद्रों में देश-विदेश के हजारों शिक्षार्थी ज्ञानार्जन के लिए आते थे। आर्यभट्ट, चरक, पतंजलि, सुश्रुत, कात्यायन, बोधायन, कणाद, वाराहमिहिर, नागार्जुन, अगस्त्य, भर्तृहरि, शंकराचार्य, पाणिनि जैसे अनेकों महापुरुषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से भारतीय ज्ञान परंपरा की समृद्धि में अतुल्य योगदान दिया है। महिलाएँ भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं थी। मैत्रेयी, गार्गी, ऋतुंबरा, अपाला,लोपामुद्रा आदि अनेक विदुषियों ने भारतीय ज्ञान परंपरा की संवाहक बनकर मानव जाति के उत्थान में अपूर्व कार्य किया है।

प्राचीन काल में भारत में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, काशी, उज्जैनी, उदांत पुरी, सोमपुरा, पुष्पगिरी जैसे अनेकों विश्वविद्यालयों के साथ-साथ गुरुकुलों के माध्यम से भी शिक्षा दी जाती थी। भारतीय ज्ञान परंपरा में गुरुकुल शिक्षा पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान है। पुराने जमाने में गुरुकुल शिक्षा के प्रमुख आधार स्तंभ थे। गुरुकुल में विद्यार्थियों को वेद, उपनिषद, पुराण, व्याकरण, नीति शास्त्र, धर्मशास्त्र, युद्ध शास्त्र, न्यायशास्त्र, कला, राजनीति, दर्शन आदियों का ज्ञान दिया जाता था। यह पद्धति "मनसा, वाचा और कर्मणा" पर आधारित थी। इसमें व्यक्ति के नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक, राजनीतिक, भावात्मक आदि विकास पर लक्ष्य केंद्रित किया जाता था तथा आत्मनिर्भरता, नम्रता, सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम आदि मूल्यों के सृजन पर बल दिया जाता था। गुरुकुल के अतिरिक्त घर, मंदिर, मठ आदि जगहों में भी संस्कार युक्त शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा ग्रहण करने का आधार मुख्यतः मौखिक ही होता था। ज्ञान प्राप्ति के लिए संसाधनों के अभाव में भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्रचार-प्रसार के लिए 'मौखिक परंपरा' का महत्व अनन्यसाधारण है। शिक्षार्थियों को जो पढ़ाया जाता था उसे वह याद करके मनन करते थे और भावी पीढ़ी को विरासत के रूप में सौंप देते थे। घर-परिवार और समाज में विभिन्न प्रकार के लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा आदियों के माध्यम से ज्ञान प्रणाली को पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित किया जाता था, जिसका मूल उद्देश्य शिक्षा के साथ-साथ संस्कार एवं व्यवहार ज्ञान देना था।

भारतीय संस्कृति की 'पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्धांत' एक महत्वपूर्ण विशेषता है। पुरुषार्थ चतुष्टय का मतलब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से है। इसकी संरचना भारत के ऋषि-मुनियों और दार्शनिक-विद्वानों ने मानव जीवन को आध्यात्मिक, भौतिक और नैतिक दृष्टि से उन्नत करने के लिए की थी। जीवन में भौतिक सुख के साथ-साथ आध्यात्मिक सुख भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थ को अच्छी तरह कर लेने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ऐसा माना गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा में इसी पुरुषार्थ संकल्पना की शिक्षा भी महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। अर्थात अनादि काल से भारतीय शिक्षा व्यवस्था का स्वरुप मनुष्य के व्यावहारिक एवं दैनंदिन जीवन को सुचारू रूप से संचालित करने के साथ-साथ जीवन के महत उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक दिखाई देता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता- भारतीय ज्ञान परंपरा पुरातन युग से मानव जाति को समृद्ध करती आ रही है। यह वैज्ञानिक और व्यावहारिक चिंतन पर आधारित है, जो विश्व बंधुत्व की भावना से ओतप्रोत है।

इसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म, भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। भारतीय प्राचीन ज्ञान प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, अध्यात्मिक और बौद्धिक स्तर पर केंद्रित होकर नम्रता, आत्मनिर्भरता, अनुशासन, दया, क्षमा, सत्य जैसे मानवीय मूल्यों पर जोर देती है। इसमें शिक्षार्थियों को मानव, प्राणियों एवं प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखना सिखाया जाता था। परिवार और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने का अनुदेश इसमें दिखाई देता है।

भारतीय प्राचीन शिक्षा प्रणाली व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक विकास पर समान जोर देती थी। जब समूचा विश्व अज्ञान रूपी अंधकार में भटकता था तब भारत के मनीषी उच्चतम ज्ञान का निर्माण एवं प्रसार करके मानव जाति को श्रेष्ठ संस्कार देकर संपूर्ण मानव बनाने में प्रयासरत थे। हजारों साल पहले जब कई सभ्यताएँ केवल खानाबदोश जीवन जीती थी तब भारत वर्ष में सिंधु घाटी सभ्यता में हड़प्पा, मोहनजोदड़ो जैसी प्रगत संस्कृतियों का जन्म हुआ। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसे अनेकों विश्वविद्यालयों, शिक्षा केंद्रों का निर्माण भारत की प्राचीन सभ्यता एवं ज्ञान परंपरा के निदर्शक हैं। इन सभी विश्वविद्यालयों, शिक्षा केंद्रों तथा गुरुकुलों में व्यक्ति के उन्नयन के साथ-साथ समूची मानव जाति का हित सन्निहित था। "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया:..." की प्रार्थना इसी का परिचायक कहा जा सकता है।

भारतीय साहित्य, संस्कृति, दर्शन की परंपरा हजारों साल पुरानी है। वेद, उपनिषद, पुराण आदियों से आज ज्ञान की कई परतें खुल रही हैं। इन सब का आधार संस्कृत भाषा आज विश्व की सबसे वैज्ञानिक भाषा मानी जाती है। संस्कृत भाषा में निर्मित साहित्य आज विश्व को दिशा दे रहा है। विदेशी लोगों द्वारा संस्कृत भाषा का अध्ययन मनुष्य जीवन की उन्नति हेतु होता दिखाई देता है। वेद, आयुर्वेद, योग यह प्राचीन ज्ञान प्रणालियाँ आधुनिक दुनिया में उपयोगी सिद्ध हो रही है। भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपरा में अनेकों ऐसे नाम मिलते हैं, जिन्होंने अपने ज्ञान का लाभ मनुष्य की प्रगति एवं समृद्धि के लिए किया। महर्षि चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट द्वारा चिकित्सा क्षेत्र में किया योगदान अनूठा है। प्राचीन ज्ञान परंपरा का आयुर्वेद एक महत्वपूर्ण भाग है। भारत द्वारा विश्व को दी गई यह अमूल्य देन है। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रसारित 'योग' आज विश्व भर में 'योगा' के रूप में प्रसिद्ध हो रहा है, जो मूलतः भारत की धरोहर है। भास्कराचार्य, बौधायन, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट्ट, श्रीधराचार्य आदियों की बदौलत आज गणित, संख्या शास्त्र, खगोल शास्त्र उन्नत हुए हैं। इसी प्रकार कौटिल्य या चाणक्य का अर्थशास्त्र तथा राजनीतिक दृष्टि से योगदान महत्वपूर्ण है, जिसके कारण वर्तमान में अनेक आयाम खुल गए हैं। इसी प्रकार वास्तु-कला, शिल्प-कला जैसे अनेक विषयों में भी भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान का प्रचुर भंडार निहित है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की उपेक्षा-सर्वश्रेष्ठ, समृद्ध, वैज्ञानिक रही भारतीय ज्ञान परंपरा समय के साथ अवरुद्ध होती गई। इसके मूल में प्रमुखतः राजनीतिक कारण रहे। भारत की स्वर्णिम धरती पर विभिन्न आक्रमणकारियों ने आक्रमण करके न केवल धन-संपत्ति को लूटा, बल्कि यहाँ की संस्कृति, सभ्यता को भी मिटाने की कोशिश की। इनमें प्रमुख आक्रांता थे- यूनानी, शक, हूण, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, तैमूर, बाबर, नादिर शाह, अंग्रेज। इन आक्रमणकारियों के कारण भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक व्यवस्था पर भारी आघात पहुँचा। हूणों ने तक्षशिला विश्वविद्यालय को नष्ट किया तो बख्तियार खिलजी ने नालंदा विश्वविद्यालय को आग लगा दी, जिसमें हजारों पुस्तकें जलकर राख हो गई। ऐसे अनेकों आघातों से प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा के विभिन्न उपादान नष्ट होकर ज्ञान परंपरा की अपरिमित क्षति हुई।

किसी भी देश के उत्थान में संस्कृति अहं होती है। आक्रमणकारी सबसे पहले संस्कृति एवं सभ्यता पर हमला करके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन अशांत करता है। अतएव भारतवर्ष में भी अक्रांताओं ने हमेशा ही स्थानीय संस्कृति को नष्ट करके अपनी संस्कृति थोपने का प्रयास किया। भारत में तुर्की, मुगल आक्रमणों के दौरान हमलावरों ने भारत की अखंडता की जड़ संस्कृति, धार्मिक विश्वास स्थल आदि को पहचाना और लोगों का मनोबल तोड़ने के लिए इन पर आघात कर मंदिरों की जगह मस्जिदें खड़ी कर दी। बारंबार होते आक्रमणों एवं दहशत से परंपरागत मान्यताएँ चरमरा गई। मध्ययुग में सांस्कृतिक संक्रमण के चलते भारतीय ज्ञान परंपरा को भी बाधा पहुँची।

भारतीय ज्ञान परंपरा को खंडित करने का सबसे बड़ा दुष्कार्य अंग्रेजों के द्वारा हुआ। जब भारत पर अंग्रेजों ने शासन शुरू किया तो उन्हें महसूस हुआ कि भारत की ताकत उसकी संस्कृति एवं शैक्षिक व्यवस्था है। जब तक यहाँ की शिक्षा प्रणाली को ध्वस्त नहीं किया जाएगा तब तक यहाँ पर प्रभुत्व प्रस्तावित नहीं किया जा सकता। इसलिए उन्होंने एक ओर तो कुटिल नीतियों के जरिए यहाँ के संस्थानों को समाप्त किया, तो दूसरी ओर अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का महिमामंडन करके भारत की शिक्षा पद्धति को तुच्छ बताकर उसे समाप्त किया। लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति से भारतीय शिक्षा प्रणाली समाप्त होकर भारतीय ज्ञान परंपरा भी खंडित हो गई।

अंग्रेज शासन काल में अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर चुके तथाकथित बुद्धिवादी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को हीन दृष्टि से देखने लगे। धीरे -धीरे इनकी तादाद बढ़ती गई और भारतीय ज्ञान परंपरा अपेक्षित रहती गई। फिर आजादी के बाद आधुनिक युग में भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण के चलते पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति के मोह में पढ़ी-लिखी शिक्षित पीढ़ी भारतीयता के महत्व को भूल गई। लेकिन अब जनता धीरे-धीरे जाग रही है। उसकी आंखों से पाश्चात्य संस्कृति के बड़प्पन का पर्दा हट रहा है, क्योंकि उसे पता चल रहा है कि आधुनिक प्रगति का मूलाधार भारत की ज्ञान परंपरा से जुड़ा है। इसलिए भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन एवं अध्यापन की ओर समूचा विश्व आज अग्रसर दिखाई देता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता- ब्रिटिश काल से हमारे यहाँ प्रचलित शिक्षा प्रणाली सदैव भारतीय ज्ञान को ओछा और पाश्चात्य ज्ञान को सर्वोपरि सिद्ध करने का कार्य करती रही है और यही कारण है कि स्वतंत्रता के बाद भी हम अपनी ज्ञान परंपराओं की महत्ता से अनभिज्ञ रहे। हमारा दर्शन, अध्यात्म हमें परिपूर्ण जीवन की राह बताने में सक्षम होते हुए भी हमने उन्हें दरकिनार किया। आयुर्वेद हमारी चिकित्सा प्रणाली का मूलाधार होते हुए भी हमारी नजरों से ओझल रहा। जब पाश्चात्यों ने उसका महत्व जानकर उस पर और संस्कृत भाषा पर अनुसंधान शुरू किया तब हमारी आंखें खुल गई। मसलन हमें अपनी जड़ी-बूटियाँ, नीम, हल्दी और गोमूत्र का ख्याल तब आता है जब अमेरिका इनसे जुड़े कई पेटेंट अपने नाम करवा लेता है। यही हाल योग का भी है। योग जब 'योगा' बनाकर विश्व भर में छा जाता है तब हम उसका महत्व समझते हैं।

आज भारत की विभिन्न प्रथा-परंपराएँ अपनी वैज्ञानिकता से पाश्चात्य संस्कृति में पले-बढ़े लोगों को आकृष्ट कर रही है, तो वही पाश्चात्य अंधानुकरण के मोह में अंधे हो चुके भारतीयों को भारतीय संस्कार दकियानूसी लग रहे हैं। यथा जहाँ विदेशी विवाह और परिवार का महत्व समझकर शादी के बंधन में बंध रहे हैं, वही हमारे युवा 'लिव इन रिलेशनशिप' को तवज्जो दे रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति की भोगवादी सभ्यता से हमारी युवा पीढ़ी क्षणभंगुर आनंद में जीवन की इतिश्री मान रही है। इस 'यूज एंड थ्रो' सभ्यता के प्रभाव से हमारे त्याग, सेवा, समर्पण, प्रेम, भाईचारा, आदर जैसे मानव मूल्य नष्ट हो रहे हैं। 'स्व' वादी दृष्टिकोण के बढ़ते महत्व से पारिवारिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक सौहार्द खतरे में पड़ गया है। समूचे विश्व में मानव जाति पर यह सबसे बड़ा संकट है। इससे उबारना है तो भारत की प्राचीन ज्ञान परंपराओं का

अध्ययन जरूरी है, चूंकि इसी परंपरा में मनुष्य के सर्वोच्च एवं अंतिम लक्ष्य के साथ-साथ मनुष्य जीवन की पूर्णता का मार्ग छिपा है। आज मानव जाति 'जियो और जीने दो' वाले संस्कार भूल गई है। अपनी तरह दूसरों को जीने का अधिकार वह नकार रही है। चारों ओर प्रभुत्व की लड़ाई छिड़ी हुई है। क्या मनुष्य, क्या समाज और क्या राष्ट्र सभी इस जंग में मानवता भूल गए हैं। घर-परिवार अशांत, समाज अशांत और देश भी अशांत। विश्वभर में यही अशांति मानव जाति के लिए खतरा बन रही है। इसका उपाय हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा में निहित है, क्योंकि इसमें वैज्ञानिक और व्यावहारिक चिंतन पर बल दिया है। यह ज्ञान परंपरा 'विश्व बंधुत्व' की भावना से ओतप्रोत है तथा विश्व के समस्त समुदायों एवं प्राणी मात्र के कल्याण की भावना इसमें अंतर्भूत है। इसी के मद्देनजर भारत में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस ज्ञान परंपरा के अध्ययन एवं अध्यापन पर बल दिया है, ताकि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रख सके। साथ ही वर्तमान समस्याओं से भी निजात पा सके।

आज मनुष्य विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों से जूझ रहा है। नीत नई बीमारियों से मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ गया है। कैंसर, डायबिटीज, हार्ट अटैक जैसी अनेकों शारीरिक और डिप्रेशन, स्ट्रेस, एंजायटी जैसी भिन्न मानसिक बीमारियों के चलते मनुष्य न जीवन जी पा रहा है, न जीवन का आनंद ले पा रहा है। चिंता, आशा, तृष्णा, काम वासना से ग्रसित मनुष्य सार्थक जीवन नहीं जी रहा है। इन सबसे निजात पाने की दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा प्रासंगिक है, क्योंकि हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा के वेद, उपनिषद, गीता, पुराण, आयुर्वेद, योग आदि शास्त्रों में मनुष्य को शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्तर पर सुदृढ़ बनाने के गुर विद्यमान हैं। बशर्ते उसके अनुपालन की आवश्यकता है।

निष्कर्ष-निष्कर्षतः कहा जाए तो हजार वर्ष पुरानी भारतीय ज्ञान परंपरा धर्म, साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, कला, कर्म, उपासना, योग, अध्यात्म, भोग, तपस्या आदि सभी प्रकार के ज्ञान का अद्भुत संगम है। वेद, उपनिषदादि विभिन्न ग्रंथों में विद्या को मनुष्य जीवन का श्रेष्ठ अंग स्वीकार करते हुए मनुष्य को ज्ञानवान बनाने का प्रयास होता रहा है। यह ज्ञान परंपरा केवल भारतवर्ष के लोगों तक सीमित नहीं है, अपितु 'विश्व बंधुत्व' की भावना इसमें निहित है। मनुष्य एवं समाज का संबंध, मनुष्य जीवन का लक्ष्य एवं उसका उत्तरदायित्व, मनुष्य का शारीरिक, भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास आदि मानव जीवन से जुड़े विभिन्न अंगों के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा पथप्रदर्शक रही है। हजारों वर्षों बाद भी इसका महत्व कम नहीं हुआ है। भारतीय ज्ञान परंपरा 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना से आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी पहले थी। अब यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम अपनी इस विरासत का खुद तो लाभ उठाएँ ही, साथ ही दुनिया भर में उसका प्रचार-प्रसार करके भारत को फिर से 'विश्व गुरु' के पद पर आसीन करें। और मानव जाति की रक्षा एवं विकास के लिए यही कदम उचित होगा इसमें कोई दो राय नहीं है।

****

आधार ग्रंथ :-

1. https://www.wikipedia.org/
2. https://hindimedia.in/bharatiya-gyan-pranali-ki-prasangikata/
3. https://www.jagran.com/editorial/apnibaat-ncr-the-imperative-of-indian-knowledge-tradition-in-the-education-system-22412895.html
4. https://www.myresearchjournals.com/index.php/SRJIS/article/view/10029
5. https://indiafoundation.in/articles-and-commentaries/ancient-indian-knowledge-systems-and-their-relevance-today-with-an-emphasis-on-arthasastra/
6. https://rashtriyashiksha.com/indian-knowledge-tradition-and-national-education-policy/

.....

बैगा जीवन शैली में पारंपरिक ज्ञान और शब्द-संपदा

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय& डॉ. रुचि मिश्रा तिवारी

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय भोपाल,
ईमेल: arunkpandey2@gmail.com
प्रोफेसर, मानविकी एवं उदारकला संकाय, रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय भोपाल,
ईमेल: ruchivishesh@gmail.com

सारांश : प्रस्तुत शोध पत्र मध्य भारत की अत्यंत प्राचीन और विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTG) 'बैगा' के सांस्कृतिक जीवन, उनके पारंपरिक ज्ञान (Traditional Knowledge) और उससे जुड़ी विशिष्ट शब्द-संपदा का विश्लेषण करता है। स्वयं को 'माटी-पुत्र' और पृथ्वी का प्रथम मानव मानने वाले बैगाओं का जीवन पूर्णतः प्रकृति और वनों पर आधारित है। बैगाओं का पारंपरिक ज्ञान विशेष रूप से उनके 'बेवर' (स्थानांतरित खेती), औषधीय जड़ी-बूटियों के गहन ज्ञान और 'गुनिया' या 'देवार' द्वारा की जाने वाली जादुई-धार्मिक उपचार पद्धतियों में परिलक्षित होता है।

अध्ययन यह रेखांकित करता है कि बैगाओं की जीवन शैली उनकी भाषा 'बैगानी' में रची-बसी है, जिसमें दैनिक दिनचर्या, भोजन और सामाजिक संबंधों के लिए अनूठे शब्दों का भंडार है। उदाहरण के तौर पर, उनके भोजन में 'पेज' (कोदो-कुटकी का घोल), दिनचर्या में 'मुखारी' (दातुन करना), 'मुरगल' (दोपहर का भोजन) और 'बियारी' (रात का खाना) जैसे शब्द उनकी संस्कृति की विशिष्टता को दर्शाते हैं। साथ ही, शोध पत्र यह भी स्पष्ट करता है कि आधुनिकता, बाहरी समुदायों से संपर्क और औपचारिक शिक्षा के प्रभाव के कारण यह पारंपरिक शब्द-संपदा और ज्ञान अब लुप्त होने के कगार पर है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य बैगा जनजाति की इस अमूर्त विरासत का दस्तावेजीकरण करना और इसके संरक्षण की आवश्यकता पर बल देना है।

बीज शब्द : बैगा जनजाति, पारंपरिक ज्ञान, शब्द-संपदा, बैगानी बोली, बेवर खेती, नृवंशविज्ञान (Ethnography), सांस्कृतिक परिवर्तन।

परिचय : बैगा जनजाति मध्य भारत की एक अत्यंत प्राचीन और विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTG) है। ये मुख्य रूप से मध्य प्रदेश के डिंडोरी, मंडला, बालाघाट और छत्तीसगढ़ के कबीरधाम एवं मुंगेली जैसे जिलों के दुर्गम पहाड़ी और वन क्षेत्रों में निवास करते हैं। बैगा स्वयं को 'माटी-पुत्र' (धरती के पुत्र) और इस पृथ्वी पर जन्म लेने वाला प्रथम मानव मानते हैं। उनकी मान्यता है कि भगवान ने उन्हें धरती की रक्षा करने और उसे उपजाऊ बनाए रखने के लिए बनाया है।

बैगाओं की जीवन शैली पूर्णतः प्रकृति और वनों पर आधारित है। वे अपने पारंपरिक ज्ञान के लिए पूरे विश्व में विख्यात हैं, जिसमें 'बेवर' (स्थानांतरित कृषि) और औषधीय जड़ी-बूटियों का गहन ज्ञान शामिल है। बैगा समाज में 'गुनिया' या 'देवार' का विशेष महत्व है, जो न केवल पुजारी के रूप में कार्य करते हैं, बल्कि जादुई-धार्मिक पद्धतियों और जड़ी-बूटियों के माध्यम से रोगों का उपचार भी करते हैं। उनकी संस्कृति की अन्य विशिष्ट पहचान में पुरुषों के लंबे लहराते बाल (जूड़ा) और बैगा महिलाओं के शरीर पर बने विस्तृत गोदना (Tattoo) चिन्ह शामिल हैं, जिन्हें वे मृत्यु के बाद भी साथ जाने वाला आभूषण मानते हैं। भाषाई दृष्टि से, बैगा 'बैगानी' बोली बोलते हैं, जो छत्तीसगढ़ी का ही एक रूप मानी जाती है और इंडो-आर्यन भाषा परिवार से संबंधित है। उनकी यह बोली उनके पारंपरिक ज्ञान, लोककथाओं और लोकगीतों

का प्रमुख वाहक है। बैगाओं की शब्द-संपदा में उनके दैनिक जीवन, जैसे कि भोजन के लिए 'पेज' (मक्का और कुटकी का घोल), सुबह के नाश्ते के लिए 'बासी', दोपहर के भोजन के लिए 'मुरगल' और रात के खाने के लिए 'बियारी' जैसे विशिष्ट शब्द उनकी संस्कृति की गहराई को दर्शाते हैं। हालांकि, समय के साथ बैगाओं की यह सांस्कृतिक विरासत बदल रही है। बाहरी समुदायों से संपर्क, आधुनिक शिक्षा और विकास कार्यक्रमों के प्रभाव के कारण उनकी पारंपरिक 'बैगानी' शब्दावली धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। युवा पीढ़ी अब हिंदी और छत्तीसगढ़ी का अधिक उपयोग कर रही है, जिससे उनके पारंपरिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण की आवश्यकता बढ़ गई है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य बैगाओं के इसी पारंपरिक ज्ञान और उनकी अनूठी शब्द-संपदा का विश्लेषण करना है ताकि इस अमूर्त धरोहर का संरक्षण किया जा सके।

पारंपरिक कृषि ज्ञान-पारंपरिक कृषि ज्ञान मुख्य रूप से समुदायों द्वारा हजारों वर्षों में विकसित किया गया वह अनुभवजन्य ज्ञान है जो मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता है। मध्य भारत की बैगा जनजाति इस ज्ञान की एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जो स्वयं को "माटी-पुत्र" (मिट्टी की संतान) मानते हैं और प्रकृति के साथ गहरा तालमेल रखते हैं। बैगाओं का पारंपरिक कृषि ज्ञान उनके धार्मिक विश्वासों, पारिस्थितिकी की समझ और जीवन जीने के सरल तरीके पर आधारित है। बैगा समुदाय की पारंपरिक खेती की सबसे प्रमुख विशेषता 'बेवर' (Bewar) है, जिसे 'झूम' या 'स्थानांतरित खेती' भी कहा जाता है। बैगा पारंपरिक रूप से हल चलाने के सख्त खिलाफ रहे हैं। उनका मानना है कि हल चलाना धरती माता की छाती को चीरने या उसे चोट पहुँचाने के समान है, इसलिए वे केवल कुदाल या खुदाई करने वाली छड़ियों (खंती) का उपयोग करते हैं। बेवर पद्धति में वे पहाड़ी ढलानों पर झाड़ियों और पेड़ों को काटकर उन्हें जला देते हैं और उस राख का उपयोग प्राकृतिक उर्वरक या खाद के रूप में करते हैं।

उनके कृषि चक्र में कोदो, कुटकी, मक्का, ज्वार और धान जैसे मोटे अनाज प्रमुख हैं। वे बीजों को बोने के लिए 'बुक्कड़' विधि का प्रयोग करते हैं, जिसमें बीजों को खेत में बिखेर दिया जाता है। बैगा ज्ञान के अनुसार, मिश्रित खेती (एक ही खेत में कई फसलें उगाना) मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने और कीटों से बचाव का एक प्रभावी तरीका है।

कृषि कार्य केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि उनके धार्मिक और सामाजिक जीवन का केंद्र है। खेती की शुरुआत 'बिदरी' (Bidri) त्योहार से होती है, जहाँ गांव का पुजारी (देवार) बीज बोने से पहले धरती माता और 'ठाकुर देव' की पूजा करता है और अच्छी फसल के लिए बलि देता है। इसके अलावा, 'हरेली' (फसल की सुरक्षा के लिए) और 'नवा' (नई फसल कटाई का पर्व) जैसे त्योहार उनके कृषि ज्ञान और प्रकृति के प्रति सम्मान को दर्शाते हैं।

खेती में लैंगिक भूमिकाएँ भी स्पष्ट हैं। बैगा महिलाएँ खेत साफ करने और जलाने में मदद करती हैं, लेकिन वे बीज बोने का काम नहीं करतीं क्योंकि वे पृथ्वी को एक स्त्री मानती हैं और उसकी देखभाल करती हैं। महिलाएँ रसोई उद्यानों (बाड़ी) में सब्जियां उगाने और अनाज के भंडारण के लिए जिम्मेदार होती हैं।

वर्तमान में, वन कानूनों और आधुनिक प्रभाव के कारण बैगा समुदाय बेवर खेती छोड़ कर settled (स्थायी) खेती या 'दोलिया' की ओर बढ़ रहा है। अब वे हलों और आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग भी करने लगे हैं। हालाँकि, उनका पारंपरिक ज्ञान अभी भी जड़ी-बूटियों, मिट्टी की पहचान और मौसम के पूर्वानुमान में बहुत प्रभावी है। इस पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण न केवल संस्कृति के लिए, बल्कि जैव विविधता और टिकाऊ भविष्य के लिए भी अनिवार्य है।

पारंपरिक औषधीय ज्ञान (Ethno-medicine)

पारंपरिक औषधीय ज्ञान (Ethno-medicine) एक ऐसी पद्धति है जिसमें किसी विशिष्ट संस्कृति के सदस्य बीमारियों के बारे में सोचते हैं और उनके उपचार के लिए सामाजिक और औषधीय रूप से स्वयं को संगठित करते हैं। मध्य भारत की बैगा जनजाति इस ज्ञान की विशेषज्ञ मानी जाती है, जिन्हें गोंड और कोल जैसी अन्य जनजातियाँ "मिट्टी के रहस्यों" का ज्ञाता और कुशल "औषधि-पुरुष" (Medicine-men) मानती हैं। बैगाओं का यह ज्ञान उनके जीवन जीने के तरीके, धार्मिक विश्वास और वनों के साथ उनके गहरे संबंध पर आधारित है।

बैगा समाज में चिकित्सा के मुख्य संरक्षक गुनिया (Guniya) और देवार (Dewar) होते हैं। गुनिया एक पारंपरिक उपचारक और जादूगर होता है जो तंत्र-मंत्र और जड़ी-बूटियों (Ethno-botany) दोनों का उपयोग करता है। देवार मुख्य रूप से पुजारी होता है, लेकिन वह भी औषधीय विशेषज्ञ के रूप में कार्य करता है। यह ज्ञान पूरी तरह से मौखिक है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बिना किसी दस्तावेजीकरण के हस्तांतरित होता है।

रोगों की पहचान और निदान के लिए बैगा उपचारक कई तरीके अपनाते हैं। सामान्यतः गुनिया मरीज की नाड़ी की गति या हृदय की धड़कन को छूकर बीमारी के लक्षणों को पहचानता है। अलौकिक शक्तियों या रुष्ट देवताओं की पहचान के लिए 'सूपा-तुमा' (Supa-tuma) विधि का उपयोग किया जाता है, जिसमें सूप में चावल के दानों और लौकी के पात्र (Tunta) के माध्यम से देवताओं से संवाद किया जाता है। बैगाओं का मानना है कि बीमारियाँ अक्सर बुरी आत्माओं या देवताओं के क्रोध के कारण होती हैं, जिन्हें शांत करने के लिए 'लारू काज' (Narayan-deo के लिए सुअर की बलि) जैसे अनुष्ठान किए जाते हैं।

बैगाओं का वनस्पति तंत्र अत्यंत समृद्ध है। वे विभिन्न रोगों के उपचार के लिए विशिष्ट पौधों का उपयोग करते हैं:

पीलिया (Jaundice): इसके लिए कालमेघ, भुईंआंवला, और पुनर्नवा की जड़ों का लेप उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, मजीठ (Rubia cordifolia) की जड़ों को महुआ की शराब में मिलाकर पिलाना एक प्रभावी उपचार माना जाता है।

मलेरिया: चिरचिरी (Achyranthus aspera) के पत्तों का लेप काली मिर्च और लहसुन के साथ दिया जाता है।

खांसी और सर्दी: अडूसा (Adusa) के पत्तों का काढ़ा या शहद के साथ जड़ी-बूटियों का चूर्ण दिया जाता है।

सर्पदंश (Snake Bite): अस्पताल दूर होने के कारण, बैगा 'जुलजामनी' और 'झुलुइया' नामक पौधों के रस का उपयोग करते हैं।

अन्य: कुंभी (Kumbhi) के पेड़ की छाल का उपयोग घर के प्रवेश द्वार पर बुरी आत्माओं को रोकने के लिए किया जाता है, जबकि सदाबहार को बीमारी मुक्त वातावरण के लिए लगाया जाता है।

बैगा 'सफेद जादू' (समुदाय के लाभ के लिए) और 'काला जादू' (नुकसान पहुँचाने वाला) के बीच स्पष्ट अंतर करते हैं। वर्तमान समय में, आधुनिक स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी और सांस्कृतिक प्रभाव के कारण, बैगा समुदाय अभी भी अपने पारंपरिक उपचारकों पर अधिक निर्भर है। हालांकि, यह ज्ञान तेजी से लुप्त हो रहा है, इसलिए इसे बायोपायरेसी (Biopiracy) से बचाने और दस्तावेजीकरण के माध्यम से संरक्षित करने की तत्काल आवश्यकता है। बैगाओं का यह पारंपरिक औषधीय ज्ञान न केवल उनके स्वास्थ्य की रक्षा करता है, बल्कि जैव विविधता के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और शब्द-संपदा

बैगा जनजाति की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और उनकी शब्द-संपदा उनके "माटी-पुत्र" (मिट्टी की संतान) होने के गौरव और प्रकृति के साथ उनके अटूट संबंध को दर्शाती है।

विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान (Unique Cultural Identity):

स्व-पहचान: बैगा स्वयं को पृथ्वी पर पैदा होने वाला पहला मानव और

'माटी-पुत्र' मानते हैं। उनका मानना है कि वे भगवान द्वारा विशेष रूप से बनाए गए हैं और पूरी पृथ्वी के राजा हैं।

शारीरिक पहचान (Identity Marks):

पुरुषों का जूड़ा: बैगा पुरुष अपने लंबे बालों को नहीं काटते और उन्हें सिर के पीछे बाईं ओर एक गांठ या जूड़े (Jura) में बांधते हैं, जो उनकी विशिष्ट पहचान है।

महिलाओं का गोदना: बैगा महिलाओं के लिए गोदना (Tattooing) शरीर का मुख्य आभूषण है। उनके माथे पर बना 'सीता-रसोई' (Sita-Rasoi) का प्रतीक, जिसे 'कपाड़ गोदे' (Kapad Goday) कहा जाता है, उनकी प्रमुख पहचान है। माना जाता है कि गोदना वाली महिला को ससुराल में सम्मान और मृत्यु के बाद मोक्ष मिलता है।

सामाजिक संरचना: बैगा समाज पितृसत्तात्मक है और विभिन्न अंतर्विवाही समूहों (जैसे बिंझवार, नरोतिया, भरोतिया आदि) में विभाजित है।

शब्द-संपदा (Vocabulary/Lexicon):

बैगा लोग 'बैगानी' बोली बोलते हैं, जो छत्तीसगढ़ी का एक रूप मानी जाती है और इंडो-आर्यन भाषा परिवार से संबंधित है। उनकी शब्दावली उनके दैनिक जीवन और प्राकृतिक परिवेश से गहराई से जुड़ी है:

भोजन से संबंधित शब्द:पेज (Pej): चावल या मोटे अनाज का घोल, जो उनका मुख्य आहार है।

मुखारी (Mukhari): सुबह हाथ-मुँह धोना और दातुन करना।

बासी (Basi): सुबह का नाश्ता, जो अक्सर रात का बचा हुआ भोजन होता है।

मुर्गल (Murgal): सुबह और दोपहर के बीच का भोजन (Lunch)।

मरिया (Mariya): दोपहर बाद का भोजन।

बियारी (Biyari): रात का भोजन।

दैनिक उपकरणों के शब्द:

टांगिया (Tangiya): कुल्हाड़ी।

खंती (Khanti): खुदाई करने वाली छड़ी।

तुकनी (Tukni): बांस की टोकरी।

छका (Chhaka): महुआ शराब पीने के लिए पत्तों से बना प्याला।

सामाजिक और धार्मिक भूमिकाएँ:

देवार (Dewar): गांव का पुजारी, जिसका स्थान सबसे ऊंचा होता है।

गुनिया (Guniya): पारंपरिक उपचारक या जादूगर जो जड़ी-बूटियों का ज्ञाता होता है।

मुकद्दम (Mukaddam): गांव का मुखिया।

वर्तमान में आधुनिकता और अन्य संस्कृतियों के प्रभाव के कारण बैगानी शब्दावली धीरे-धीरे कम हो रही है और यह बोली विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही है क्योंकि युवा पीढ़ी अब हिंदी और छत्तीसगढ़ी को प्राथमिकता दे रही है।

वस्त्र और आभूषण:

वस्त्र (Clothing)

लंगोटी (Langoti): यह पुरुषों द्वारा कमर पर लपेटा जाने वाला मुख्य वस्त्र है।

बंडी (Bandi): पुरुषों द्वारा शरीर के ऊपरी हिस्से में पहना जाने वाला बनियान या जैकेट (Vest-coat)।

फेटा (Pheta): पुरुषों द्वारा सिर पर बांधी जाने वाली पारंपरिक पगड़ी (Turban)।

मूँगी, कनिहार, बगरा, चदरिया, और चौखाना: ये बैगा महिलाओं द्वारा पहनी जाने वाली पारंपरिक साड़ियाँ हैं, जिन्हें अक्सर पनिका बुनकरों द्वारा बुना जाता है।

धुतिया (Dhutia): महिलाओं द्वारा पहना जाने वाला कपड़े का एक छोटा टुकड़ा जो कंधे से घुटनों तक शरीर को ढंकता है।

पोकखा (Pokkha): महिलाओं द्वारा पहनी जाने वाली ब्लाउज।

थोला (Thola): यात्रा या नृत्य के दौरान पुरुषों द्वारा अपने साथ ले जाया जाने वाला सूखा भोजन, जिसे वे अपने वस्त्रों के साथ रखते हैं।

आभूषण (Ornaments)

बैगा समुदाय, विशेष रूप से महिलाएँ, विभिन्न प्रकार के धात्विक और गैर-धात्विक आभूषणों की शौकीन होती हैं:

गुरिया माला (Guriya Mala) / भंवरी माला (Bhauri Mala): कांच के रंगीन मोतियों से बना हार।

सुता / सुतिया (Suta/Sutiya): गले में पहना जाने वाला चांदी का मोटा हार या हँसली (Silver necklet)।

हवल (Hawal): चांदी या सोने के पुराने सिक्कों को गूंथकर बनाई गई माला।

मूंगा बलियाँ (Moonga Baliyan): कान के ऊपरी हिस्से (लोब) में पहने जाने वाले आभूषण।

बारी (Bari): कान के निचले हिस्से में पहने जाने वाले झमके।

नगमोर (Nagmori): बांहों पर पहना जाने वाला बाजूबंद (Armlet)।

कड़ा (Kada): पुरुषों और महिलाओं दोनों द्वारा कलाई पर पहना जाने वाला चांदी का कड़ा।

बिछिया (Bhicchhiya) / चुटकी (Chutki): पैर की उंगलियों में पहने जाने वाले छल्ले।

फुंदरा (Phundara): बालों को सजाने के लिए उपयोग किए जाने वाले रंगीन रिबन और फूल।

बीरन (Birans): नृत्य के समय महिलाओं द्वारा बालों में लगाई जाने वाली विशेष घास की सजावट।

गोदना (Godna/Tattoo): बैगा महिलाओं के लिए यह शरीर का सबसे महत्वपूर्ण और स्थायी आभूषण माना जाता है। माथे पर बना 'सीता-रसोई' (Kapad Goday) का चिन्ह उनकी विशिष्ट पहचान है।

आधुनिक समय में, बैगा युवाओं के बीच अब पैंट, शर्ट, जींस और टी-शर्ट जैसे आधुनिक वस्त्रों का चलन बढ़ गया है, जबकि पारंपरिक वस्त्रों को अब मुख्य रूप से त्योहारों और विशेष अवसरों पर ही पहना जाता है।

महुआ (Mahua):बैगा जनजाति के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में महुआ (Madhuca indica) का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। महुआ न केवल उनके भोजन और जीविकोपार्जन का साधन है, बल्कि इसे उनके बीच 'अमृत' या पवित्र जल के समान माना जाता है।

महुआ के बारे में मुख्य बिंदु नीचे दिए गए हैं:

1. सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व:बैगा समुदाय में जन्म से लेकर मृत्यु तक हर विशेष अवसर पर महुआ की शराब का उपयोग अनिवार्य माना जाता है।

अतिथियों का स्वागत महुआ की शराब भेंट करके किया जाता है और इसे देवताओं को भी अर्पित किया जाता है।

बैगा लोग महुआ के पेड़ को अत्यंत पवित्र मानते हैं और इसे कभी नहीं काटते।

2. महुआ शराब (मद/मांड) और निर्माण विधि:महुआ के फूलों को सुखाकर और सड़ाकर शराब तैयार की जाती है, जिसे स्थानीय भाषा में 'मद' या 'मांड' कहा जाता है।शराब बनाने के लिए आसवन (Distillation) विधि का प्रयोग किया जाता है, जिसमें चार बर्तनों के सेट का उपयोग होता है. आसवन के दौरान प्राप्त होने वाली सबसे शुद्ध और तीव्र शराब को 'फुली' कहा जाता है।

बैगा पुरुष और महिलाएँ इसे पारंपरिक रूप से पत्तों के बने प्याले, जिसे 'छका' कहते हैं, में पीते हैं।

3. खाद्य और औषधीय उपयोग:महुआ के फूलों को सुखाकर साल भर के लिए संग्रहित किया जाता है और इनसे चटनी भी बनाई जाती है।

बैगा उपचारक (गुनिया) महुआ शराब का उपयोग औषधि के आधार के रूप में करते हैं; जैसे पीलिया (Jaundice) के इलाज के लिए इसमें मजीठ की जड़ों का चूर्ण मिलाकर दिया जाता है।

4. आर्थिक आधार:महुआ का संग्रह बैगा अर्थव्यवस्था का मुख्य हिस्सा है, जिसे विशेष रूप से महिलाएँ वनों से एकत्र करती हैं।

वे महुआ के फूलों और इसके बीजों (डोरी) को स्थानीय साप्ताहिक बाजारों (हाट) में बेचकर अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए नकद राशि प्राप्त करते हैं।

आधुनिक प्रभाव के कारण नई पीढ़ी में महुआ शराब के सेवन की आदतों में कुछ बदलाव आ रहा है, जहाँ शिक्षित युवा इसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति सचेत हो रहे हैं।

भाषा और व्याकरण की संरचना-भाषा और व्याकरण की संरचना किसी भी समुदाय की पहचान और उसके विचारों की अभिव्यक्ति का मुख्य आधार होती है। स्रोतों के अनुसार, भाषा को उच्चारण किए जाने वाले संकेतों की एक नियमबद्ध व्यवस्था माना गया है, जिसके माध्यम से एक सामाजिक समूह के सदस्य परस्पर सहयोग और अंतःक्रिया करते हैं। भाषा की संरचना मुख्य रूप से निम्नलिखित पाँच मूल तत्वों से मिलकर तैयार होती है:

वर्णमाला या ध्वनि (Phonemes): यह भाषा की सबसे छोटी इकाई है। बिना ध्वनि के भाषा का निर्माण संभव नहीं है क्योंकि मन के भावों को प्रकट करने के लिए मुख से उच्चारण आवश्यक है।

शब्दावली (Morphemes): ध्वनियों के मेल से शब्द बनते हैं। ये 'सरल' (जैसे: हम) या 'जटिल' (जैसे: हमराही) हो सकते हैं। शब्द अर्थयुक्त होते हैं और इनके माध्यम से ही मन के भाव प्रकट किए जाते हैं।

वाक्य (Sentence): अनेक शब्दों को नियमानुसार जोड़कर वाक्य बनाए जाते हैं, जिनका कार्य भावों को पूर्णतः स्पष्ट करना होता है।

व्याकरण (Grammar): व्याकरण वह शास्त्र है जो शब्दों के शुद्ध रूप और प्रयोग के नियमों (जैसे लिंग, वचन, काल) का निरूपण करता है। इसके तीन मुख्य अंग हैं: अक्षर विचार, शब्द विचार और वाक्य विचार।

लिपि (Script): यह अक्षरों को अंकित करने या लिखने का रूप है।

बैगानी बोली और व्याकरण की विशिष्टता:-बैगा जनजाति की अपनी कोई स्वतंत्र लिपि नहीं है; उनकी बैगानी बोली पूर्णतः मौखिक है। विद्वानों के अनुसार बैगानी, छत्तीसगढ़ी का एक रूप है और इंडो-आर्यन भाषा परिवार से संबंधित है। इसकी व्याकरणिक संरचना की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

संज्ञा और सर्वनाम: बैगानी में संज्ञा के पाँच प्रकार (व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, पदार्थवाचक, समूहवाचक और भाववाचक) होते हैं। सर्वनामों का प्रयोग संवाद के लिए किया जाता है।

लिंग निर्धारण: बैगानी में स्त्री लिंग की पहचान के लिए मूल शब्दों में अक्सर 'इ' (i), 'इन' (in), 'एन' (en) जैसे प्रत्यय जोड़े जाते हैं। जैसे: 'भतीज' से 'भतीजेन'।

वचन: बहुवचन बनाने के लिए संज्ञा के बाद अक्सर 'मन' जोड़ा जाता है (जैसे: दाउ मन) या शब्द से पहले 'सफ्फो' या 'रदा' (सब) लगाया जाता है।विशेषण और द्विरुक्ति (Reduplication): आयु में भेद करने के लिए जड़ शब्दों के साथ 'बड़का' (बड़ा), 'मझुला' (मझला) और 'नान' (छोटा) जैसे विशेषणों का प्रयोग होता है। इसके अलावा, 'बाबा', 'दादा' जैसे शब्दों में द्विरुक्ति बैगानी की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

क्रिया और कारक: बैगानी व्याकरण में बुन्देली और गोंडी का प्रभाव भी दिखता है। उदाहरण के लिए, भूतकाल में 'ने' का प्रयोग (जैसे: वाह ने पूछे) और उत्तम पुरुष एकवचन में 'ना' प्रत्यय का अधिक प्रयोग किया जाता है। बैगानी व्याकरण हिंदी की तुलना में कुछ लचीला है। जहाँ हिंदी में बड़ों के लिए 'आप' और छोटों के लिए 'तुम' का प्रयोग होता है, वहीं बैगानी में दोनों के लिए समान रूप से 'तै' शब्द का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में आधुनिकता और बाहरी संपर्क के कारण बैगानी शब्दावली में छत्तीसगढ़ी और हिंदी का मिश्रण बढ़ रहा है, जिससे इसकी मौलिक शुद्धता के लुप्त होने का खतरा बना हुआ है।

सांस्कृतिक परिवर्तन और चुनौतियां-बैगा जनजाति, जो स्वयं को "माटी-पुत्र" और पृथ्वी का पहला मानव मानती है, वर्तमान में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक संक्रमण के दौर से गुजर रही है। आधुनिकता, शिक्षा और बाहरी समुदायों के साथ बढ़ते संपर्क ने उनकी पारंपरिक जीवनशैली में कई परिवर्तन और चुनौतियां उत्पन्न की हैं, जो निम्नलिखित हैं:

1. आजीविका और कृषि पद्धति -बैगा पारंपरिक रूप से 'बेवर' (स्थानांतरित खेती) और शिकार पर निर्भर थे। वन कानूनों और सरकारी हस्तक्षेप के कारण अब वे settled (स्थायी) कृषि की ओर बढ़ रहे हैं।

परिवर्तन: वे अब हलों और आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग करने लगे हैं, जबकि पहले वे धरती पर हल चलाना पाप मानते थे।

चुनौती: स्थायी खेती में उत्पादकता कम होने के कारण बैगा समुदाय में ऋणग्रस्तता और मजदूरी पर निर्भरता बढ़ी है।

2. वेशभूषा और शारीरिक पहचान -आधुनिकता का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव बैगाओं की पहचान के प्रतीकों पर पड़ा है: पहचान का संकट: बैगा पुरुषों की विशिष्ट पहचान उनका 'जूड़ा' (Jura) था, जो अब नई पीढ़ी के लड़कों के बीच लुप्त हो रहा है क्योंकि वे अब आधुनिक हेयर-कट अपनाने लगे हैं।

गोदना (Tattooing): बैगा महिलाओं के लिए गोदना शरीर का मुख्य आभूषण था, लेकिन अब यह प्रथा भी धीरे-धीरे कम हो रही है क्योंकि आधुनिक युवतियां इस कष्टदायी प्रक्रिया से बचना चाहती हैं।

पहनावा: पारंपरिक लंगोटी और हाथ से बुनी साड़ियों के स्थान पर अब युवा पैंट, शर्ट, जींस, टी-शर्ट और मिल में बनी साड़ियों को प्राथमिकता दे रहे हैं।

3. भाषा और बोली का संकट-बैगाओं की अपनी मातृभाषा 'बैगानी' है, जो अब विलुप्ति के कगार पर है:

भाषिक परिवर्तन: स्कूली शिक्षा और बाहरी संपर्क के कारण युवा अब हिंदी और छत्तीसगढ़ी का अधिक उपयोग कर रहे हैं।

चुनौती: नई पीढ़ी बैगानी शब्दावली को भूल रही है और बाहरी लोगों के सामने अपनी बोली बोलने में संकोच महसूस करती है।

4. पारंपरिक कला और मनोरंजन का बाजारीकरण-परिवर्तन: बैगाओं के पारंपरिक नृत्य जैसे कर्मा, सैला और दशहरा अब मनोरंजन के साथ-साथ आय का साधन भी बन गए हैं। पेशेवर बैगा नृत्य दल अब मंच प्रदर्शन के लिए विभिन्न शहरों में जाते हैं।

चुनौती: मीडिया और बाजारीकरण के प्रभाव में पारंपरिक नृत्य शैलियों और गीतों की मौलिकता प्रभावित हो रही है। 'परघौनी हाथी नाच' जैसे कई पारंपरिक नृत्य नाटक लुप्त हो रहे हैं।

5. अन्य महत्वपूर्ण चुनौतियां-स्वास्थ्य और कुपोषण: आधुनिक स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी और वनों से दूरी के कारण कुपोषण और जलजनित बीमारियों का खतरा बढ़ गया है। पारंपरिक ज्ञान की चोरी (Biopiracy): बैगाओं का औषधीय ज्ञान मौखिक है, जिसका दस्तावेजीकरण न होने के कारण बायो-पायरेसी का खतरा बना रहता है। शराब का अत्यधिक सेवन: महुआ की शराब जो कभी केवल धार्मिक अनुष्ठानों का हिस्सा थी, अब उनके सामाजिक आर्थिक पतन का एक प्रमुख कारण बन रही है। बैगा समुदाय आधुनिक विकास और अपनी पारंपरिक संस्कृति के संरक्षण के बीच संघर्ष कर रहा है। यद्यपि वे मुख्यधारा से जुड़ रहे हैं, किंतु इस प्रक्रिया में उनकी अनूठी सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखना एक बड़ी चुनौती है।

निष्कर्ष-बैगा जनजाति मध्य भारत की एक अत्यंत प्राचीन और विशिष्ट पिछड़ी जनजाति (PVTG) है, जो स्वयं को 'माटी-पुत्र' और पृथ्वी का पहला मानव मानती है। निष्कर्षतः, यह समुदाय वर्तमान में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और सामाजिक संक्रमण के दौर से गुजर रहा है।

प्रकृति के साथ अटूट संबंध और पारंपरिक ज्ञान: बैगाओं की पूरी जीवनशैली वनों और प्रकृति के साथ सहजीविता पर टिकी है। उनका पारंपरिक औषधीय ज्ञान (Ethno-medicine) और 'बेवर' (स्थानांतरित खेती) के प्रति उनका धार्मिक दृष्टिकोण उन्हें अन्य समुदायों से अलग करता है। स्रोतों के अनुसार, वे मिट्टी के रहस्यों के विशेषज्ञ माने जाते हैं।

आधुनिकीकरण और बदलता जीवन प्रतिमान: विकास कार्यक्रमों, सड़क संपर्कों और शिक्षा के प्रसार के कारण बैगा समुदाय धीरे-धीरे मुख्यधारा से जुड़ रहा है। वे अब खानाबदोश जीवन छोड़कर स्थायी कृषि अपना रहे हैं और आधुनिक उपकरणों का उपयोग कर रहे हैं। नई पीढ़ी में शिक्षा के प्रति चेतना बढ़ी है और कुछ युवा नौकरियों में भी आ रहे हैं।

सांस्कृतिक पहचान का संकट: आधुनिकीकरण के सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ उनकी विशिष्ट पहचान को गंभीर खतरा पैदा हो गया है। बैगा पुरुषों का पारंपरिक 'जूड़ा' और महिलाओं का कष्टदायी 'गोदना' अब नई पीढ़ी के बीच लुप्त हो रहा है। सबसे चिंताजनक उनकी 'बैगानी' बोली का लुप्त होना है, क्योंकि युवा अब हिंदी और छत्तीसगढ़ी को प्राथमिकता दे रहे हैं। चुनौतियां और भविष्य की आवश्यकता: यद्यपि विकास हुआ है, लेकिन बैगा समुदाय अभी भी गरीबी, ऋणग्रस्तता, उच्च स्कूल ड्रॉपआउट दर और कुपोषण जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। इसके अतिरिक्त, महुआ शराब का अत्यधिक सेवन उनके सामाजिक-आर्थिक पतन का एक बड़ा कारण बना हुआ है।

अंतिम विचार: बैगाओं का भविष्य उनकी पारंपरिक विरासत और आधुनिक प्रगति के बीच संतुलन पर निर्भर करता है। स्रोतों का सुझाव है कि उनके औषधीय ज्ञान को बायोपायरेसी से बचाने के लिए दस्तावेजीकरण करना और उनकी कला व भाषा को संरक्षित करने के लिए जनजाति-विशिष्ट विकास दृष्टिकोण अपनाना अनिवार्य है। उन्हें अपनी जड़ों से काटे बिना विकास की मुख्यधारा में शामिल करना ही उनके अस्तित्व की रक्षा का एकमात्र मार्ग है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एलविन, वेरियर. (1986). द बैगा (The Baiga). ज्ञान पब्लिशिंग हाउस (मूल प्रकाशन 1932, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).
2. कुमार, ए., एवं भारद्वाज, पी. (2020). द स्टडी ऑफ एलुसिडेशन ऑफ बैगा ट्राइब्स ऑफ मध्य प्रदेश. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज एंड सोशल स्टडीज, 7(12), 22-25.
3. चौरसिया, विजय. (2004). प्रकृति पुत्र बैगा. मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.
4. तिवारी, कृष्णा. (2019). बैगा जनजाति के उत्पत्ति की अवधारणा. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिंदी रिसर्च, 5.
5. निरगुणे, वसंत. (2011). बैगा (मोनोग्राफ). मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद.
6. प्रसाद, डी. वी. (2016). एनवायरनमेंटल चेंज एंड रिसोर्स मैनेजमेंट स्ट्रेटजीस अमंग द बैगा ऑफ मेकल हिल्स ऑफ अमरकंटक रीजन. मेकल इनसाइट्स, 4(1).
7. राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छत्तीसगढ़. (2024). कक्षा-1 बैगानी-हिंदी पाठ्यपुस्तक (सत्र 2024-25).
8. राउ, बी. के. (1977). द ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया. कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
9. मजूमदार, डी. एन. (1958). द ईस्टर्न एंथ्रोपोलॉजिस्ट.
10. यादव, तन्वी. (2020). विच हंटिंग. ए ग्लोबल जर्नल ऑन सोशल एक्सक्लूजन, 1(2), 169-182.
11. उमा देवी, बी. वी. (2004). डिपेंडेंसी ऑन फॉरेस्ट्स फॉर लाइवलीहुड एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन एनवायरनमेंट. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी (LBSNAA).
12. फक्स, स्टीफन. (2018). द बैगा: अंडरस्टैंडिंग ऑफ अल्टीमेट रियलिटी एंड मीनिंग. मैकमिलन एंड कंपनी.
13. महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय. (2004). विज्ञापन एवं विक्रय प्रबंध (Advertising & Sales Management). दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, रोहतक.
14. इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र (IGNCA). (2024). संस्कृति एवं भाषा संरक्षण पुस्तक सूची.

'विष्णु पुराण में भारतबोध'

डॉ. अनिल कुमार सिंह
फ्लैट नंबर - 47सी, नंदन अपार्टमेंट्स, बीए ब्लॉक, के.सी. गोयल मार्ग, फेज-1, अशोक विहार, नई दिल्ली - 110052

'है बात कुछ ऐसी कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' इकबाल की इन पंक्तियों में जिस बात की ओर संकेत किया गया है उसका स्पष्ट उत्तर हमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'विरुद्धों के सामंजस्य' में मिल जाता है यानी सदियों से इस देश की प्रवृत्ति रही है कि वह एक-दूसरे के विरोधी विचार को भी अपने भीतर समाहित करने की क्षमता रखती है यही कारण रहा कि जितने भी आक्रमणकारी इस देश में आए उनमें से ज्यादातर इसी भूमि में रच- बसकर भारतीय हो गये। भारत की यह प्रवृत्ति वैदिक काल से ही चली आ रही है कि जहाँ वेदों में वर्णाश्रम व्यवस्था को कठोरता से लागू करने की बात कही गई है वही पुराणों तक आते-आते जो वेदों में उपेक्षित थे उन्हें श्रेष्ठ भी घोषित किया जाता है। स्त्री और दलित जिन्हें वेदों में हाशिए पर रखा गया था उन्हें **'विष्णु पुराण'** ने स-तर्क श्रेष्ठता का दर्जा प्रदान किया, इसलिए अनायास ही इस दौर में विष्णु पुरण की प्रासंगिकता बढ़ गई है। 'विष्णु पुराण' का रचना काल क्या है इस पर विद्वान एक-दूसरे से सहमत तो नहीं दिखाई पड़ते लेकिन उपलब्ध स्त्रोतों के आधार पर कुछ विद्वानों ने अवश्य ही उसका रचनाकाल निर्धारित करने की कोशिश की है। जिसमें कुछ उपलब्ध जानकारी निम्नलिखित है-

रामचन्द्र दीक्षित (1951) :- 700-300 ईसा पूर्व
विन्सेंट स्मिथ (1908) :- 400-300 ईसा पूर्व
मारिज विण्टरनित्ज (1932) :- सभ्यवतः प्रथम शताब्दी का आरंभिक काल
राजेन्द्र चन्द्र हजारा (1940) :- 275–325 ई.
वेंडी डोनियर (1988) :- 450 ई.
चिन्तामण विनायक वैद्य (1925) :- 9वीं शताब्दी*

ये कुछ प्रमुख विद्वानों ने विष्णु पुराण के रचना काल का निर्धारण किया है। किसी भी रचना का रचनाकाल महत्वपूर्ण तो है परन्तु इससे उसके भीतर लिखे गये भाव और विचार का महत्व कम नहीं होता। इसी कारण से विष्णु पुराण एक बार पुनः चर्चा के केन्द्र में है।

भारत में कुछ विषय ऐसे हैं जिस पर बात करते हुए हमेशा लोग कई खेमों में बंटते दिखाई देते हैं, जिसमें एक खेमा – पाश्चात्य प्रभाव साबित करता है तो दूसरा खेमा प्राचीन भारतीय परम्परा से जोड़कर उसे विशुद्ध भारतीय साबित करने की कोशिश करता है। किसी भी वैसे विषय पर वाद-विवाद करना वैसे तो विकासशीलता की निशानी ही है। यह होते भी रहना चाहिए क्योंकि कहते हैं ना कि किसी विषय पर मिल-बैठकर बात करने से समाधान निकल ही जाता है। हमारे देश में वैसे भी शास्त्रार्थ की परम्परा पौराणिक काल से ही चली आ रही है जिसका कुछ स्वरूप आज भी खाप - पंचायत में दिख भी जाती है जहाँ अपने समाज या गाँव की हर छोटी-छोटी समस्या का हल खोजने के लिए अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाते बल्कि पंचायत के स्तर पर ही मिल बैठकर ऐसी समस्याओं का हल खोज लिया जाता है। पर कुछ देश व्यापी मुद्दे होते हैं जिनका हल पंचायत स्तर पर ढूंढ़ पाना संभव नहीं है। जिसमें देश की प्राचीनता, स्त्री और दलित विमर्श आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिस पर यह देश कभी-भी उद्वेलित हो जाता है। विषय इतना संवेदनशील है कि सामान्य तौर पर लोग ऐसे विषयों पर बात करने से लगभग परहेज ही करते हैं। जिनको इन्हीं विषयों को केन्द्र में रखकर अपनी राजनीतिक रोटी सेकनी है वह इन विषयों पर उन्हीं पक्षों पर जोर देते नजर आते हैं

जिससे उनका राजनीतिक हित सधता हो। और जब सामाजिक और धार्मिक विषय राजनीतज्ञों के हथियार बनने लगते हैं तो आम जनता ऐसे विषयों से खुद को अलग ही कर लेती है। जब हम देश की प्राचीनता का सवाल उठाते हैं तब हम पाते हैं कि इस विषय पर भी देश का बुद्धिजीवी समाज दो स्पष्ट अलग-अलग खेमों में खड़ा है। एक खेमा इस देश को सिन्धु घाटी सभ्यता से जोड़कर अपने को 5000 साल पुराना बताता है तो दूसरा खेमा खुद को ब्रह्मा जी की संतति घोषित करते हुए खुद को लाखों साल पुराना घोषित है दोनों खेमों में इतने वर्षों का अंतर है कि इनका कभी एक-दूसरे से सहमत होने की कोई संभावना भी दिखाई नहीं पड़ती। इसी प्रकार की समस्या दलित और स्त्री विमर्श को लेकर भी सामने आती है। जब दलित समाज के प्रति संवेदनशीलता का विषय आता है तब कुछ लोग इसे बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर जी से भी जोड़ देते हैं और कुछ पाश्चात्य प्रभाव से। साथ ही इस विषय पर बात करते हुए अक्सर लोग तमाम भारतीय वांग्मय जैसे- **वेद, पुराण, उपनिषद्, स्मृति, ब्रह्माण ग्रन्थ** आदि एक सिरे से दलित विरोधी घोषित कर देते हैं शायद बिना पढ़े ही सिर्फ सुनी-सुनाई अर्धसत्य बातों और तथ्यों के आधार पर ही ऐसा फैसला सुना देते हैं। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आज उस समुदाय के लोगों में एक सामान्य मनः स्थिति दिखाई पड़ने लगी है कि भारत वर्ष में लिखे गये तमाम वाग्मय दलित विरोधी हैं और इनका निषेध किया जाना चाहिए। यही कारण है कि समय-समय पर इन साहित्यों का विरोध करते हुए उन्हें फाड़ने और जलाये जाने की खबरें भी समाचार-पत्रों की सुर्खिया बनती रहती हैं।

जो कि एक चिंताजनक प्रवृति है। अगर इसी तरह की प्रवृत्ति बढ़ती रही और हर वर्ग और समुदाय लोग एक- दूसरे समुदायों के धार्मिक ग्रन्थों को फाड़ते और जलाते रहे तो एक दिन देश में अराजकता फैल जाएगी जो किसी भी समुदाय के लिए ठीक बात नहीं होगी, क्योंकि इस देश को ऊँचाईयों तक पहुँचाने में सभी समुदायों के अपना-अपना योगदान दिया है। देश का इस शिखर तक पहुँचाने का श्रेय कोई एक समुदाय नहीं ले सकता इसलिए सभी देशवासियों के लिए यह उचित होगा कि हम एक-दूसरे की भावनाओं और भावनात्मक प्रतीकों का सम्मान करें। किसी धर्म -ग्रन्थ को जला देने से उसमें लिखी बातें खत्म नहीं हो जाती क्योंकि इतिहास ऐसी अनेकों घटनाओं का साक्षी है जिसमें हमारे धर्म-ग्रन्थों को क्या पुरी-पुरी पुस्तकालय और विश्वविद्यालय को ही जला दिया गया परन्तु क्या उससे भारत की ज्ञान परम्परा समाप्त हो गई? परम्परायें लोगों के दिलों में जिंदा रहती हैं इसलिए पुस्तक जलाना या फाड़ना किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसके विपरीत अगर हम धार्मिक दृष्टि को छोड़कर अगर दूसरे समुदाय की पुस्तकों को अध्ययन करने की कोशिश करें तब भी शायद कुछ समाधान हम पा सकते हैं। क्योंकि ज्यादातर पुस्तकें पूर्वाग्रह से मुक्त होकर ही लिखी जाती हैं।

आज हम जिस धार्मिक ग्रन्थ को केन्द्र में रखकर इस विश्लेषण करेंगे वह है **'विष्णु पुराण'**। भारत में 18 पुराण लिखे जाने की जानकारी ज्ञात हुई है उसी में यह विष्णु पुराण भी शामिल है। इसके लिखे जाने का ठीक-ठीक समय का ज्ञात तो नहीं हो पाता लेकिन इसके अध्ययन से इस बात की जानकारी अवश्य ही प्राप्त हो जाती है कि अब तक हम ऐसी पुस्तकों को दलित और स्त्री विरोधी घोषित कर उन्हें खारिज कर रहे थे वह बात झठी साबित होती हैं। वैसे तो यह एक धार्मिक ग्रन्थ हैं परन्तु इस भारत देश की महिमा और दलित और स्त्री समस्या पर बहुत स्पष्ट रूप से बात रखी गई है। और यह मुद्दे तब से ज्यादा आज प्रासंगिक लगते हैं। इससे पता चलता है कि यह पुस्तक जब भी लिखी गई हो और जिसने भी लिखी हो वह तो साधारण मनुष्य नहीं बल्कि कोई भविष्यवेता ही होंगे जिन्होंने हजारों वर्ष पहले भी ऐसे संवेदनशील विषयों पर अपनी लेखनी चलाई होगी और देश को संदेश दिया होगा जिसका महत्व हमें आज दिखाई देता है।

पहले हम **विष्णु पुराण** के **द्वितीय अंश** के **दूसरे अध्याय** में वर्णित भूगोल विवरण पर प्रकाश डालेंगे। जिसमें ऋषि मैत्रेय का प्रश्न और ऋषि श्रीपराशर का उत्तर शैली में पूरी पृथ्वी के भूगोल का विस्तृत विवरण किया गया है। अपने प्रश्न में ऋषि मैत्रोय जी पृथ्वीमंडल पर जितने भी **सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ और देवता** आदि की **पुरियाँ** है उसका यथावत वर्णन करने का आग्रह करते हैं। जिसका उत्तर देते हुए ऋषि श्री पराशर जी कहते हैं- **हे मैत्रेय। सुनो, मैं इन सब बातों का संक्षेप में ही वर्णन करूँगा क्योंकि विस्तार से वर्णन करने में तो सौ वर्ष का समय भी कम पड़ेगा।** अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए श्री पराशर जी कहते हैं-

जम्बूप्लक्षावयौ द्वीप शाल्मलश्चापरो द्विज।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुस्करश्चैव सप्तमः।5

द्वितीय अंश - दूसरा अध्याय

एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः सम्रग् 16

अर्थात्– जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और सातवां पुष्कर- ये सातों द्वीप चारों ओर से खारे पानी, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दुग्ध, और मीठे जल के सात समुद्रों से घिरे हुए हैं।

जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः।
तस्यापि मेरुमैत्रेय मध्ये कनकपर्वतः।। 7
चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छयः।। 8
प्रविष्टि षोऽशाद्यस्ताद्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः।।
मूले षोऽशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वशः।।9
भूप पद्यस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः।।10

अर्थात्- जम्बू द्वीप इन सबके मध्य स्थित है और उसके भी बीचों-बीच में सुवर्णमिय सुमेरु पर्वत है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है और नीचे की ओर यह सोलह हजार योजन पृथ्वी में घुसा हुआ है। इसका विस्तार उपरी भाग में बत्तीस हजार योजन है तथा नीचे केवल सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत इस पृथ्वी रूप कमल की कर्णिका (कोश) के समान है।

हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च श्रृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः।।11

इसके दक्षिण में हिमवान, हेमकूट और निषध तथा उत्तर में नील, श्वेत और श्रृंगी नामक वर्ष पर्वत हैं। (जो भिन्न-भिन्न वर्षों का विभाग करते हैं।)

भारतं प्रथमं वर्ष ततः किम्पुरुषं स्मृतम्।
हरिवर्ष तथैवान्यन्मेरो दक्षिणतो द्विज।। 13
रम्यकं चोत्तरं वर्ष तस्यैवानु हिरणयम्।
उत्तराः करवश्चैव यथा वै भारतं तथा।।14

अर्थात्– मेरु पर्वत के दक्षिण की ओर पहला भारतवर्ष है दूसरा किम्पुरुषवर्ष और तीसरा हरि वर्ष है। उतर की ओर प्रथम रम्यक, फिर हिरण्यमय और तदनंत्तरं उत्तरकुरुवर्ष है जो (द्वीपमंडल की सीमा होने के कारण) भारत वर्ष के समान है।

इस अध्याय में भारत वर्ष के आसपास के द्वीपों, समुद्र, नदियों, पर्वतों आदि के लम्बाई चौड़ाई का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। 'विष्णु पुराण' की द्वितीय अंश के तीसरे अध्याय में भारत वर्ष का विस्तृमत विवरण भी हमें मिलता है। जिसमें भारत वर्ष की भौगोलिक, सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवस्था की विस्तारपूर्वक वर्णन भी किया गया है। तथा यह भी बताया है कि पूरी पृथ्वी पर निवास करने के लिए भारत वर्ष से उचित कोई स्थान नहीं है। यहाँ निवास करने वाले व्यक्तियों पर हमेशा ईश्वर की कृपा बनी रहती है जिसके कारण उनका जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत होता है। और इसके परिणाम स्वरूप यहाँ के निवासी निरंतर पूजा-पाठ आदि पवित्र कार्यों में लगे रहते हैं और पूरी

पृथ्वी के कल्याण की कामना भी करते रहते हैं।

उतरं यप्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणाम्।
वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्नतिः।।1

द्वितीय अंश - तीसरा अध्याय

नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने।
कर्म भूमिरियं स्वर्गमपवर्ग च गच्छताम्।।2
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्चय पारिमात्राश्च सप्तात्र कुलपर्वताः।।3

अर्थात् - जो समुद्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित है, वह देश भारत वर्ष कहलाता है। उसमें भरत की सन्तान बसी हुई है। इसका विस्तार नौ हजार योजन है। यह स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त करने वालों की कर्म भूमि है। इसमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्धय और परित्राण ये सात कुलपर्वत है।

योजनानां सहस्रं तु द्वीपोज्यं दक्षिणोत्तरात।
पूर्वे किराता यास्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः।।8
ब्रह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्य भागशः।
इऽयायुद्यवणिज्या द्यैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः।।9

अर्थात्- यह द्वीप उत्तर में दक्षिण तक सहस्र योजन है। इसके पूर्वी भाग में किरात लोग और पश्चिम में यवन बसे हुए हैं। तथा यज्ञ युद्ध और व्यापार आदि अपने-अपने कर्मों की व्यवस्था के अनुसार आचरण करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण निवास करते हैं।

इससे आगे भी तीसरे अध्याय में सभी नदियों पर्वत्तों, समुद्रों आदि की विस्तार पूर्वक वर्णन हमें मिलता है सांस्कृतिक और धार्मिक कृत्यों की विस्तार से चर्चा भी हमें इस अध्याय में प्राप्त होता है। 'विष्णु पुराण' में इस वर्णन के आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत की प्राचीनता को विवाद का विषय बनाना व्यर्थ और राजनीति मुद्दा है भारत का हजारों वर्षों का इतिहास इससे पौराणिक वाग्मय में सुरक्षित है। अब आगे हम दलित और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर चर्चा करेंगे जिसका स्वरूप हमें विष्णु पुराण के **षष्ठ अंश** के **दूसरे अध्याय** में मिलता है। ऋषि-मुनियों का एक दल महर्षि व्यास के पास यह जिज्ञासा लेकर पहुँचा कि किस समय में थोड़ा सा पुण्य भी महान फल देता और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं। जब ऋषि - दल यहाँ पहुँचा तो महर्षि व्यास गंगा में स्थान कर रहे थे और गंगा में डुबकी लगाते हुए उनके मुख से **'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है। स्त्रियाँ ही साधु हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन हैं?** यह शब्द निकल रहे थे जिसे सुनकर उपस्थित ऋषि-दल आश्चर्य में पड़ गये और अपनी जिज्ञासा शांत करने हेतु उन्होंने व्यास से इसका रहस्य जानना चाहा कि गंगा स्नान के दौरान जो बाते आपके मुख से निकली उसका रहस्य हमें भी समझाइये उनका उत्तर देते हुए महर्षि व्यास कहते हैं-

व्रतचर्यापरैर्ग्राह्या वेदाः पूर्व द्विजातिभिः।
ततस्स्वधर्मसम्प्राप्तैर्यष्टव्यं विधिवद्धमैः।।19

षष्ठ अंश - दूसरा अध्याय

वृथा कथा वृथा भोज्यं वृथेज्या च द्विजन्मनाम्।
पतनाय ततो भाव्यं तैस्तु संयमिभिस्सदा।।20
असम्यक्करणे दोषस्तेषां सर्वेषु वस्तुषु।
भोज्यपेयादिकं चैषां नेच्छाप्राप्तिकरं द्विजाः।। 21

अर्थात्- द्विजातियों को पहले ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधर्माचरण से उपार्जित धन के द्वारा विधि - पूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं। इससे भी व्यर्थ वार्तालाप व्यर्थ भोजन और व्यर्थ यज्ञ उनके पतन के कारण होते हैं, इसलिए उन्हें सदा -संयमी रहना आवश्यक है। सभी कर्मों में अनुचित करने से उन्हें दोष लगता है। यहाँ तक कि भोजन और पानादि से वे अपने इच्छानुसार नहीं भोग सकते।

पारतन्त्र्यं समस्तेषु तेषां कार्मेषु वैयतः।
जयन्ति ते निजाँल्लोकान्वलेशेन महता द्विजाः।।22
द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान्।
निजाञ्जयति वै लोकाञ्छूद्रो धन्यतरस्ततः।।23
भक्ष्याभक्ष्येषु नास्यास्ति पेयापेयेषु वैयतः।
नियमो मुनिशार्दूलास्तेनामौ साध्वितीरितः।। 24

अर्थात्- क्योंकि उन्हें सम्पूर्ण कार्यों में परतन्त्रता रहती है। हे द्विजगण ! इस प्रकार वे अत्यन्त क्लेश से पुण्य लोकों को प्राप्त करते हैं। किन्तु जिसे केवल (मन्त्रहीन) पाक-यज्ञ का अधिकार है वह शूद्र द्विजों की सेवा करने से ही सद्गीत प्राप्त कर लेता है, इसलिए वह अन्य जातियों की अपेक्षा धन्यतर है। शूद्र को भक्ष्याभक्ष्य अथवा पेयापेय का कोई नियम नहीं है, इसलिए मैंने उसे साधु कहा है।

इस प्रकार विष्णु पुराण दलित जातियों को सभी प्रकार के नियमों से मुक्त घोषित करने के कारण उन्हें श्रेष्ठ साबित करता है। ऐसा मस्तमौला जीवन प्राप्त करना जिसमें किसी भी प्रकार के नियम का कोई बंधन नहीं है यह सिर्फ दलित समुदाय को प्राप्त है जिसके कारण उसका शरीर और मन पूरी तरह से बंधन मुक्त है इसी कारण महर्षि व्यास उन्हें कलियुग का श्रेष्ठ प्राणी घोषित करते हैं जिसका प्रमाण हमें विष्णु पुराण में दिखलाई पड़ता है। इसी वार्त्तालाप को आगे बढ़ाते हुए महर्षि ने स्त्रियों की श्रेष्ठता की बात को स्पष्ट किया है। जिसमें वे कहते हैं-

स्वधर्मस्याविरोधेन नरैलंब्धं धनं सदा।
प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि। 25
तस्यार्जने महाक्लेशः पालने च द्विजोत्तमाः।
तथासद्विनियोगेन विज्ञातं गहनं नृणाम्।।26
एवमन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः
निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात्।। 27

अर्थात्– पुरुषों को अपने धर्मानुकूल प्राप्त किये हुए धन से ही सर्वदा सुपात्र को दान और विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिए। इस द्रव्य के उपार्जन तथा रक्षण में महान क्लेश होता है और उसको अनुचित कार्य में लगाने से भी मनुष्यों को जो कष्ट भोगना पड़ता है, वह मालूम ही है। इस प्रकार के द्विज जनों पुरुषगण इन तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायों से क्रमशः प्राजापत्य आदि शुभ लोकों को प्राप्त करते हैं।

योषिच्छुश्रूषणा द्धर्तुः कर्मणा मनसा गिरा।
तद्धिता शुभमाप्नोति-तत्सालोक्यं यतो द्विजाः।। 28
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा।
तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः।। 29

अर्थात्– स्त्रियाँ तो तन-मन-वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोकों को अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषों के अत्यन्त परिश्रम से मिलते हैं। इसीलिए मैंने तीसरी बार यह कहा था कि **'स्त्रियाँ साधु हैं'।**

स्वल्पेनहि प्रयत्नेन धर्मस्सिद्धयति वै कलौ।
नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिता खिलकिल्बिषैः।।34
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परै द्विजसत्तमाः।
तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि।।35
ततस्त्रितयमप्येतन्मय धन्यतरं मतम्।
धर्मसम्पादने क्लेशो द्विजातीनां कृतादिषु।। 36

अर्थात्- जिन पुरुषों ने गुणरूप जल से अपने समस्त दोष धो डाले हैं उनके थोड़े-से प्रयत्न से ही कलियुग में धर्म सिद्ध हो जाता है। शूद्रों को द्विज सेवा परायण होने से और स्त्रियों को पति की सेवा मात्र करने से ही अनायास धर्म की सिद्धि हो जाती है। इसीलिए मेरे विचार से ये तीनों धन्यतर है, क्योंकि सतयुग आदि अन्य तीनों युगों में भी द्विजातियों को

ही धर्म सम्पादन करने में महान् क्लेश उठाना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान समय में सबसे ज्यादा जो स्त्री और दलित विमर्श चर्चा के केन्द्र में रहता है तथा समय-समय विवाद में भी रहता है। उन्हीं दोनों समुदायों की चर्चा हजारों वर्ष पूर्व लिखें गये 'विष्णु पुराण' भी करता है। और साथ ही इस बात की घोषणा भी कर देता है कि 'कलियुग' में दलित और स्त्री जाति ही श्रेष्ठ रहेगी और सभी प्रकार के पापकर्मों और बंधनों से स्वतः मुक्त रहेंगी इनको अपनी मुक्ति के किसी बन्धन को तोड़ने या आन्दोलन करने की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि जिसके लिए किसी भी प्रकार के नियम का बंधन बनाया ही नहीं गया उन्हें भला तोड़ने की आवश्यकता ही क्या है ? भारतीय ज्ञान परम्परा प्रारम्भ से ही समृद्धशाली और कल्याणकारी रही हैं किन्तु सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने उस पूरी समृद्ध परम्परा को हाशिये पर डाल दिया था या उन्हें मिटाने की कोशिश की थी। वह परम्परा अब भी अंधेरो को हटाकर रौशनी देने में समर्थ है। यह ठीक है कि हमें दुनिया भर के साहित्य से कुछ न कुछ प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए लेकिन अपनी विरासत और परम्परा से आँखें मोड़कर नहीं। क्योंकि जिस भारतीय वाग्मय ने एक दौर में पूरी दुनिया को ज्ञान दिया था, जिसके कारण भारत को विश्वगुरु जैसी उपाधि प्राप्त थी तो क्या आज वही वाङ्मय पुनः ज्ञान का आधार नहीं बन सकता? आवश्यकता इस बात कि है कि भारतीय ज्ञान परम्परा से समस्त वाङ्मय को विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक के पाठ्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता है ताकि युवा पीढ़ी बिना किसी भेदभाव के उसका अध्ययन कर सके और उस पर अपने विचार खुलकर प्रस्तुत कर सके। गलती यह होती है कि देश में कुछ लोग ही उसका प्रचार-प्रसार करते नजर आते हैं और धीरे-धीरे वे भी राजनीतिक मुद्दों का हिस्सा बन जाते हैं और ज्ञान परम्परा पुनः हाशिए पर चली जाती है, इसलिए अगर वह परम्परा पाठ्यक्रम का हिस्सा बनेगी तो सम्भवतः उस पर राजनीति कम होगी क्योंकि राजनीति में ज्ञान के विषयों के लिए ज्यादा अवकाश होता नहीं है और उसका सीधा फायदा देश के युवा पीढ़ी को मिल जायेगा। और इस भाव से नहीं कि हमें विश्वगुरु ही बनना है। पहले अपना घर तो रौशन कर लें तब चिराग बाहर जलाने का प्रयास करना होगा यानि पहले अपने मन के भीतर का अंधकार मिटाये तब संसार को प्रकाशवान बनाने का प्रयत्न करें। अन्धकार से प्रकाश की ओर मार्ग प्रशस्त करने का साधन है भारतीय ज्ञान परम्परा जिसका सम्मान करना हम लोगों को पहले सिखना होगा।

****

संत काव्य परंपरा में संघर्ष -चेतना एवं जीवन-मूल्य

डॉ जितेंद्र गौतम
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
पी एम कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शिवपुरी

सारांश-मध्यकालीन भारतीय समाज में संत काव्य परंपरा ने धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन का सूत्रपात किया। यह शोध पत्र संत कवियों की रचनाओं में निहित संघर्ष-चेतना और जीवन-मूल्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। कबीर, रैदास, दादू, नानक, मीरा आदि संत कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त जाति-प्रथा, धार्मिक आडंबर, रूढ़िवादिता और सामाजिक विषमता के विरुद्ध प्रखर संघर्ष किया। उनकी वाणी में मानवतावाद, समानता, सत्य, प्रेम, करुणा और आत्मसाक्षात्कार जैसे शाश्वत जीवन-मूल्यों की स्थापना मिलती है। यह शोध संतों के काव्य में अभिव्यक्त सामाजिक प्रतिरोध, धार्मिक सुधारवाद और नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता को समकालीन संदर्भ में रेखांकित करता है। संत काव्य केवल साहित्यिक उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना का एक सशक्त माध्यम रहा है।

बीज शब्द: संत काव्य, संघर्ष-चेतना, जीवन-मूल्य, कबीर, समाजसुधार, धार्मिक आडंबर, मानवतावाद, समानता, भक्ति आंदोलन

प्रस्तावना-भारतीय साहित्य के इतिहास में मध्यकाल एक विशेष महत्व रखता है, जहाँ भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अंतर्गत संत काव्य परंपरा ने समाज को नवीन दिशा प्रदान की। चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य विकसित यह काव्यधारा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक आंदोलन नहीं थी, अपितु यह एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक क्रांति का प्रतिनिधित्व करती थी। तत्कालीन समाज अनेक विसंगतियों से ग्रस्त था। एक ओर जहाँ कर्मकांडों, आडंबरों और बाह्याचारों का बोलबाला था, वहीं दूसरी ओर जाति-व्यवस्था की कठोरता, छुआछूत, लिंग-भेद और धार्मिक कट्टरता ने समाज को विखंडित कर दिया था। इस्लामी शासन के प्रभाव और हिंदू-मुस्लिम संघर्ष ने सामाजिक तनाव को और गहरा किया था। ऐसे विषम परिवेश में संत कवियों ने अपनी वाणी से जनमानस को झकझोरा और एक नवीन जीवन-दृष्टि का प्रतिपादन किया।

संत कवियों की विशेषता यह रही कि वे समाज के निचले तबकों से आए थे। कबीर जुलाहे थे, रैदास चर्मकार, सेना नाई, धन्ना जाट और पीपा राजपूत। इनकी सामाजिक पृष्ठभूमि ने इन्हें जीवन की कठोर वास्तविकताओं से परिचित कराया और इनके काव्य में यथार्थवादी दृष्टिकोण की प्रधानता रही। संत काव्य में संघर्ष-चेतना का स्वर प्रमुख है, जो समाज की विद्रूपताओं के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। संत साहित्य का महत्व इसलिए भी है कि इसने लोकभाषा को साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। संस्कृत और फारसी के वर्चस्व के युग में संतों ने सधुक्कड़ी, अवधी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी आदि लोकभाषाओं में अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त कीं, जिससे सामान्य जन तक उनका संदेश पहुँचा।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

संत काव्य परंपरा में अभिव्यक्त संघर्ष-चेतना के विविध आयामों की पहचान और विश्लेषण करना। यह संघर्ष धार्मिक, सामाजिक,

सांस्कृतिक और वैयक्तिक स्तरों पर किस प्रकार प्रकट होता है, इसका अध्ययन करना।

संत कवियों द्वारा प्रतिपादित जीवन-मूल्यों का गहन अध्ययन प्रस्तुत करना। इन मूल्यों में मानवतावाद, समानता, सत्य, प्रेम, करुणा, सहिष्णुता और आत्मसाक्षात्कार जैसे तत्वों की व्याख्या करना।

संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता को समकालीन संदर्भ में रेखांकित करना। आज के युग में भी संत साहित्य के संदेश कितने प्रासंगिक हैं, इसका मूल्यांकन करना।

संत काव्य के माध्यम से मध्यकालीन समाज की विसंगतियों और उनके प्रति संतों की प्रतिक्रिया का ऐतिहासिक-सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत करना।

संत काव्य परंपरा के साहित्यिक और सांस्कृतिक योगदान को रेखांकित करना।

मूल लेख

संत काव्य परंपरा का परिचय

संत काव्य परंपरा भक्तिकाल की निर्गुण धारा का प्रतिनिधित्व करती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में इसे प्रेममार्गी और ज्ञानमार्गी शाखाओं में विभाजित किया है। संत काव्य परंपरा मुख्यतः ज्ञानमार्गी शाखा के अंतर्गत आती है, जहाँ ब्रह्म के निर्गुण -निराकार स्वरूप की उपासना की जाती है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'संत काव्य मूलतः सामाजिक समन्वय और धार्मिक सहिष्णुता का काव्य है' (1)। संतों ने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों के बाह्य आडंबरों का विरोध किया और सार्वभौमिक मानवतावाद का संदेश दिया। इस परंपरा के प्रमुख कवियों में कबीर, नानक, रैदास, दादू दयाल, सुंदरदास, मलूकदास आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

संत काव्य में संघर्ष-चेतना के आयाम

धार्मिक आडंबर के विरुद्ध संघर्ष

संत कवियों का सबसे प्रबल संघर्ष धार्मिक कर्मकांडों और आडंबरों के विरुद्ध था। तत्कालीन समाज में पूजा-पाठ, तीर्थाटन, व्रत-उपवास, यज्ञ-हवन आदि को ही धर्म का प्रमुख आधार माना जाता था। संतों ने इन बाह्य क्रियाओं को निरर्थक बताते हुए आंतरिक शुद्धता और सच्चे भक्तिभाव पर बल दिया।

कबीर की वाणी इस संदर्भ में अत्यंत तीक्ष्ण और प्रभावशाली है। वे कहते हैं, 'कांकर पाथर जोरि के मसजिद लई बनाय / ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय'। इसी प्रकार हिंदू धर्म के मूर्तिपूजा के संबंध में वे कहते हैं, 'पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार / याते तो चाकी भली पीस खाय संसार'। विद्यानिवास मिश्र ने संकेत किया है कि 'कबीर का काव्य धार्मिक पाखंड के विरुद्ध एक सशक्त अभियान था' (2)।गुरु नानक ने भी कर्मकांडों की निरर्थकता पर प्रहार किया। उन्होंने कहा कि वास्तविक तीर्थ मन की पवित्रता है, बाहरी स्नान से आत्मा शुद्ध नहीं होती। रैदास ने भी इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा कि ब्राह्मणों के कर्मकांड केवल ढोंग हैं। संत कवि बाहरी कर्मकांडों को व्यर्थ मानते थे और अंतःकरण की शुद्धि पर बल देते थे।कबीरदास का पद:-

"कांकर-पत्थर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥"[1]

यह दोहा धार्मिक आडंबर पर तीखा व्यंग्य है। कबीर कहते हैं कि पत्थरों से मस्जिद बनाकर मुल्ला अजान देता है, मानो ईश्वर बहरा हो। इससे वे मूर्ति-मंदिर और मस्जिद दोनों के बाह्याडंबर का खंडन करते हैं। संघर्ष चेतना यहां धार्मिक स्वार्थी वर्गों (मुल्ला-पंडित) के शोषण के विरुद्ध है, जो जनता को भय और कर्मकांडों में बांधे रखते हैं। कबीर सच्ची भक्ति को हृदय में बसाने का संदेश देते हैं, जो सार्वभौमिक मानव धर्म की ओर इशारा करती है।

"पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
या ते तो चाकी भली, पीस खाए संसार॥"

मूर्तिपूजा की तर्कहीनता पर करारा प्रहार। यदि पत्थर में ईश्वर है तो पहाड़ की पूजा क्यों नहीं? चक्की तो कम से कम संसार का पेट भरती है। यह व्यंग्य हिंदू मूर्तिपूजा पर है, परंतु व्यापक रूप से सभी बाहरी पूजा-पद्धतियों पर। संघर्ष यहां अंधविश्वास और पाखंड से है, जो सच्चे आध्यात्म को रोकता है।

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥"

शास्त्रों के अंधानुकरण का विरोध। केवल पुस्तकीय ज्ञान से कोई पंडित नहीं बनता; प्रेम के ढाई अक्षर ही सच्चा ज्ञान हैं। यह संघर्ष पंडित वर्ग के एकाधिकार के विरुद्ध है, जो जनता को ज्ञान से वंचित रखते हैं। कबीर ज्ञान को लोकतांत्रिक बनाते हैं।

"तीरथ बरत करै जो कूठा, हरि की भगति बिना सब जूठा॥"

तीर्थ-व्रत को भक्ति के बिना व्यर्थ बताते हैं। संघर्ष बाहरी कर्मकांडों से है, जो सच्ची भक्ति को ढकते हैं। रैदास अंतर्मुखी भक्ति की ओर ले जाते हैं।

"जप तप संजम नेम न कोई, बिना प्रेम भगति नहिं सोई॥"

जप-तप व्यर्थ हैं यदि प्रेम नहीं। यह प्रेम को भक्ति का आधार बनाता है, कर्मकांडों का खंडन करता है।

"नानक कहै सुनहु रे लोगा, हरि भगति बिना सब जग फूंका॥"

बिना भक्ति सब व्यर्थ। नानक दिखावे की धार्मिकता पर प्रहार करते हैं।

जाति-व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष

मध्यकालीन समाज में जाति-प्रथा अपने सबसे कठोर रूप में विद्यमान थी। ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने समाज को चार वर्णों में विभाजित कर दिया था और शूद्रों को अधिकारहीन बना दिया था। संत कवियों ने इस व्यवस्था के विरुद्ध खुलकर आवाज उठाई।

रैदास स्वयं चर्मकार जाति से थे और उन्हें सामाजिक अपमान का सामना करना पड़ा। उन्होंने अपने काव्य में जाति-प्रथा की कटु आलोचना की। वे कहते हैं, 'जाति-पाँति पूछे नहीं कोई / हरि को भजे सो हरि का होई'। उनकी यह उक्ति समानता के सिद्धांत की स्थापना करती है।

कबीर ने भी जाति-भेद को निरर्थक बताया। वे कहते हैं, 'जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान / मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान'। श्यामसुंदर दास ने उल्लेख किया है कि 'संत काव्य में जातिगत समानता का स्वर मुखर रूप से प्रकट हुआ' (3)।

गुरु नानक ने सिख धर्म की स्थापना करते हुए जाति-प्रथा का पूर्णतः उन्मूलन किया और 'लंगर' की व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक समानता का व्यावहारिक प्रदर्शन किया। सभी जातियों के लोग एक साथ बैठकर भोजन करते थे, जो उस युग में क्रांतिकारी कदम था।

लिंग-भेद के विरुद्ध संघर्ष

मध्यकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। उन्हें शिक्षा, संपत्ति और सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था। संत परंपरा में मीराबाई जैसी महिला संत ने अपने काव्य और जीवन से पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती दी।

मीरा ने पारिवारिक और सामाजिक बंधनों को तोड़कर अपनी भक्ति के मार्ग को चुना। उन्होंने लिखा, 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई / जा के सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई'। उनका यह साहस तत्कालीन समाज में स्त्री-स्वतंत्रता का प्रतीक बन गया। नगेंद्र ने लिखा है कि 'मीरा का विद्रोह केवल व्यक्तिगत नहीं था, वह सामाजिक मुक्ति का संघर्ष था' (4)।

अन्य संत कवियों ने भी स्त्रियों को समान अधिकार का संदेश दिया। कबीर ने कहा कि स्त्री-पुरुष भेद केवल शारीरिक है, आत्मा के स्तर पर सभी समान हैं।

सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष-संत कवियों ने विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों का भी विरोध किया। बाल-विवाह, सती-प्रथा, विधवा-विवाह निषेध, छुआछूत आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध उनकी वाणी मुखर रही। कबीर ने पाखंडी साधुओं, स्वार्थी पंडितों और दिखावे के भक्तों की कटु आलोचना की।

दादू दयाल ने सामाजिक कुरीतियों को धर्म का नाम देकर चलाने वालों पर कठोर प्रहार किया। उन्होंने कहा कि सच्चा धर्म प्रेम और सेवा में है, न कि बाह्य प्रदर्शन में।

धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध संघर्ष-संत कवियों ने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों की कट्टरता का विरोध किया। उन्होंने यह स्थापित किया कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है - परमात्मा की प्राप्ति। कबीर ने कहा, 'हिंदू कहें राम हमारा मुसलमान रहमाना / आपस में दोउ लड़ि-लड़ि मुए मरम न कोउ जाना'।

रामविलास शर्मा ने संकेत किया है कि 'संत काव्य में साम्प्रदायिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता का संदेश प्रमुखता से मिलता है' (5)। गुरु नानक ने भी हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश दिया और दोनों धर्मों के श्रेष्ठ तत्वों को अपनाने की बात कही।

संत काव्य में जीवन-मूल्य

मानवतावाद-संत काव्य का केंद्रीय मूल्य मानवतावाद है। संतों ने मनुष्य को सर्वोपरि माना और मानवीय गरिमा की स्थापना की। उन्होंने यह घोषित किया कि मनुष्य जन्म से नहीं, कर्म से महान बनता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'संत साहित्य में मनुष्य की केंद्रीयता स्थापित हुई' (6)।

कबीर ने कहा, 'जाति-पाति पूछे नहीं कोई / हरि को भजे सो हरि का होई'। यह उक्ति सार्वभौमिक मानवतावाद का प्रतिपादन करती है। रैदास ने 'बेगमपुरा' की कल्पना की, जहाँ कोई भेदभाव नहीं होगा और सभी मनुष्य समान होंगे।

समानता का सिद्धांत-संत कवियों ने सामाजिक, धार्मिक और लैंगिक समानता का प्रबल समर्थन किया। उन्होंने यह स्थापित किया कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य बराबर हैं। कबीर ने कहा, 'एक बूँद एकै मल मूत्र एक चाम एक गूदा / एक खून एक रक्त भोरा एकै पवन तुरीया'।

गुरु नानक ने 'इक ओंकार' का सिद्धांत दिया, जो सभी मनुष्यों की समानता का आधार है। उन्होंने कहा कि सभी मनुष्यों में एक ही परमात्मा का अंश है।

सत्य और ईमानदारी-संतों ने सत्य को जीवन का सर्वोच्च मूल्य माना। कबीर ने कहा, 'साँच बराबर तप नहीं झठ बराबर पाप / जाके हिरदै साँच है ताके हिरदै आप'। गुरु नानक ने भी कहा कि सत्य के बिना मनुष्य का जीवन व्यर्थ है।

संतों ने व्यावहारिक जीवन में ईमानदारी और श्रमिक जीवन पर बल दिया। कबीर स्वयं जुलाहे थे और अपने श्रम से जीविकोपार्जन करते थे। उन्होंने कहा, 'ऊँचा ते ऊँचा मिले जो हरिजन परोपकारी / बेचत माल भजन मिले कबीर धन्य है भिखारी'।

प्रेम और करुणा-संत काव्य में प्रेम को सर्वोच्च भाव माना गया है। यह प्रेम केवल ईश्वर के प्रति नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के प्रति है। कबीर ने कहा, 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय / ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय'। मीरा का काव्य प्रेम-भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि 'मीरा के काव्य में प्रेम की पराकाष्ठा देखने को मिलती है' (7)।

समानता और गुरु भक्ति इन पदों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि संघर्ष नकारात्मक नहीं, बल्कि मूल्यों की स्थापना का साधन है। संत काव्य रहस्यवादी होने के साथ सामाजिक भी है।

सहिष्णुता और समन्वय-संत कवियों ने धार्मिक सहिष्णुता का संदेश दिया। उन्होंने विभिन्न धर्मों, संप्रदायों और मतों का सम्मान किया। कबीर ने हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रचार किया। गुरु नानक ने भी समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। रामधारी सिंह दिनकर ने संकेत किया है कि 'संत साहित्य में सांस्कृतिक समन्वय की प्रवृत्ति प्रमुख रही' (8)। संतों ने योग, वेदांत, सूफीवाद आदि विभिन्न दार्शनिक परंपराओं का समन्वय किया।

आत्मसाक्षात्कार और आत्मज्ञान-संत काव्य में आत्मसाक्षात्कार को परम लक्ष्य माना गया है। कबीर ने कहा, 'मोको कहाँ ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में / ना मैं देवल ना मैं मस्जिद ना काबे कैलास में'। इस उक्ति में आत्मज्ञान का संदेश निहित है।

संतों ने बाहरी खोज के स्थान पर आंतरिक खोज पर बल दिया। उन्होंने कहा कि परमात्मा बाहर नहीं, अपने भीतर विद्यमान है। यह आत्मसाक्षात्कार का मार्ग है।

संत काव्य की सामयिक प्रासंगिकता-संत काव्य परंपरा आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। आधुनिक युग में भी सामाजिक असमानता, धार्मिक कट्टरता, जातिवाद, लिंग-भेद और भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ विद्यमान हैं। संत साहित्य इन समस्याओं के समाधान का मार्ग दिखाता है।साम्प्रदायिकता आज भी देश की एक प्रमुख समस्या है। संतों का समन्वयवादी दृष्टिकोण इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है। कबीर और नानक की वाणी आज भी हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश देती है।

जातिवाद आज भी समाज को विभाजित करता है। संतों का समानता का संदेश इस विभाजन को समाप्त करने में सहायक हो सकता है। रैदास और कबीर की वाणी आज भी दलित चेतना को प्रेरित करती है।

स्त्री-शोषण आज भी एक गंभीर समस्या है। मीरा का जीवन और काव्य आज भी स्त्रियों को आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता का संदेश देता है।

भौतिकवाद और उपभोक्तावाद के इस युग में मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। संत काव्य में निहित सत्य, प्रेम, करुणा, सादगी और आत्मसंतोष जैसे मूल्य आज भी मार्गदर्शन करते हैं।

संत काव्य का साहित्यिक योगदान-संत काव्य ने हिंदी साहित्य को अनेक दृष्टियों से समृद्ध किया। सबसे बड़ा योगदान लोकभाषा को साहित्यिक माध्यम बनाना था। संतों ने संस्कृतनिष्ठ भाषा के स्थान पर जनसामान्य की भाषा को अपनाया।

संत काव्य में साखी, सबद, रमैनी, पद आदि काव्य रूपों का विकास हुआ। इन रूपों में गहन दार्शनिक चिंतन को सरल और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया।

संत कवियों ने बिंब, प्रतीक और रूपकों का सटीक प्रयोग किया। कबीर के बिंब और प्रतीक अत्यंत मौलिक और लोकजीवन से जुड़े हैं।

निष्कर्ष-संत काव्य परंपरा में संघर्ष चेतना और जीवन मूल्यों का सुंदर संतुलन है। पदों के विश्लेषण से पता चलता है कि संत कवि केवल विरोध नहीं करते, बल्कि एक नए मानवीय समाज की रचना करते हैं। कबीर का व्यंग्य, रैदास की समानता की कल्पना, नानक की करुणा आज भी प्रासंगिक हैं। यह परंपरा हमें सिखाती है कि सच्चा संघर्ष मूल्यों से परिपूर्ण होता है और मानव मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

****

संदर्भ सूची

1.शुक्ल, रामचंद्र। हिंदी साहित्य का इतिहास। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २००८।
2.द्विवेदी, हजारीप्रसाद। हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५२।
3.चतुर्वेदी, परशुराम। रैदास बानी संग्रह। लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८३।
4.मिश्र, बच्चन सिंह। संत काव्य: एक अध्ययन। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९९०।
5.उपाध्याय, काशीनाथ। दादू वाणी। राधास्वामी सत्संग, आगरा, १९८०।
सिंह, नामवर। भक्ति आंदोलन और संत काव्य। वाणी प्रकाशन, दिल्ली, २००५।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

हिंदी भाषा सीखने वाले विदेशी विद्यार्थियों पर भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव का विश्लेषण

डॉ. दीपामणि बरुवा
परियोजना निदेशक
ICSSR लघु शोध परियोजना
सह-प्रोफेसर (भाषाविज्ञान) कें. हिं. सं., आगरा

डॉ. अभिजीत प्रसाद
शोध सहायक
ICSSR लघु शोध परियोजना
कें. हिं. सं., आगरा

सारांश

भारत के कई संस्थानों में विदेशी विद्यार्थी हिंदी सीखने के लिए आते हैं और संचालित पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेकर हिंदी सीखते हैं। बहुत विदेशी विद्यार्थी भाषा के रूप में हिंदी का सामान्य (General) ज्ञान रखने के उपरांत ही भारत में हिंदी सीखने के लिए आते हैं जो भाषा कौशल के चार स्तरों- सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना पर अलग-अलग रहता है। इसमें भी मुख्य के रूप में कार्य करने वाले दो स्तर सुनना और बोलना का ज्ञान बुनियादी रूप में रखते हैं लेकिन नियम या व्याकरण के स्तर पर उन्हें कुछ खास ज्ञान नहीं रहता है। जब वे भारत में आते हैं तो उनका संपर्क भारतीय भाषा-भाषी समुदाय से होता है और उस स्थिति में विदेशी अध्येता को औपचारिक मानक हिंदी से संपर्क नहीं होता है बल्कि विद्यार्थियों को प्रायः मानक हिंदी के अतिरिक्त भारत की विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों के मिश्रित स्वरूप वाली हिंदी से सामना होता है यह चाहे शिक्षक के रूप में हो या समाज, बाजार आदि के रूप हो। जब हिंदी भाषी किसी दूसरी भाषा या अन्य क्षेत्रीय बोलियों वाले प्रदेश का होता है तो उसकी हिंदी पर उसका प्रभाव रहता है अर्थात उसकी हिंदी में शब्दों के उच्चारण, शब्द-रूप, शब्दावली विविधता और ध्वन्यात्मक स्तर पर प्रभाव रहता है जो विदेशी विद्यार्थी के लिए सुनने और समझने के स्तर पर एक कठिनाई पैदा करता है। इसे ही आधार बनाकर 'हिंदी भाषा सीखने वाले विदेशी विद्यार्थियों पर भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव का विश्लेषण' विषय पर इस शोध-पत्र का लेखन कार्य किया गया है।

यह पत्र भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICSSR), नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त एवं केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में संचालित लघु शोध परियोजना से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है। इस शोध कार्य हेतु मात्रात्मक पद्धति की सहायता ली गई है जिसमें संकलित डेटा का विश्लेषण भारत की अन्य भाषाओं या बोलियों के प्रभाव के कारण विदेशी विद्यार्थियों को हिंदी भाषा में आने वाली कठिनाइयों के रूप में किया गया है। इसमें मुख्य रूप से भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में भोजपुरी, अवधी, ब्रज, हरियाणवी और राजस्थानी भाषाएँ प्राप्त हुई हैं जिनके बारे में इस शोध-पत्र में चर्चा की गई है। इस पत्र में विदेशी विद्यार्थियों को आने वाली समस्या या कठिनाइयों को दूर करने या कम करने का कोई उपाय या पद्धति नहीं दी गई बल्कि केवल इस प्रकार के मिलने वाले स्वरूप का डेटा आधारित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

बीजशब्द (keywords): *भाषा अर्जन, विदेशी विद्यार्थी, क्षेत्रीय बोलियाँ, मानक हिंदी, ध्वन्यात्मक प्रभाव, शब्दावली विविधता।*

1. परिचय- भाषा सीखने और सिखाने की प्रक्रिया को भाषा शिक्षण कहते हैं। किसी भी भाषा को सीखने से आशय होता है कि उस भाषा में अपने-आप को अभिव्यक्ति कर पाना। संक्षेप में कह सकते हैं कि किसी भाषा का औपचारिक रूप से किया जाने वाला शिक्षण 'भाषा शिक्षण' है। भाषा शिक्षण मुख्य रूप से तीन रूपों में कराया जाता है- 1. मातृभाषा शिक्षण/प्रथम भाषा शिक्षण 2. द्वितीय भाषा शिक्षण 3. विदेशी भाषा शिक्षण। द्वितीय या विदेशी भाषा शिक्षण के दौरान सहज और सरल तरीके से दो रूपों में कराया जा सकता है इसमें पहला औपचारिक तरीका है जिसमें शिक्षक के माध्यम से उपयुक्त सामग्री की सहायता से भाषा सीखता है। वर्तमान में सहायक सामग्री के रूप में तकनीकी उपकरण, टूल्स, ऐप्स तथा ऑनलाइन उपलब्ध ऑडियो-वीडियो एवं लिखित पाठ हैं जिनके उपयोग से सीखने की समय सीमा को कम किया जा सकता है लेकिन इन सभी की उपलब्धता होने के बावजूद बिना शिक्षक के किसी भाषा को व्यवस्थित रूप से नहीं सीखा जा सकता है। दूसरा है अनौपचारिक तरीका जिसमें किसी भाषा को सीखने के लिए उसी भाषा समाज में जाकर रहना और सुनने-बोलने की प्रक्रिया के माध्यम से सीखना है लेकिन इसमें समय बहुत अधिक लगेगा। भाषाओं की सिखाने के लिए भारत में कई संस्थानों में भाषा शिक्षण हेतु विभाग स्थापित किए गए हैं जहाँ निर्धारित कोर्स के माध्यम से भाषाओं को सिखाने की प्रक्रिया संचालित है।

हिंदी भाषा के संदर्भ में भी यह स्थिति देखने को मिलती है कि द्वितीय या विदेशी भाषा के रूप हिंदी को सिखाने के लिए भारत के कुछ प्रमुख संस्थानों में पाठ्यक्रम संचालित हैं जहाँ गैर-हिंदी भाषी एवं विदेशी विद्यार्थी हिंदी सीखने के लिए आते हैं। हिंदी भाषा अर्जन के दौरान उन्हें आने वाली कठिनाइयों में से एक सबसे बड़ी कठिनाई हिंदी भाषा पर अन्य भारतीय बोलियों/भाषाओं के प्रभाव की आती है। भारत में हिंदी भाषी समाज द्वारा किसी मानक हिंदी का प्रयोग नहीं किया जाता है बल्कि उनकी भाषा में अन्य भाषाओं या बोलियों का प्रभाव रहता है जिसे समझना गैर-हिंदी भाषी या विदेशी विद्यार्थी के लिए बहुत मुश्किल हो जाता है। यह परेशानी तब और बढ़ जाती है जब किसी शिक्षक भी भाषा पर अन्य बोलियों या भाषाओं का प्रभाव रहता है। चूँकि शिक्षक इस बात बहुत अधिक ध्यान देते हैं कि इस तरह का कोई प्रभाव उसकी भाषा में ना रहे लेकिन यह कारण स्वाभाविक होने से कहीं-न-कहीं भाषा में रह ही जाता है। इस तरह से गैर-हिंदी भाषी या विदेशी विद्यार्थी के लिए किसी अन्य भारतीय भाषाओं की हस्तक्षेप वाली हिंदी को समझने में मुश्किल की स्थिति बन जाती है।

इस शोध पत्र में विदेशी विद्यार्थियों को हिंदी भाषा सीखते समय किन-किन अन्य भारतीय बोलियों/भाषाओं के प्रभाव के कारण मुश्किलों का सामना करना पड़ता है उसका डेटा आधारित विश्लेषण कर प्राप्त परिणामों की चर्चा की गई है जिसे विदेशी विद्यार्थियों से प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त डेटा के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इसके माध्यम से यह जाना जा सकता है कि विदेशी भाषा के रूप में हिंदी सीख रहे विदेशी विद्यार्थियों को किन भाषाओं की हस्तक्षेप वाली हिंदी को समझने में अधिक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। आगे विदेशी विद्यार्थियों से प्राप्त डेटा के आधार पर इसके स्वरूप और विश्लेषण प्रस्तुत है।

2. शोध के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध-पत्र में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी सीखने वाले विदेशी विद्यार्थियों पर भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव को लेकर सर्वेक्षण किया गया है। इस शोध-पत्र में हिंदी भाषा अर्जन के दौरान भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के कारण विद्यार्थियों

को हिंदी भाषा समझने में आने वाली कठिनाइयों को केंद्र में रखते हुए विश्लेषण किया गया है। इसके माध्यम से विदेशी विद्यार्थियों की दृष्टि से हिंदी भाषा अर्जन में बाँधा बनने वाली भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को जाना जा सकता है या उनके दृष्टि के किन-किन भाषाओं से मिश्रित हिंदी को समझने में अधिक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है उसे समझा जा सकता है। इसके अलावा हिंदी भाषा सीखने वाले अध्यापकों की दृष्टि से यह इस प्रकार उपयोगी हो सकता है कि हिंदी पर अन्य भारतीय भाषाओं के हिंदी मिश्रित स्वरूप का ध्यान देते हुए विदेशी विद्यार्थियों को हिंदी सिखाएँ जिससे उन्हें कम-से-कम समस्याओं का सामना करना पड़े।

3. शोध प्रविधि- प्रस्तुत शोध मात्रात्मक शोध प्रविधि पर आधारित है। इस शोध में पूर्णतः प्राथमिक डेटा (Primary data) का प्रयोग किया गया है। एकत्रित डेटा से परिणाम की व्याख्या हेतु विश्लेषणात्मक प्रविधि (Descriptive Method) की सहायता ली गई है जिसके अंतर्गत आवृत्ति वितरण आधारित सांख्यिकीय विधि से प्राप्त परिणामों को प्रस्तुत किया गया है। डेटा संकलन हेतु क्षेत्र अध्ययन (field study) प्रक्रिया को अपनाया गया है और क्षेत्र अन्वेषक (field investigator) द्वारा डेटा संकलित किया गया है। प्रश्नावली के आधार पर डेटा को संकलित किया गया है जिसमें छह प्रमुख प्रक्षेत्रों से वस्तुनिष्ठ (objective) और बहु-चयनित (Multiple-select) प्रकार के प्रश्नों को अंग्रेजी में दिया गया था।

4. संकलित डेटा का विवरण- डेटा संकलन के लिए कुछ प्रमुख संस्थानों को लिया गया है। इसमें हिंदी सीखने के लिए भारत आए कुल 111 विदेशी विद्यार्थियों द्वारा सहभागिता की गई है। इसमें मुख्य रूप में केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के विद्यार्थी सम्मिलित हैं इसके अलावा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के भी कुछ विदेशी विद्यार्थियों सम्मिलित हुए हैं। इसमें प्रतिभागी के रूप में अधिक संख्या रखने वाले देशों में श्रीलंका है जहाँ के 20 प्रतिभागी सम्मिलित हुए हैं।

5. डेटा विश्लेषण- सभी उत्तरदाताओं द्वारा व्यतिगत रूप से उनकी हिंदी में दक्षता को जानने के लिए एक प्रश्न रखा गया था जिसका उत्तर देने के लिए तीन विकल्प दिए गए थे। प्रश्न के रूप में था कि- 'आप हिंदी में अपनी वर्तमान दक्षता के स्तर का आकलन कैसे करते हैं?' इस प्रश्न के संदर्भ में उत्तरदाताओं द्वारा स्वयं की हिंदी दक्षता के अनुसार चयनित विकल्प- आरंभकर्ता, मध्यवर्ती या उन्नत को आधार बनाकर संपूर्ण डेटा को तीन वर्गों (groups) में विभाजित किया गया है। यहाँ नीचे इन तीनों वर्गों और इनके डेटा स्वरूप को देख सकते हैं-

1. आरंभकर्ता वर्ग (Beginner Group)
2. मध्यवर्ती वर्ग (Intermediate Group)
3. उन्नत वर्ग (Advance Group)

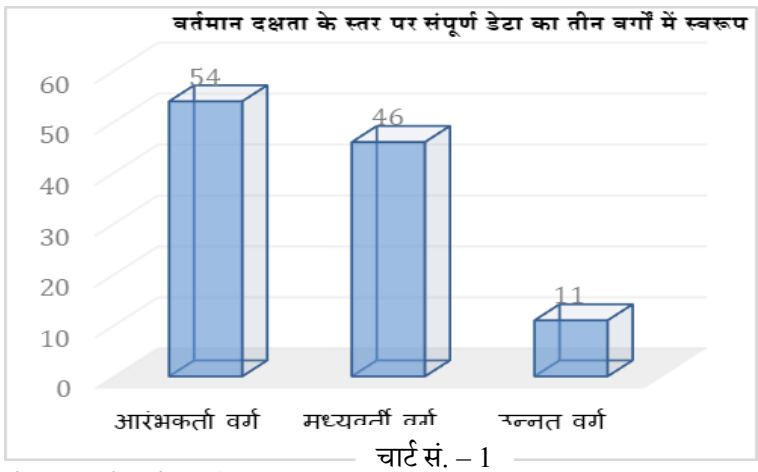

चार्ट सं. – 1

संकलित 111 उत्तरदाताओं के संख्यात्मक स्वरूप को यहाँ अलग-अलग देखा जाए तो आरंभकर्ता स्तर में 54, मध्यवर्ती स्तर के 46 और उन्नत स्तर के 11 प्रतिभागी शामिल हुए हैं। जिसे चार्ट (chart) में भी देख सकते हैं।

यहाँ ध्यान देना आवश्यक है कि डेटा का संकलन एक लघु शोध परियोजना हेतु किया गया है जो भारतीय सामाजिक विज्ञान परिषद, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत की गई थी। इस परियोजना के केवल एक पक्ष को लेकर इस शोध-पत्र का लेखन कार्य किया गया है इसलिए यहाँ प्रश्नावली में रखे गए सभी प्रश्नों के बारे में कोई ना ही चर्चा की जा रही है और ना ही संपूर्ण स्वरूप का किसी प्रकार का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है। निर्मित प्रश्नावली के प्रश्न प्रक्षेत्र 3 जिसका शीर्षक था- 'सीखने का अनुभव और भाषाई चुनौतियाँ (Learning Experience & Linguistic Challenges)' के अंतर्गत कुल 10 प्रश्न रखे गए थे जिसमें प्रश्न क्रमांक 3.5 में एक प्रश्न इस प्रकार से रखा गया था कि 'आपको कौन-सी बोली या उच्चारण (accent) समझने में सबसे मुश्किल लगता है? उदाहरण के लिए- भोजपुरी/राजस्थानी/ब्रज आदि।' इस प्रश्न के संदर्भ में कुल 111 प्रतिभागियों द्वारा अलग-अलग उत्तर प्राप्त हुए हैं। प्राप्त उत्तरों के आधार पर इस शोध पत्र का लेखन कार्य किया गया है और विश्लेषण करते हुए परिणामों को प्रस्तुत किया गया है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए कोई विकल्प नहीं दिया गया था बल्कि उत्तर को प्रतिभागी द्वारा स्वयं के अनुभवों के आधार पर लिखकर देना था। इस प्रश्न के उत्तर के रूप में एक विशेष बात यह देखने को मिली है कि 111 उतारादाताओं में से 51 ऐसे प्रतिभागी हैं जिन्होंने इस प्रश्न के उत्तर में कुछ भी लिखकर नहीं दिया है। जिसका आशय यह है कि इन सभी प्रतिभागियों का किसी हिंदी भाषी व्यक्ति या समुदाय से विशेष संपर्क नहीं हुआ है। इनके अलावा शेष 60 प्रतिभागियों के प्राप्त उत्तरों के बारे में आगे की गई है।

हिंदी भाषा-भाषी समुदाय में एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग किया जाता है जिसके कारण व्यक्ति की भाषा पर दूसरी भाषा का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में रहता हैं। इसमें सबसे अधिक अपनी मातृभाषा का प्रभाव देखा जाता है। यही स्थिति भारत में प्रयुक्त होने वाली अन्य क्षेत्रीय भाषाओं वाले समुदाय या व्यक्ति के साथ भी देखते को मिलती है। बराबर संपर्क में रहने वाला व्यक्ति भाषा और बोली के स्तर पर होने वाले ध्वन्यात्मक, शब्दावली आदि के अंतरों को बहुत ही आसानी से समझ जाता है। इसके लिए उसे किसी प्रकार का प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है बल्कि व्यक्ति का मस्तिष्क स्वतः ही कर लेता है लेकिन जब कोई दूसरी भाषा को जानने वाले व्यक्ति इस प्रकार के समाज में व्यक्ति के संपर्क में आता है तो फिर उसे ऐसे अंतरों के मिलने पर मुश्किलों का सामना करना पड़ता है और तब हमें पता चलता है कि व्यक्ति या समाज की भाषा का स्वरूप दूसरी भाषा से मिश्रित होने के कारण समझने में कठिन है। यह स्थिति भौगोलिक स्तर पर केवल भारत में भी देखने को मिल सकती है। कहने का आशय यह है कि यदि कोई मराठी भाषी जिसे हिंदी आती है वह हिंदी में संप्रेषण करने की क्षमता रखता है लेकिन जब उसका संपर्क किसी ऐसे व्यक्ति या भाषा समाज से होता है जिसकी हिंदी अन्य भारतीय बोलियों की मिश्रित स्वरूप वाली है तो वहाँ पर उस मराठी व्यक्ति को भी हिंदी समझना कठिन हो जाएगा क्योंकि मराठी व्यक्ति हिंदी के मानक स्तर को जनता है और वह इसी मानक स्वरूप वाली हिंदी में ही अपने आपको अभिव्यक्त करने में सक्षम होता है या मानक स्वरूप को समझने में दक्ष होता है। इसी प्रकार की स्थिति को इस शोध-पत्र में भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव के रूप में रखा गया है और विश्लेषण हेतु केंद्र में विदेशी विद्यार्थियों को लिया गया है उन्हें किन भारतीय भाषाओं का हिंदी पर प्रभाव होने या मिश्रित स्वरूप होने के कारण समझने में मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इसे तथ्य के साथ स्पष्ट करने हेतु यहाँ 60 प्रतिभागियों के प्राप्त उत्तरों की व्याख्या प्रस्तुत है-

भारत की अन्य क्षेत्रीय बोलियों/भाषाओं के प्रभाव के कारण हिंदी के उच्चारण (accent) को समझना सबसे मुश्किल लगता है इसमें उत्तरदाताओं द्वारा जो चिह्नित किया गया है उनमें से सबसे अधिक 'भोजपुरी' (Bhojpuri) को कहा है कि किसी हिंदी भाषा के उच्चारण में

भोजपुरी लय (tone) के साथ हिंदी उच्चारण करने में उन्हें समझने में मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इसके अंतर्गत कुल 12 ऐसे उत्तरदाता हैं जिन्होंने भोजपुरी उच्चारण से प्रभावित हिंदी को समझने में मुश्किल होने की बात कही है। इनके अलावा 7 उत्तरदाताओं ने 'राजस्थानी हिंदी' को कहा है कि इस भाषा के उच्चारण से प्रभावित हिंदी को समझना कठिन होता है। इसके बाद 7 ही ऐसे उत्तरदाता हैं जिन्होंने 'पंजाबी हिंदी' को चिह्नित किया गया है कि इन भाषा के उच्चारण से प्रभावित हिंदी को समझा उन्हें कठिन लगता है। चूँकि परियोजना हेतु डेटा मुख्य रूप से केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में आए विद्यार्थियों से लिया गया है तो यहाँ पर संस्थान के बाहर विद्यार्थियों को बाजार या किसी अन्य संदर्भ में आगरा के लोगों से बात करने की आवश्यकता पड़ती है। आगरा के लोगों द्वारा किसी मानक/शुद्ध हिंदी का प्रयोग नहीं किया जाता है बल्कि यहाँ के हिंदी भाषा-भाषियों पर 'ब्रज' भाषा का प्रभाव है जिसके कारण उनकी हिंदी के शब्द रूप या क्रिया रूप को समझने में कठिनाई होती है इसीलिए कुछ प्रतिभागियों द्वारा हिंदी समझने के मुश्किल होने के संदर्भ में 'आगरा की लोकल हिंदी' भी बताया है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते है कि हिंदी के ब्रज मिश्रित भाषा को समझने में भी इन्हें मुश्किल होती है। इसके अंतर्गत 5 ऐसे उत्तरदाता हैं जिन्होंने आगरा में बोली जाने वाली स्थानी हिंदी को भी 'आगरा हिंदी' या 'लोकल हिंदी' के रूप में चिह्नित करते हुए कठिन बताया है।

अध्ययन के दौरान ही विदेशी विद्यार्थी भारत के विभिन्न प्रान्तों में घूमने के लिए जाते हैं। जो विद्यार्थी जहाँ घूमने जाता है वह वहाँ के लोगों के संपर्क में आता है। इस आधार पर स्थान के रूप में कुछ प्रमुख भाषाओं को चिह्नित किया गया है। इसके अंतर्गत 3 प्रतिभागियों द्वारा 'हरियाणवी हिंदी' को समझना कठिन बताया गया है तो 'हैदराबादी हिंदी' के रूप में 2 द्वारा चिह्नित किया गया है। इसी तरह जो विद्यार्थी हिमांचल प्रदेश भ्रमण के लिए गया था उनका संपर्क हिमांचल के लोगों से होने के कारण वहाँ की हिंदी को चिह्नित किया गया है। 'हिमांचली हिंदी' के रूप में भी 2 प्रतिभागियों द्वारा मुश्किल कहा गया है। इन सभी से अलग कुछ ऐसे भी प्रतिभागी हैं जिनका संपर्क दक्षिण भारत में प्रयुक्त होने वाली हिंदी के स्वरूप को चिह्नित किया गया है जिसमें मुख्य रूप से कन्नड़, तमिल और तेलगू को बताया गया है कि इन भाषाओं के उच्चारण प्रभाव वाली हिंदी को भी समझने में बहुत कठिनाई होती है। इसके साथ ही 2 ऐसे प्रतिभागी हैं जिन्होंने 'उर्दू' मिश्रित हिंदी को समझना कठिन कहा है।

यहाँ पर स्वतंत्र रूप से केवल एक-एक भाषा के रूप में चिह्नित किए गए भारत की अन्य क्षेत्रीय बोलियों/भाषाओं को ही प्रस्तुत किया गया है। अधिकता वाले आँकड़े के स्वरूप को बार-चार्ट (bar-chart) में भी देखा जा सकता है। इनके अलावा कुछ प्रतिभागी ऐसे भी हैं जिनके द्वारा एक से अधिक भाषाओं के रूप में दो या तीन भाषाओं के नामों को लिखा गया है कि इनके उच्चारण वाली हिंदी को समझना बहुत कठिन लगता है। इसमें मुख्य रूप से पंजाबी हिंदी-गुजराती हिंदी, बांग्ला-हिंदी, राजस्थानी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, हरियाणवी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, ब्रज प्रभावी हिंदी हैं इसके अलावा तमिल, मलयालम और तेलगू प्रभावित हिंदी के रूप में बताया गया है।

6. निष्कर्ष- निष्कर्ष के रूप में संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा-भाषी समाज में हिंदी के मानक रूप का प्रयोग कम किया जाता है। केवल प्रशासनिक कार्य, शिक्षा जगत और संचार माध्यमों आदि में मानक हिंदी का प्रयोग होता है। दैनिक बोलचाल में मानक हिंदी का प्रयोग कम बल्कि क्षेत्रीय बोलियों या भाषाओं का प्रयोग होता है जिसका परिणाम यह होता है कि उनकी हिंदी में अन्य बोलियों/भाषाओं शामिल हो जाता है अर्थात उनकी हिंदी का स्वरूप अन्य भाषाओं से मिश्रित वाली हो जाती है जिसे गैर-हिंदी भाषी द्वारा समझने में मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। ऐसे स्वरूप वाली हिंदी के सही अर्थ समझ पाना या शब्दों का सही प्रयोग या उच्चारण आदि को समझने या अंतर करने के स्तर पर गैर-हिंदी भाषी के लिए एक बहुत ही बड़ी समस्या हो जाती है। यह स्थिति विदेशी विद्यार्थियों के सामने भी आती है क्योंकि उनके पास पहले से जो हिंदी का थोड़ा ज्ञान रहता है वह मानक हिंदी के स्वरूप का होता है। इसलिए जब वे हिंदी सीखने के लिए भारत के संस्थानों में आते हैं तो हिंदी भाषी समाज या अध्यापक जिसकी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव होता है उसे समझना उन्हें बहुत मुश्किल हो जाता है। परियोजना के रूप में संकलित किए गए डेटा के आधार पर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी पर अन्य बोलियों/भाषाओं के प्रभाव वाले स्वरूप या उच्चारण को समझने में कठिनाई के रूप में जो प्राप्त हुआ है इनमें मुख्य रूप से भोजपुरी, ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती भाषाएँ हैं जिनका उच्चारण के स्तर पर हिंदी में प्रभाव होने पर उसे समझने में विदेशी विद्यार्थियों को मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इनके अलावा स्थान विशेष के रूप में हरियाणा, अलीगढ़, मुंबई, हैदराबाद, हिमांचल प्रदेश के साथ-साथ दक्षिण भारत में प्रयोग की जाने वाली कन्नड़, तमिल और तेलगू प्रभावित हिंदी वाले स्वरूप को भी समझने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

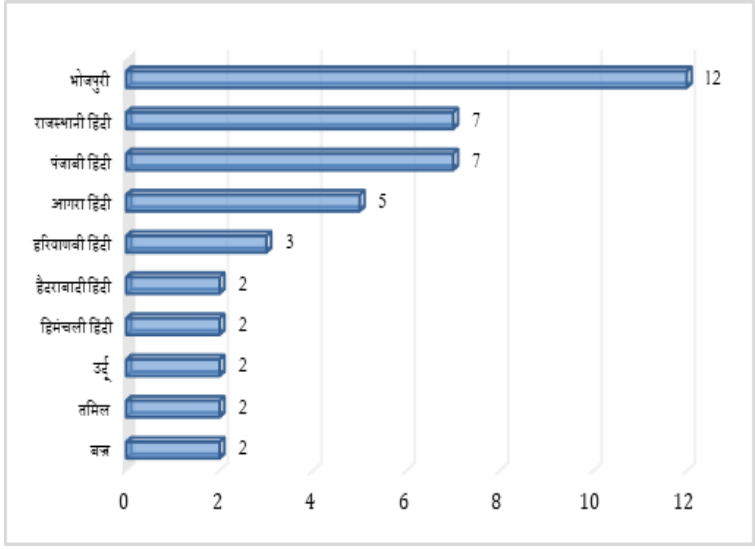

7. अभिस्वीकृति (acknowledgment)- यह शोध-पत्र भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICSSR), नई दिल्ली द्वारा वित्तपोषित लघु शोध परियोजना (वर्ष : 2024-25) के अंतर्गत प्रकाशित किया जा रहा है। यह परियोजना क्रमांक 119/2024-25/ICSSR/RP/MN/OBC के तहत समर्थित है।

8. सहायक ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, मुकेश. (2001). *अन्य भाषा शिक्षण*. यूनिवर्सल पब्लिशर्स।
2. चंद्र, जगदीश. (2008). *हिंदी शिक्षण*. मॉडर्न पब्लिकेशन।
3. पाण्डेय, शुतिकांत. (2014). *हिंदी भाषा और इसकी शिक्षण विधियाँ: हिंदी भाषा और शिक्षण विधियों की परिचायक*. राज प्रेस।
4. बाछोतिया, हीरालाल. (2006). *हिंदी शिक्षण: संकल्प और प्रयोग*. आर्य प्रकाशन मंडल।
5. बिरला, अनिता., & चौहान, धर्मेंद्र सिंह. (2023). *अध्ययन-अध्यापन में आधुनिक तकनीक का प्रयोग एवं उपयोगिता*. लक्ष्मी बुक पब्लिकेशन।
6. भाटिया, कैलाशचंद्र. (2001). *आधुनिक भाषा शिक्षण*. तक्षशिला प्रकाशन।
7. मंगल, उमा. (2009). *हिंदी शिक्षण*. आर्य बुक डिपो।
8. मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी हैदराबाद. (2018). हिंदी भाषा शिक्षण।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

खेलों में करियर अवसरों का अनावरण: नियम, आय एवं राष्ट्रीय व वैश्विक स्तर पर औद्योगिक प्रभाव

श्रीमति साधना यादव
स्पोर्ट्स ऑफिसर/ सहायक प्राध्यापक SAIT जबलपुर

सारांश -वर्तमान समय में खेल केवल मनोरंजन या प्रतिस्पर्धा तक सीमित नहीं रह गए हैं, बल्कि यह एक संगठित, व्यावसायिक और वैश्विक उद्योग के रूप में उभर चुके हैं। खेल उद्योग रोजगार सृजन, आर्थिक विकास, सामाजिक समावेशन तथा अंतरराष्ट्रीय पहचान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस शोध पत्र का उद्देश्य खेलों में उपलब्ध विभिन्न करियर अवसरों, उन्हें नियंत्रित करने वाले नियमों, आय संरचना तथा राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर खेल उद्योग के प्रभाव का विश्लेषण करना है। अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है और यह दर्शाता है कि उचित नीतिगत समर्थन, शिक्षा एवं जागरूकता के माध्यम से खेलों को एक सशक्त करियर क्षेत्र के रूप में विकसित किया जा सकता है।

मुख्य शब्द: खेल करियर, खेल उद्योग, आय संरचना, खेल शासन, वैश्विक खेल अर्थव्यवस्था।

भूमिका-आधुनिक युग में खेलों का स्वरूप अत्यधिक व्यापक हो गया है। खेल अब केवल शारीरिक क्षमता या प्रतियोगिता का माध्यम नहीं, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, मीडिया, प्रौद्योगिकी और अंतरराष्ट्रीय कूटनीति से जुड़ा हुआ एक बहुआयामी क्षेत्र बन चुका है। वैश्वीकरण और व्यावसायीकरण के कारण खेल उद्योग ने एक संगठित संरचना प्राप्त की है, जिससे करियर के नए और विविध अवसर उत्पन्न हुए हैं।

वैश्विक स्तर पर international Olympic Committee जैसे संगठनों ने खेलों के नियम, नैतिकता और एथलीट कल्याण को सुनिश्चित किया है। वहीं राष्ट्रीय स्तर पर सरकारें खेलों को रोजगार सृजन और आर्थिक विकास के एक प्रभावी साधन के रूप में स्वीकार कर रही हैं।

भारत जैसे विकासशील देशों में पहले खेलों को एक अनिश्चित करियर माना जाता था, किंतु अब पेशेवर लीग, खेल विश्वविद्यालय, खेल विज्ञान और प्रबंधन पाठ्यक्रमों के कारण खेल एक सम्मानजनक और स्थायी करियर विकल्प बनते जा रहे हैं।

अध्ययन के उद्देश्य-

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

खेलों में उपलब्ध विभिन्न करियर अवसरों की पहचान करना

खेल करियर को नियंत्रित करने वाले नियमों एवं शासन प्रणाली का अध्ययन करना

राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर खेलों की आय संरचना का विश्लेषण करना

खेल उद्योग के आर्थिक एवं औद्योगिक प्रभाव का अध्ययन करना

खेल करियर को सुदृढ़ बनाने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन में **वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति** का प्रयोग किया गया है। अध्ययन पूर्णतः **द्वितीयक आंकड़ों** पर आधारित है, जिनमें शामिल हैं:

•सरकारी खेल नीतियाँ एवं रिपोर्ट

•अंतरराष्ट्रीय खेल महासंघों के दस्तावेज

•शोध पत्रिकाएँ एवं पुस्तकें

राष्ट्रीय खेल संस्थाओं की आधिकारिक रिपोर्ट

प्राप्त आंकड़ों का गुणात्मक विश्लेषण कर खेल करियर, आय एवं औद्योगिक प्रभाव से संबंधित निष्कर्ष निकाले गए।

खेलों में करियर अवसर-

खेलों में करियर अवसरों को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

मैदान से जुड़े करियर

•पेशेवर खिलाड़ी: खिलाड़ी मैच फीस, वेतन, पुरस्कार राशि, प्रायोजन एवं विज्ञापन के माध्यम से आय अर्जित करते हैं।

•कोच एवं प्रशिक्षक: कोच प्रतिभा विकास, रणनीति निर्माण और प्रदर्शन सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

रेफरी एवं अंपायर: खेल नियमों के पालन और निष्पक्षता सुनिश्चित करने में इनकी भूमिका अत्यंत आवश्यक होती है।

मैदान से बाहर के करियर

खेल उद्योग के विस्तार के साथ-साथ मैदान से बाहर (Off-Field) करियर की संभावनाएँ अत्यधिक बढ़ी हैं। आज खेल केवल खिलाड़ियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इसके सुचारु संचालन, प्रचार-प्रसार, वैज्ञानिक समर्थन और कानूनी संरचना के लिए विभिन्न विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। मैदान से बाहर के करियर खेल उद्योग को एक संगठित एवं व्यावसायिक स्वरूप प्रदान करते हैं।

(क) खेल प्रबंधन एवं प्रशासन

खेल प्रबंधन एवं प्रशासन खेल संगठनों, प्रतियोगिताओं और संस्थानों के संचालन से संबंधित है। इसमें खेल आयोजनों की योजना बनाना, बजट प्रबंधन, प्रायोजन, विपणन, मानव संसाधन प्रबंधन तथा नीतिगत निर्णय शामिल होते हैं। खेल प्रबंधक लीग, क्लब, खेल महासंघ और अकादमियों के प्रशासनिक कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करते हैं। आज खेल प्रबंधन एक स्वतंत्र पेशेवर क्षेत्र बन चुका है, जिसके लिए विशेष डिग्री एवं प्रशिक्षण उपलब्ध हैं।

(ख) खेल पत्रकारिता एवं मीडिया

खेल पत्रकारिता एवं मीडिया खेल और समाज के बीच सेतु का कार्य करते हैं। खेल पत्रकार समाचार पत्रों, टेलीविजन, रेडियो और डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से खेल समाचार, विश्लेषण, साक्षात्कार और लाइव कमेंट्री प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक समय में सोशल मीडिया, डिजिटल कंटेंट क्रिएशन और स्पोर्ट्स ब्रॉडकास्टिंग ने इस क्षेत्र में रोजगार की व्यापक संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। खेल मीडिया खेलों के व्यावसायीकरण और लोकप्रियता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(ग) खेल विज्ञान (फिजियोथेरेपी, मनोविज्ञान, पोषण)

खेल विज्ञान खिलाड़ियों के शारीरिक, मानसिक और पोषण संबंधी विकास पर केंद्रित है।

•फिजियोथेरेपिस्ट खिलाड़ियों की चोटों की रोकथाम, उपचार और पुनर्वास में सहायता करते हैं।

•खेल मनोवैज्ञानिक खिलाड़ियों के मानसिक स्वास्थ्य, आत्मविश्वास और प्रदर्शन दबाव को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

खेल पोषण विशेषज्ञ खिलाड़ियों के आहार और ऊर्जा संतुलन को सुनिश्चित करते हैं।

खेल विज्ञान के बिना आधुनिक प्रतिस्पर्धात्मक खेलों की कल्पना नहीं की जा सकती।

(घ) खेल कानून एवं अनुबंध प्रबंधन

खेल कानून एक उभरता हुआ क्षेत्र है, जिसमें खिलाड़ी अनुबंध,

स्थानांतरण, प्रायोजन समझौते, विवाद समाधान और अनुशासनात्मक मामलों का निपटारा किया जाता है। खेल वकील और अनुबंध प्रबंधक खिलाड़ियों और संगठनों के कानूनी अधिकारों की रक्षा करते हैं। व्यावसायिक खेलों में बढ़ती धनराशि के कारण इस क्षेत्र का महत्व निरंतर बढ़ रहा है।

(ङ) डेटा विश्लेषण एवं प्रदर्शन मूल्यांकन

डेटा विश्लेषण आधुनिक खेलों का एक अनिवार्य अंग बन चुका है। खेल विश्लेषक खिलाड़ियों के प्रदर्शन, रणनीति, फिटनेस और विपक्षी टीमों के आंकड़ों का विश्लेषण करते हैं। प्रदर्शन मूल्यांकन से टीम चयन, प्रशिक्षण योजना और रणनीतिक निर्णयों में सहायता मिलती है। यह क्षेत्र खेल और प्रौद्योगिकी के समन्वय का श्रेष्ठ उदाहरण है।

खेलों में नियम एवं शासन

खेल करियर की सफलता और दीर्घकालिक स्थायित्व के लिए सुदृढ़ नियम एवं शासन प्रणाली अत्यंत आवश्यक है। नियम खेलों में अनुशासन, निष्पक्षता और पारदर्शिता सुनिश्चित करते हैं। वैश्विक स्तर पर Fédération Internationale de Football Association जैसे संगठन खिलाड़ी अनुबंध, स्थानांतरण, अनुशासनात्मक कार्रवाई और व्यावसायिक अधिकारों को नियंत्रित करते हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर खेल शासन

राष्ट्रीय स्तर पर खेलों का संचालन निम्नलिखित संस्थाओं द्वारा किया जाता है:

- **राष्ट्रीय खेल नीति:** खेलों के विकास, प्रतिभा खोज और एथलीट कल्याण के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करती है।
- **खेल प्राधिकरण:** प्रशिक्षण, अवसंरचना विकास और अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की तैयारी में सहायता करता है।

राष्ट्रीय खेल महासंघ: विभिन्न खेलों के नियम, चयन प्रक्रिया और प्रतियोगिताओं का संचालन करते हैं।

ये संस्थाएँ खेलों में पारदर्शिता, निष्पक्षता और खिलाड़ियों के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करती हैं।

खेल उद्योग का औद्योगिक प्रभाव

खेल उद्योग का प्रभाव केवल खेल तक सीमित न रहकर समाज और अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्रों तक विस्तारित है।

(क) आर्थिक विकास

खेल उद्योग राष्ट्रीय आय और सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में महत्वपूर्ण योगदान देता है। प्रसारण अधिकार, प्रायोजन, टिकट बिक्री और विज्ञापन से बड़े पैमाने पर राजस्व उत्पन्न होता है।

(ख) रोजगार सृजन

खेल उद्योग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के रोजगार उत्पन्न करता है। खिलाड़ियों, कोचों और अधिकारियों के साथ-साथ मीडिया, पर्यटन, निर्माण और सेवा क्षेत्र में भी रोजगार के अवसर बनते हैं।

(ग) अवसंरचना विकास

खेलों के विकास से स्टेडियम, खेल अकादमी, प्रशिक्षण केंद्र और खेल विज्ञान प्रयोगशालाओं का निर्माण होता है, जिससे क्षेत्रीय विकास को गति मिलती है।

(घ) पर्यटन एवं वैश्विक पहचान

अंतरराष्ट्रीय खेल आयोजनों के माध्यम से पर्यटन को बढ़ावा मिलता है और देश को वैश्विक पहचान प्राप्त होती है। खेल राष्ट्र की सॉफ्ट-पावर को भी सुदृढ़ करते हैं।

खेल करियर में चुनौतियाँ (Challenges in Sports Careers)

खेलों में तीव्र प्रगति के बावजूद करियर विकास में अनेक बाधाएँ बनी हुई हैं।

- **गैर-खेल करियर के प्रति सीमित जागरूकता:** अधिकांश लोग खेल को केवल खिलाड़ी तक सीमित मानते हैं।
- **क्षेत्रीय एवं लैंगिक असमानता:** ग्रामीण क्षेत्रों और महिलाओं को कम अवसर मिलते हैं।
- **ग्रामीण क्षेत्रों में अवसंरचना की कमी:** प्रशिक्षण और सुविधाओं का अभाव प्रतिभा को रोकता है।
- **करियर परामर्श एवं खेल शिक्षा का अभाव:** सही मार्गदर्शन न मिलने से प्रतिभाएँ नष्ट हो जाती हैं।

जमीनी स्तर पर वित्तीय असुरक्षा: अनियमित आय और सामाजिक सुरक्षा का अभाव करियर को अस्थिर बनाता है।

सुझाव (Suggestions)

खेल करियर को सुदृढ़ और समावेशी बनाने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं:

- उच्च शिक्षा में खेल विषयों का एकीकरण किया जाए
- खेल विश्वविद्यालयों एवं विशेष प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना हो
- सार्वजनिक–निजी भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाए
- पारदर्शी और जवाबदेह शासन व्यवस्था विकसित की जाए

खिलाड़ियों के लिए बीमा, पेंशन और पुनर्वास जैसी सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ लागू की जाएँ

राष्ट्रीय एवं वैश्विक तुलना

पहलू	राष्ट्रीय स्तर	वैश्विक स्तर
शासन	सरकारी नियंत्रण	अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ
आय	सीमित से मध्यम	अत्यधिक
अवसंरचना	विकासशील	अत्याधुनिक
करियर विविधता	बढ़ती हुई	अत्यंत व्यापक

सुझाव-

खेल करियर को सुदृढ़, समावेशी एवं दीर्घकालिक रूप से स्थायी बनाने के लिए नीतिगत, शैक्षणिक और संस्थागत स्तर पर समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं:

उच्च शिक्षा में खेल विषयों का एकीकरण किया जाए

खेलों को केवल सह-पाठ्य गतिविधि न मानकर एक **शैक्षणिक एवं व्यावसायिक विषय** के रूप में उच्च शिक्षा प्रणाली में पूर्णतः एकीकृत किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में खेल प्रबंधन, खेल विज्ञान, खेल मनोविज्ञान, खेल पत्रकारिता एवं खेल कानून जैसे पाठ्यक्रम प्रारंभ किए जाने चाहिए। इससे विद्यार्थियों को खेल क्षेत्र में अकादमिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक कौशल भी प्राप्त होगा और खेल को एक सम्मानजनक करियर विकल्प के रूप में स्वीकार्यता मिलेगी।

खेल विश्वविद्यालयों एवं विशेष प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना

खेल प्रतिभाओं के समग्र विकास के लिए **खेल विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय खेल अकादमियों एवं विशेष प्रशिक्षण संस्थानों** की स्थापना अत्यंत आवश्यक है। ऐसे संस्थान खिलाड़ियों को तकनीकी प्रशिक्षण, वैज्ञानिक सहयोग, शिक्षा और करियर मार्गदर्शन एक ही स्थान पर उपलब्ध करा सकते हैं। इससे खिलाड़ियों को प्रारंभिक स्तर से ही संरचित प्रशिक्षण और सुरक्षित करियर मार्ग प्राप्त होगा।

सार्वजनिक–निजी भागीदारी (PPP) को प्रोत्साहित किया जाए

खेल क्षेत्र में संसाधनों, निवेश और विशेषज्ञता की कमी को दूर करने के लिए **सार्वजनिक–निजी भागीदारी** को बढ़ावा देना आवश्यक है।

निजी क्षेत्र की भागीदारी से खेल अवसंरचना, प्रायोजन, आयोजन प्रबंधन और रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो सकती है। PPP मॉडल खेलों के व्यावसायीकरण के साथ-साथ सरकारी तंत्र पर वित्तीय भार को भी कम करता है।

पारदर्शी और जवाबदेह शासन व्यवस्था विकसित की जाए

खेलों में करियर की स्थिरता और विश्वास बनाए रखने के लिए **पारदर्शी, नैतिक एवं जवाबदेह शासन व्यवस्था** अत्यंत आवश्यक है। चयन प्रक्रिया, वित्तीय प्रबंधन, अनुशासनात्मक कार्रवाई और नीतिगत निर्णयों में पारदर्शिता से खिलाड़ियों और अन्य पेशेवरों का विश्वास बढ़ता है। मजबूत शासन प्रणाली खेलों में भ्रष्टाचार, पक्षपात और शोषण को रोकने में सहायक होती है।

खिलाड़ियों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ लागू की जाएँ

खेल करियर में सबसे बड़ी चुनौती वित्तीय असुरक्षा है, विशेषकर जमीनी स्तर और सेवानिवृत्त खिलाड़ियों के लिए। इसलिए खिलाड़ियों के लिए **बीमा, पेंशन, चिकित्सा सहायता एवं पुनर्वास योजनाएँ** लागू की जानी चाहिए। करियर समाप्ति के बाद शिक्षा, रोजगार और कौशल विकास के अवसर प्रदान कर खिलाड़ियों के भविष्य को सुरक्षित बनाया जा सकता है। इससे खेल को एक जोखिमपूर्ण पेशे के बजाय सुरक्षित करियर विकल्प के रूप में देखा जाएगा।

समग्र विश्लेषण

उपरोक्त सुझावों को प्रभावी रूप से लागू करने से खेल क्षेत्र में न केवल करियर अवसरों का विस्तार होगा, बल्कि खेल उद्योग सामाजिक समावेशन, रोजगार सृजन और आर्थिक विकास का एक मजबूत माध्यम बन सकेगा। सरकार, शैक्षणिक संस्थानों, खेल संगठनों और निजी क्षेत्र के संयुक्त प्रयास से ही खेलों को एक दीर्घकालिक और स्थायी करियर क्षेत्र के रूप में स्थापित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

खेल आज एक सशक्त, संगठित और वैश्विक उद्योग के रूप में उभर चुके हैं। उचित नियम, स्थायी आय संरचना और मजबूत औद्योगिक समर्थन के माध्यम से खेलों को एक दीर्घकालिक और सुरक्षित करियर विकल्प बनाया जा सकता है। नीति निर्माण, शिक्षा सुधार और जागरूकता के माध्यम से खेल क्षेत्र भविष्य में रोजगार और आर्थिक विकास का प्रमुख स्रोत बन सकता है।

******

संदर्भ -

1. कोकली, जे. (2021). **समाज में खेल: मुद्दे और विवाद**. मैकग्रा-हिल एजुकेशन।
2. भारत सरकार. (2021). **राष्ट्रीय खेल नीति**. युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय, नई दिल्ली।
3. हूलिहैन, बी., एवं मैल्कम, डी. (2019). **खेल और समाज**. सेज पब्लिकेशन्स।
4. आंद्रेफ, डब्ल्यू., एवं स्ज़िमान्स्की, एस. (2019). **खेल का अर्थशास्त्र: एक हैंडबुक**. एडवर्ड एल्गर पब्लिशिंग।
5. शिलबरी, डी., वेस्टरबीक, एच., क्विक, एस., एवं फंक, डी. (2020). **रणनीतिक खेल प्रबंधन**. एलेन एंड अनविन।
6. ओईसीडी. (2020). **खेल, अर्थव्यवस्था और विकास**. आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (OECD)।
7. सिंह, पी., एवं मिश्रा, ए. (2020). **भारत में खेल विकास एवं करियर अवसर**. *अंतरराष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा, खेल एवं स्वास्थ्य पत्रिका*, 7(2), 45–50।
8. ग्रैटन, सी., एवं टेलर, पी. (2018). **खेल एवं मनोरंजन का अर्थशास्त्र**. रूटलेज।
9. पेडरसन, पी. एम. (2021). **आधुनिक खेल प्रबंधन**. ह्यूमन काइनेटिक्स।
10. अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक समिति. (2021). **ओलंपिक एजेंडा एवं खेल शासन ढांचा**. आईओसी प्रकाशन।

नए व्यवसायों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव

डॉ. श्वेता कुमारी
शोधार्थी एवं
सहायक प्रोफेसर
बी. एन. कॉलेज ऑफ एजुकेशन, धोरैया, बांका

सारांश-वर्तमान डिजिटल युग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) ने वैश्विक आर्थिक संरचना, व्यावसायिक प्रक्रियाओं और नवाचार की गति को गहराई से प्रभावित किया है। यह केवल तकनीकी उन्नति का माध्यम नहीं, बल्कि व्यवसायों की रणनीतिक दिशा को पुनर्परिभाषित करने वाला एक परिवर्तनकारी उपकरण बन चुकी है। विशेष रूप से नए व्यवसायों और स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ सीमित संसाधनों के बावजूद उच्च दक्षता, तीव्र निर्णय-निर्माण और ग्राहक-केंद्रित सेवाओं की आवश्यकता होती है।

यह लेख नए व्यवसायों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बहुआयामी प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें व्यवसाय मॉडल में परिवर्तन, ग्राहक अनुभव में सुधार, लागत-प्रबंधन और कार्यकुशलता, नवाचार एवं स्टार्टअप संस्कृति, तथा नैतिक एवं सामाजिक चुनौतियों का विवेचन शामिल है। लेख यह भी स्पष्ट करता है कि भविष्य की अर्थव्यवस्था में कृत्रिम बुद्धिमत्ता किस प्रकार केंद्रीय भूमिका निभाएगी और इसके संतुलित एवं उत्तरदायी उपयोग की आवश्यकता क्यों है।

प्रमुख शब्द (Keywords)-कृत्रिम बुद्धिमत्ता, नए व्यवसाय, डिजिटल अर्थव्यवस्था, डेटा विश्लेषण, स्वचालन, ग्राहक अनुभव, स्टार्टअप, नवाचार, मशीन लर्निंग, नैतिकता, डेटा गोपनीयता, व्यवसाय मॉडल

प्रस्तावना-21वीं सदी को यदि किसी एक विशेष तकनीकी क्रांति के संदर्भ में परिभाषित किया जाए, तो वह कृत्रिम बुद्धिमत्ता की क्रांति है। इंटरनेट, क्लाउड कंप्यूटिंग और बिग डेटा के विकास के साथ-साथ कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने व्यवसायों के संचालन की शैली को मौलिक रूप से परिवर्तित कर दिया है। आज प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में टिके रहने के लिए केवल पूंजी या पारंपरिक अनुभव पर्याप्त नहीं है; डेटा-आधारित निर्णय, त्वरित प्रतिक्रिया और ग्राहक की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की समझ आवश्यक हो गई है।

नए व्यवसाय, विशेषकर स्टार्टअप, नवाचार और प्रौद्योगिकी के माध्यम से बाजार में प्रवेश करते हैं। ऐसे में कृत्रिम बुद्धिमत्ता उनके लिए केवल एक सहायक उपकरण नहीं, बल्कि प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त प्राप्त करने का मूल आधार बन जाती है। यह तकनीक उन्हें सीमित संसाधनों में अधिक उत्पादकता, बेहतर विश्लेषण और व्यापक पहुँच प्रदान करती है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से व्यवसाय केवल अपने उत्पादों और सेवाओं को बेहतर नहीं बनाते, बल्कि वे अपने संगठनात्मक ढाँचे, विपणन रणनीति, आपूर्ति श्रृंखला, मानव संसाधन प्रबंधन और वित्तीय योजना को भी अधिक वैज्ञानिक और प्रभावी बनाते हैं। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने नए व्यवसायों की सोच, संरचना और कार्यप्रणाली को नई दिशा प्रदान की है।

व्यवसाय मॉडल में परिवर्तन

पारंपरिक से डेटा-आधारित मॉडल की ओर

पूर्व में व्यवसाय मुख्यतः अनुभव, अनुमान और सीमित बाजार सर्वेक्षण के आधार पर निर्णय लेते थे। किंतु आज डेटा-आधारित निर्णय-निर्माण व्यवसायिक सफलता का प्रमुख आधार बन गया है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता बड़ी मात्रा में उपलब्ध डेटा का विश्लेषण कर भविष्य के रुझानों का पूर्वानुमान लगाने में सक्षम है।

उदाहरणस्वरूप, Amazon ग्राहक की खरीदारी आदतों, ब्राउज़िंग पैटर्न और प्रतिक्रिया का विश्लेषण कर व्यक्तिगत सुझाव प्रस्तुत करता है। इससे ग्राहक की संतुष्टि बढ़ती है तथा बिक्री में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। यह मॉडल केवल उत्पाद बेचने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि ग्राहक के व्यवहार को समझकर दीर्घकालिक संबंध स्थापित करता है।

सदस्यता और प्लेटफ़ॉर्म आधारित मॉडल

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने प्लेटफ़ॉर्म आधारित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया है। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म उपभोक्ताओं और सेवा प्रदाताओं के बीच सेतु का कार्य करते हैं। AI एल्गोरिद्म उपयोगकर्ताओं की पसंद और व्यवहार का अध्ययन कर उन्हें उपयुक्त विकल्प प्रदान करते हैं।

इस प्रकार के मॉडल में डेटा ही प्रमुख संपत्ति बन जाता है। नए व्यवसाय डेटा संग्रह, विश्लेषण और उपयोग के माध्यम से स्वयं को निरंतर उन्नत करते रहते हैं।

पूर्वानुमान विश्लेषण और जोखिम प्रबंधन

पूर्वानुमान विश्लेषण (Predictive Analytics) के माध्यम से नए व्यवसाय संभावित जोखिमों और अवसरों का पूर्वानुमान लगा सकते हैं। वित्तीय प्रबंधन, मांग-आपूर्ति संतुलन और विपणन रणनीति में यह तकनीक अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है।

ग्राहक अनुभव में सुधार

व्यक्तिगत सेवाएँ और अनुशंसा प्रणाली

ग्राहक अनुभव आधुनिक व्यवसायों की सफलता का प्रमुख आधार है। AI आधारित अनुशंसा प्रणाली ग्राहकों की प्राथमिकताओं को समझकर व्यक्तिगत सुझाव प्रदान करती है।

भारत में Flipkart जैसे ई-कॉमर्स प्लेटफ़ॉर्म कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग कर उपयोगकर्ताओं को उनकी पसंद के अनुरूप उत्पाद दिखाते हैं। इससे खरीदारी प्रक्रिया अधिक सरल और आकर्षक बनती है।

चैटबॉट और वर्चुअल असिस्टेंट

AI आधारित चैटबॉट 24×7 ग्राहक सहायता प्रदान करते हैं। वे सामान्य प्रश्नों का त्वरित उत्तर देने, ऑर्डर की स्थिति बताने और शिकायतों का समाधान करने में सक्षम हैं। इससे मानव संसाधन पर निर्भरता कम होती है और प्रतिक्रिया समय घटता है।

ग्राहक व्यवहार का विश्लेषण

डेटा विश्लेषण के माध्यम से व्यवसाय यह समझ पाते हैं कि ग्राहक किन उत्पादों को पसंद करते हैं, किन सेवाओं से असंतुष्ट हैं और किन क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है। यह जानकारी रणनीतिक निर्णयों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

लागत में कमी और कार्यकुशलता में वृद्धि

स्वचालन (Automation)

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से दोहराए जाने वाले कार्यों का स्वचालन संभव हुआ है। इससे समय और संसाधनों की बचत होती है।

उदाहरण के लिए, Tesla अपनी उत्पादन प्रक्रिया में रोबोटिक्स और AI का उपयोग कर उत्पादन की गति और गुणवत्ता दोनों में सुधार करता है।

आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन

AI एल्गोरिद्म मांग का पूर्वानुमान लगाकर इन्वेंट्री प्रबंधन को अधिक प्रभावी बनाते हैं। इससे अतिरिक्त भंडारण लागत कम होती है और उत्पाद समय पर उपलब्ध रहते हैं।

मानव संसाधन प्रबंधन

भर्ती प्रक्रिया में AI आधारित सॉफ़्टवेयर उम्मीदवारों की प्रोफ़ाइल का विश्लेषण कर उपयुक्त उम्मीदवारों का चयन करते हैं। इससे समय की बचत और निष्पक्षता दोनों सुनिश्चित होती हैं।

नवाचार और स्टार्टअप संस्कृति को बढ़ावा

नए क्षेत्रों में अवसर

स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि और वित्त जैसे क्षेत्रों में AI आधारित समाधान तेजी से विकसित हो रहे हैं। नए स्टार्टअप डेटा-संचालित ऐप और प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से स्थानीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं।

शिक्षा और एडटेक।-शिक्षा के क्षेत्र में AI आधारित लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म विद्यार्थियों की सीखने की गति और शैली का विश्लेषण कर व्यक्तिगत शिक्षण सामग्री प्रदान करते हैं। इससे शिक्षा अधिक प्रभावी और समावेशी बनती है।

वित्तीय प्रौद्योगिकी (FinTech)-AI आधारित वित्तीय सेवाएँ ऋण स्वीकृति, जोखिम विश्लेषण और धोखाधड़ी की पहचान में सहायक हैं। इससे नए व्यवसाय वित्तीय पारदर्शिता और सुरक्षा सुनिश्चित कर पाते हैं।

चुनौतियाँ और नैतिक प्रश्न

डेटा गोपनीयता-कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रभावी संचालन के लिए विशाल मात्रा में डेटा की आवश्यकता होती है। यदि इस डेटा का दुरुपयोग हो, तो गोपनीयता का हनन हो सकता है।

रोजगार पर प्रभाव-स्वचालन के कारण कुछ पारंपरिक नौकरियाँ प्रभावित हो सकती हैं। हालांकि, साथ ही नए कौशल और रोजगार के अवसर भी उत्पन्न होते हैं। इसलिए कौशल विकास और पुनःप्रशिक्षण आवश्यक है।

एल्गोरिद्मिक पक्षपात-यदि AI प्रणाली को पक्षपाती डेटा पर प्रशिक्षित किया जाए, तो परिणाम भी पक्षपाती हो सकते हैं। इससे सामाजिक असमानता बढ़ सकती है।

कानूनी और नीतिगत ढांचा-नए व्यवसायों के लिए आवश्यक है कि वे कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग में पारदर्शिता, जवाबदेही और नैतिक मानकों का पालन करें। सरकारों को भी उपयुक्त नीतियाँ विकसित करनी चाहिए।

भारतीय परिप्रेक्ष्य-भारत में डिजिटल परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है। स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र के विस्तार के साथ-साथ AI का उपयोग भी बढ़ रहा है। छोटे और मध्यम उद्यम (SMEs) भी डिजिटल उपकरणों के माध्यम से अपनी प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ा रहे हैं। विशेषकर टियर-2 और टियर-3 शहरों में उद्यमिता का विस्तार हो रहा है, जहाँ AI आधारित डिजिटल सेवाएँ स्थानीय बाजार को राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर से जोड़ रही हैं।

भविष्य की संभावनाएं-भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और अधिक उन्नत रूप में व्यवसायों का हिस्सा बनेगी। स्वचालित निर्णय प्रणाली, रोबोटिक प्रोसेस ऑटोमेशन, और उन्नत डेटा विश्लेषण व्यवसायों को और अधिक सटीक तथा त्वरित बनाएंगे।

मानव और मशीन के सहयोग का मॉडल विकसित होगा, जहाँ AI निर्णय-निर्माण में सहायता करेगा, जबकि अंतिम नियंत्रण मानव के पास रहेगा।

निष्कर्ष-नए व्यवसायों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव व्यापक, गहन और बहुआयामी है। यह केवल तकनीकी सुधार का माध्यम नहीं, बल्कि रणनीतिक परिवर्तन का आधार बन चुकी है। व्यवसाय मॉडल, ग्राहक अनुभव, लागत प्रबंधन और नवाचार—सभी क्षेत्रों में AI ने नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं।

हालाँकि, इसके साथ-साथ नैतिकता, गोपनीयता और सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण है। यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग संतुलित, पारदर्शी और उत्तरदायी ढंग से किया जाए, तो यह नए व्यवसायों को न केवल आर्थिक सफलता प्रदान करेगी, बल्कि सामाजिक विकास में भी योगदान देगी।

इस प्रकार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता भविष्य की अर्थव्यवस्था की केंद्रीय शक्ति के रूप में उभर रही है और नए व्यवसायों के लिए अवसरों की एक नई दुनिया खोल रही है।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

सांप्रदायिकता के संदर्भ में असगर वजाहत के कथा-साहित्य : एक अद्ययन

अन्सिफा नवास
शोधार्थी
ansifanavas@gmail.com

डॉ. अंजली एस.
सहायक आचार्या
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग एवं शोध केंद्र
महाराजा कॉलेज, एर्णाकुलम – केरल

भारत अत्यं जटिल सामाजिक संरचना से युक्त देश है। यहाँ सांप्रदायिकता से जुड़ी बातें नई नहीं है। अतीत से लेकर वर्तमान तक सांप्रदायिक मनोवृति सामाजिक जीवन का एक अभिन्न हिस्सा बनकर उभरा है। सांप्रदायिकता के अधिक भयंकर रूप आधुनिक भारत में, आजादी के पहले और बाद में मिलता है, इसको लेकर कोई तर्क ही नहीं है। सांप्रदायिकता वह मानसिकता है, जिसमें व्यक्ति अपने धर्म को सर्वोपरि मानता है और मात्र उसी को सही मानता है | यह तभी खतरनाक बनता है जब वह अन्य धर्मों के प्रति घृणा या द्वेष रखते हुए उनकी धार्मिक आस्थाओं को दबाने की कोशिश करता है | धार्मिक आस्था एवं सांस्कृतिक परिवेश की भिन्नता सांप्रदायिक भेदभाव को पलने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं | राजनीति इस आग को भभकाने का काम करता है | हमें पहले ये समझना चाहिए कि, धार्मिक होना एक बात है और सांप्रदायिक होना बिल्कुल दूसरी बात। कट्टर धार्मिक व्यक्ति धर्म-निरपेक्ष हो सकता है और धार्मिक चेतना में कोई विशेष रुचि न रखनेवाला व्यक्ति घोर सांप्रदायिक मनोवृति का भी हो सकता है | इतिहास इसका गवाह है | पाकिस्तान के राष्ट्र पिता मुहम्मद अली जिन्ना का उदहारण ले सकते हैं | वे कट्टर मुसलमान नहीं थे लेकिन उन्होंने मुसलमानों के नाम पर विभाजन की माँग की; राजनीतिक सत्ता हासिल करने के लिए धर्म को हथियार बनाया। भारत-पाकिस्तान विभाजन इसी का ही परिणाम था। ठीक वही बात आज भारत में हो रहा है। वर्तमान समाज में राजनीतिक प्रयोजनों के लिए, सत्ता हाज़िल करने केलिए जनता की धार्मिक भावनाओं को भड़का रहे हैं। घोर सांप्रदायिक मानसिकतावाले लोग जहां तक आस्थावान हैं, यह परखना मुश्किल हो जाता है | धर्म, संप्रदाय, परंपरा, संस्कृति आदि आज राजनीतिक अधिकार पाने का साधन सिद्ध हो जाता है | सम्पूर्ण देश को ग्रस लेनेवाली इस समस्या को लेकर आज देश चिंतित है | इसलिए ही सांप्रदायिकता पर चिंतन करना वर्तमान समय की आवश्यकता है।

डॉ.असगर वजाहत बहुमुखी प्रतिभा से युक्त रचनाकार हैं। उनका साहित्य समकालीन भारतीय समाज की वास्तविकताओं का लेखा-जोखा है। विषय की दृष्टि से सांप्रदायिकता उनकी रचनाओं के केंद्र में है। उनका मानना है कि धर्म एक आध्यात्मिक सत्य है; उसे राष्ट्रीयता का आधार मानना गलत है | उनके अनुसार राजनीति से जुडने पर धर्म, धर्म नहीं रह जाता, वह विकृत हो जाता है। इसलिए उनको हम हमेशा धर्मेतर राजनीति के पक्ष में खड़े होते हुए पाते हैं। समकालीन भारतीय राजनीति धर्म से जुडी हुई है। राजनीतिज्ञ जनता के मन में जड़ें जमाई हुई धार्मिक चेतना का उपयोग सत्ता हासिल करने के उपकरण के रूप में करते हैं । धार्मिक मान्यताओं का प्रचार करते हुए जनसमर्थन प्राप्त करना आज एक सामान्य रणनीति बन चुकी है। असगर वजाहत अपनी रचनाओं के माध्यम से इस स्थिति की सख्त आलोचना करते हैं। उनके अनुसार जब धर्म को सत्ता की सीढ़ि बना दिया जाता है, समाज में विभाजन, असहिष्णुता और घृणा की भावना बढ़ जाती है। सांप्रदायिक तनाव मानवीय संवेदनाओं को क्षति पहुँचाती है।

'गुरु-चेला संवाद', 'मुख्यमंत्री', 'डेमोक्रेसिया', जैसी उनकी कहानियों में आतंक, भ्रष्टाचार, पाखंड आदि सामाजिक विद्रूपताओं के साथ उलझी हुई धर्म के स्वरुप को हम देख सकते हैं | 'सारी तालीमात' पूँजी और धर्म के सांप्रदायिक गठजोड़ को दर्शाता है तो 'मैं हिंदू हूं' सांप्रदायिकता के बदलते स्वरुप पर प्रकाश डालनेवाली कहानी है | 'जख्म' कहानी का नायक मुख्तार दंगे-फसाद का शिकार है। मुख्तार के माध्यम से सांप्रदायिक दंगे-फसाद भीषणता को सम्पूर्णता में वे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं | 'सात आसमान','कैसी आगी लगाई', 'बरखा रचाई', 'मनमाटी', 'चहारदार'-इन उपन्यासों में देश विभाजन से बनी मानसिकता, हिन्दू-मुस्लिम धर्मों के बीच बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता की ज़हर, तज्जन्य तनाव आदि का वर्णन किया गया है। इस प्रकार असगर वजाहत का कथा साहित्य धर्म और राजनीति के बीच के अनैतिक गढ़बंधनों एवं उससे उपजानेवाली सांप्रदायिकता के अनगिनत पहलुओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। समकालीन राजनीति पर टिपण्णी करते हुए वे कहते हैं - "हिन्दुत्व और सांप्रदायिकता के कारण ही वे आज सत्ता में बैठे है। सत्ता प्राप्त करने का इससे सरल नुस्खा क्या हो सकता है? यही तो मुस्लिम लीग और मोहम्मद अली जिन्ना ने किया था।"[1]

'कैसी आगी लगाई' उपन्यास का आरंभ अलीग़ढ़ के हिन्दू-मुस्लिम दंगों से होता है। शहर का वातावरण तनाव से भरा हुआ है। वहां फसाद का माहौल है और छोटी-छोटी घटनाएँ बड़े दंगों का रूप ले लेती दिखाई दे रहे है- "उन दिनों शहर में हिन्दू-मुस्लिम फसाद की फिज़ा बनी हुई थी। दो दिन पहले चाकू मारकर किसी हिन्दू की हत्या कर दी गई थी। उसके बाद मुसलमानों की कुछ दुकानें लुटी थीं। शहर के एक इलाके में कर्फ्यू लगा दिया गया था और शहर यूनिवर्सिटी के लड़कों के लिए 'आउट ऑफ बाउन्ड' हो गया था। प्राक्टर का ऐसा नोटिस मैंने देखा था।"[2] दंगों का प्रभाव विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों पर भी पड़ता है और उनके बीच इस विषय पर बहस होती है। कुछ धार्मिक विचारधारा से जुड़े छात्र इसे ईमान की कमजोरी का परिणाम मानते हैं, जबकि वामपंथी विचारधारा के छात्र इसे वर्ग संघर्ष और राजनीतिक स्वार्थ से जोड़कर देखते हैं-"तबलीगी जमात के लड़के कहते थे कि हमारा ईमान कमजोर हो गया है इसलिए हम पर इस तरह की मुसीबतें आती है।"[3] "कॉम्युनिस्टो का कहना था कि सांप्रदायिक दंगों की राजनीति है उसे समझना चाहिए। और जब 'क्लास स्ट्रगल' तेज़ होगा तो दंगे अपने आप खत्म हो जाएंगे।"[4] उपन्यास में लेखक ने सांप्रदायिक राजनीति की पोल खोलने का प्रयास करता है। उनका मानना है कि, कोई नहीं चाहता है कि दंगे रुके - "आम तौर पर सब लोग प्रशासन को दंगों का जिम्मेदार ठहराते थे और मानते थे कि कॉंग्रेस को भी इसमें कोई रुचि नहीं है कि दंगे रुकें। लेकिन कॉंग्रेस के अलावा और कोई पार्टी न दिखाई देती थी जिसे मुसलमान वोट दे सकें। क्योंकि पिछली साल हुए चीन के हमले की वजह से नेहरू 'हिल' गए हैं पर फिर भी ग़नीमत है।"[5] दंगे- फसाद

का संबंध राजनीति से हैं और इसी कारण किसी प्रकार का समाधान खोजने की प्रक्रिया को गति नहीं दी जाती है। हिन्द या मुसलमान लड़ना नहीं चाहते। भारत विभाजन आम लोगों के संघर्ष की वजह से नहीं हुआ था। हिन्द-मुस्लिम तनाव हमेशा राजनीतिक होता है, किन्तु कुपरिणाम दोनों ही संप्रदायों को झेलना पड़ता है। असगर वजाहत ने पूरी साफगोई के साथ भारत में सांप्रदायिकता के कारणों को स्पष्ट किया है। 'जख्म' कहानी में हिन्द-मुसलमान के सांप्रदायिक दंगों में राजनेताओं तथा प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिका का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है। नेता, अधिकारी तथा मीडिया सांप्रदायिक दंगों को नियंत्रित करने का प्रयास करते हुए दिखते जरूर हैं किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। वह अपनी नाकामियों को छुपाने के लिए ऐसी स्थिति का निर्माण करने से नहीं चूकते। सांप्रदायिक दंगे आज एक सामान्य घटना बनकर उभरते हुए दिखाई देते हैं - "बदलते हुए मौसमों की तरह राजधानी में सांप्रदायिक दंगों का भी मौसम आता है। फर्क इतना है कि दूसरे मौसमों के आने-जाने के बारे में जैसे स्पष्ट अनुमान लगाए जा सकते हैं, वैसे अनुमान सांप्रदायिक दंगों के मामले में नहीं लगा सकते। फिर भी पूरा शहर यह मानने लगा है कि सांप्रदायिक दंगे भी मौसमों की तरह निश्चित रूप से आते हैं। बात इतनी सहज-साधारण बना दी गई है कि सांप्रदायिक दंगों की खबरें लोग इसी तरह सुनते हैं जैसे 'गर्मी बहुत बढ़ गई है' या 'अबकी पानी बहुत बरसा'! दंगों की खबर सुनकर बस इतना मान लेते हैं कि शहर का एक हिस्सा 'कर्फ्यूग्रस्त' हो गया है लोग रास्ते बदल लेते हैं।"[6] कहानीकार असगर वजाहत ने भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन के अंग बन चुके सांप्रदायिक दंगों पर अपनी चिंता व्यक्त करते हैं। मौसम के बदलने की तरह सांप्रदायिक दंगों का आना चिंता का विषय है। इसके प्रभाव से सम्पूर्ण दंगों की खबर यदि सामान्य बन जाए तो देश की अस्मिता को ही खतरे में समझना चाहिए। यह सांप्रदायिक शक्तियों के हाथ में राजनीति के आने का परिणाम है।

आज से 40-50 वर्ष पहले सांप्रदायिक दंगों में इतनी बीभत्स हिंसा नहीं होती थी। दंगों को नियंत्रित करने के लिए नेता और दंगाई एक साथ काम नहीं करते थे। दंगों का कारण जमीन पर कब्जा या कुछ स्थानीय राजनीति हुआ करती थी। किन्तु अब सांप्रदायिक दंगों का लक्ष्य सत्ता पर कब्जा करना हो चुका है| इसके लिए अन्तराष्ट्रिय मुद्दों पर भी हिंसा और घृणा का माहौल तैयार किया जाता हुआ दिखाई देता है। वर्तमान दौर के सांप्रदायिक दंगे धर्मांधता से चालित होते हैं। धर्म के नाम पर जब मानविकता नष्ट होती है, पाशविकता उस स्थान को ग्रहण करती हुई दिखाई देती है, नई पीढ़ि का मानवता पर विश्वास ही नष्ट हो जाता है| घोर आतंक और अनिश्चितता में बीतनेवाला बचपन मानसिक विकास को अवरुद्ध कर देता है| 'मैं हिन्द हुं' कहानी का 'सैफु' दंगों की भयावहता को देखते और भोगते हुए मानसिक संतुलन खो देता है| उसे लगता है कि यदि वह हिन्द बन जाए तो उसकी जान बच सकती है। "बात कहां से कहां तक पहुच चुकी है इसका अंदाजा मुझे उस वक्त तक न था जब तक एक दिन सैफु ने बड़ी गंभीरता से मुझसे पूछा-'बड़े भाई, मैं हिन्द हो जाऊँ ?' सवाल सुनकर मैं सन्नाटे में आ गया। मैं ने कहा-'क्यों, तुम हिन्द क्यों होना चाहते हो?!"बच जाऊँगा"![7] 'सांप्रदायिक कट्टरता के बीच अफवाहों की दुनिया में बीता बचपन सैफु में अरक्षितता पैदा करता है| सैफु यही सुनकर बडा हो रहा था कि हिन्द देश में मुसलमानों के लिए बडा खतरा है। वह गैर-हिंदुओं को विनष्ट करने पर तुले हुए हैं। इसका प्रभाव बालमन पर पड़ना स्वाभाविक है। असगर वजाहत ने इस प्रवृत्ति को असहज माना है। फसादों को समाप्त कर बंधुत्व की स्थापना करने से ही स्वाभिमान एवं देश के प्रति दायित्व से युक्त एक पीढ़ी का निर्माण हो सकता है| 'गुरु-चेला संवाद' में लेखक ने समाज को विभाजित करने वाली शक्तियों पर व्यंग्य करते है। इस संवाद में गुरु चेले को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि भारत में हिन्द और मुसलमान एक साथ नहीं रह सकते, क्योंकि उनकी धार्मिक विश्वास और परंपराएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। लेखक इस कथन के माध्यम से समाज में प्रचलित संकीर्ण मानसिकता और पूर्वाग्रहों को प्रकाश में लाने का प्रयास करते है। दंगों को रोकने के लिए समाज के विभिन्न वर्ग—पंडित-मौलवी, राजनीतिक नेता, सेठ-साहूकार तथा सरकारी अधिकारी—अपने-अपने स्तर पर प्रयास करने का दावा करते हैं, फिर भी दंगे समाप्त नहीं होते। दंगों के पीछे एक गहरी राजनीतिक विडम्बना छिपी हुई है। वास्तव में दंगों का बने रहना कुछ लोगों के स्वार्थ को पूरा करता है, इसलिए उनका स्थायी समाधान नहीं हो पाता। सांप्रदायिक दंगे केवल भावनात्मक उन्माद का परिणाम नहीं होते, बल्कि उनके पीछे सत्ता की इच्छा, स्वार्थ और अवसर का लाभ उठाने की प्रवृत्ति भी सक्रिय रहती है।संवाद की अंतिम पंक्ति—"इसे समझ जाओगे..और किसी दंगे में मार दिए जाओगे।"— यह बताती है कि दंगों के वास्तविक कारणों को समझना ही व्यवस्था के लिए असहज है। इस प्रकार यह संवाद समाज में व्याप्त पाखंड, स्वार्थ और सांप्रदायिक मानसिकता पर गहरा प्रहार करता है तथा मानवता के पतन की ओर संकेत करता है। साथ ही, कहानीकार बहुत कम शब्दों में दंगों के दर्शन और समाजशास्त्र को पाठकों के सामने रख देता है। समाजशास्त्रियों के लिए दंगे एक सामाजिक समस्या हैं, कुछ लोग उन्हें केवल धार्मिक विवाद मानकर देखना चाहते हैं, जबकि कई बार राजनीतिज्ञों के लिए सांप्रदायिक दंगे केवल स्वार्थसिद्धि का साधन बन जाते हैं।

असगर वजाहत की कहानी 'शाह आलम कैम्प की रूहें' में नई सदी में घटित सांप्रदायिक दंगे-फसादों, हत्याकांडों तथा उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत किया गया है। इसमें दंगे में मारे गए, जिंदा जलाए गए लोगों की रूहों के सिवा गांधी और शैतान की रूहें भी कैम्प का दौरा करती हैं। दंगे से बचे हुए लोग शरणार्थी कैम्पों में नरकतुल्य जीवन बिताते हैं| वे किसी न किसी प्रकार उससे मुक्त होना चाहते हैं| इनकी समस्याओं को देखते हुए उन्हें सांत्वना देने और उन विस्थापितों को साधारण जीवन की और वापस लाने ले लिए जिम्मेदार नेताओं के ढ़ोंग को भी इसमें दर्शाया है|'मुश्किल काम' कहानी को हम असगर वजाहत की संवेदनक्षमता का सबसे बड़ा उदहारण मान सकते हैं| इसमें हत्यारे का यह बयान मनुष्यता के पक्ष में सबसे बड़ी गवाही है - 'बच्चों को मारना बहुत मुश्किल है.. बच्चों को मारते समय.. अपने बच्चे याद आ जाते हैं।' यह मनुष्यता का संधान है और एक रचनाकार इसकी तलाश में हत्यारों की कुत्सित मंडली तक जाने में कोई संकोच नहीं करता। 'सारी तालीमात' ऐसी कहानी है जो पूँजी और धर्म के सांप्रदायिक गठजोड़ पर बात करती है। यह लेखक की शुरुआती कहानियों में से एक है। हाजी साहब का कारखाना और बस्ती के मजदूर मिलकर इसका परिवेश बनता है। हाजी साहब इतने भले हैं कि औरतों को सामान घर भेज देते हुए वहीं से काम करने की अनुमति देते हैं। गुजरात के गोधरा कांड और उसके बाद हुए व्यापक नरसंहार की विभीषिका को आज भी भुगतना पड़ रहा है। वे यादें त्रासद हैं तो क्या उन्हें भूल जाना चाहिए? तब तो हमें विश्व युद्धों और 1857 को भी भूलना पड़ेगा। उस विभीषिका पर लिखी कहानियों को बार-बार पढ़ना इसलिए जरूरी है कि ये रचनाएं हमें मनुष्यता के करीब ले जाती है और हमारे भीतर बैठे हिंसक उन्मादी पशु को पहचानने में मदद करती हैं।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि असगर वजाहत समय के नब्ज़ को पकड़कर चलनेवाले रचनाकार हैं| धर्म और राजनीति जब कुछ लोगों की स्वार्थ सिद्धि का उपकरण बन जाते हैं, वहाँ मनुष्यता अवरुद्ध हो जाती है| वे सांप्रदायिकता तथा उससे उपजी समस्याओं को राजनीतिज्ञों, पंडितों या मौलवियों के हवाले करने के पक्ष में नहीं है। ये सब सांप्रदायिकता की आड़ में देश एवं मनुष्यता को ध्वस्त करने पर उतारू हैं| उनके मन में मात्र सत्ता और उससे जुडी स्वार्थ चिंतन हैं|

इसीलिए ही इन वर्गों से मनुष्यता की आशा करना बेकार है। 'सांप्रदायिकता को ख़तम करने का जन सामान्य को अपने कंठों पर उठाना होगा| खासकर शिक्षित मध्य वर्ग की भूमिका इसमें अहम हो सकती है | यही वर्ग समाज में एकता और बंधुत्व को बनाए रखते हुए सांस्कृतिक सद्भाव की चेतना को जाग्रत कर सकता है। सांप्रदायिक कट्टरता को वैसे लोग समाप्त नहीं कर सकते, जिनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कोई-न-कोई हित सांप्रदायिक संघर्षों से जुड़ा हुआ होता है। संघर्ष को समाप्त करना तो एकता और सद्भाव से ही संभव है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. असगर वजाहत, सात आसमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996,पृ :154-155
2. असगर वजाहत, कैसी आगी लगाई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ : 13
3. वही,पृ :16
4. वही,पृ :17
5. वही,पृ :17
6. असगर वजाहत, पिचासी कहानियां, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, 2015, पृ:166
7. वही, पृ:279
8. असगर अली इंजीनियर, भारत में सांप्रदायिकता: इतिहास और अनुभव, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2003
9. डॉ. मनोज कुमार, सांप्रदायिकता और हिन्दी कथा साहित्य, हिन्दी साहित्य निकेतन, बीजनोर, प्रथम संस्करण-2003
10. सं. पल्लव, कथा शिखर असगर वजाहत, कौटिल्य बुक्स, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण-2025

आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से युवा पीढ़ी का व्यक्तित्व निर्माण

डॉ राकेश कुशवाहा
सहायक प्राध्यापक
कला एवं वाणिज्य विभाग
संत अलॉयसियस इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी,गौर,जबलपुर (म.प्र.)

शोध सारांश- आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से युवा पीढ़ी का व्यक्तित्व निर्माण आज के बदलते सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में अत्यंत प्रासंगिक विषय है। यह शोध सारांश इस बात पर केंद्रित है कि आध्यात्मिक शिक्षा युवाओं में नैतिक मूल्यों, आत्म-अनुशासन, सहिष्णुता एवं आत्मबोध के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान समय में भौतिकवाद और प्रतिस्पर्धा के बढ़ते प्रभाव के कारण युवाओं में तनाव, असंतुलन और मूल्यहीनता की प्रवृत्ति देखी जा रही है, जिसे आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से संतुलित किया जा सकता है। आध्यात्मिक शिक्षा व्यक्ति को केवल धार्मिक ज्ञान तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे जीवन के उद्देश्य, कर्तव्य और आत्म-साक्षात्कार की ओर प्रेरित करती है। इसके माध्यम से युवाओं में सकारात्मक सोच, धैर्य, करुणा और नेतृत्व क्षमता का विकास होता है। योग, ध्यान एवं नैतिक शिक्षाओं के समावेश से युवा अपने भीतर की क्षमताओं को पहचान पाते हैं और सामाजिक उत्तरदायित्व को बेहतर ढंग से निभाते हैं। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक शिक्षा युवा पीढ़ी के सर्वांगीण व्यक्तित्व निर्माण में एक सशक्त साधन है, जो उन्हें न केवल सफल बल्कि संवेदनशील और आदर्श नागरिक बनने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करती है।

कीवर्ड - आध्यात्मिक शिक्षा, युवा पीढ़ी, व्यक्तित्व निर्माण, नैतिक मूल्य, चरित्र विकास

प्रस्तावना-आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से युवा पीढ़ी का व्यक्तित्व निर्माण वर्तमान युग की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन गया है। आज का समाज तीव्र परिवर्तन, प्रतिस्पर्धा और भौतिकवादी प्रवृत्तियों से प्रभावित है, जिसके कारण युवाओं के जीवन में तनाव, अस्थिरता और नैतिक मूल्यों का ह्रास देखने को मिलता है। ऐसी स्थिति में आध्यात्मिक शिक्षा एक संतुलित और सकारात्मक दिशा प्रदान करती है, जो व्यक्ति के आंतरिक विकास पर बल देती है।

आध्यात्मिक शिक्षा केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह आत्मज्ञान, आत्मानुशासन, सहानुभूति, करुणा और नैतिकता जैसे गुणों का विकास करती है। यह युवाओं को अपने जीवन के उद्देश्य को समझने, सही-गलत का विवेक विकसित करने तथा समाज के प्रति उत्तरदायी बनने के लिए प्रेरित करती है। योग, ध्यान, प्रार्थना एवं नैतिक शिक्षाओं के माध्यम से युवा मानसिक शांति एवं आत्मबल प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार, आध्यात्मिक शिक्षा युवाओं के व्यक्तित्व को सुदृढ़, संतुलित और मूल्यपरक बनाती है। यह उन्हें केवल भौतिक सफलता तक सीमित नहीं रखती, बल्कि एक आदर्श, संवेदनशील और जागरूक नागरिक बनने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करती है।

वर्तमान समय में युवाओं की चुनौतियाँ - वर्तमान समय में युवाओं के सामने अनेक गंभीर चुनौतियाँ उपस्थित हैं, जैसे—तनाव, भटकाव, मूल्यहीनता, प्रतिस्पर्धा का दबाव और जीवन के उद्देश्य का अभाव। आधुनिक जीवनशैली, तकनीकी निर्भरता और सामाजिक अपेक्षाओं ने युवाओं के मन में अस्थिरता और असंतोष को बढ़ाया है। कैरियर की अनिश्चितता और सामाजिक तुलना के कारण वे मानसिक तनाव से

जूझ रहे हैं, वहीं सही मार्गदर्शन के अभाव में कई युवा भटकाव की स्थिति में पहुँच जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप नैतिक मूल्यों में गिरावट भी देखी जा रही है। ऐसी परिस्थितियों में स्वामी विवेकानंद के विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं। उन्होंने युवाओं को आत्मविश्वास, चरित्र निर्माण और लक्ष्य के प्रति समर्पण का संदेश दिया। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है— **"उठो, जागो और तब तक नहीं रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए।"** विवेकानंद का मानना था कि युवाओं को अपनी आंतरिक शक्ति को पहचानना चाहिए और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। उनके अनुसार, सशक्त चरित्र और उच्च आदर्श ही जीवन को सही दिशा प्रदान करते हैं। अतः आज के युवाओं के लिए आवश्यक है कि वे विवेकानंद के विचारों को अपनाकर अपने जीवन में संतुलन, अनुशासन और नैतिकता स्थापित करें, जिससे वे इन चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना कर सकें।

आध्यात्मिक शिक्षा की आवश्यकता-आध्यात्मिक शिक्षा आज के युग में अत्यंत आवश्यक हो गई है, क्योंकि भौतिक प्रगति के साथ-साथ मानव जीवन में तनाव, असंतुलन और मूल्यहीनता की समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। आध्यात्मिक शिक्षा व्यक्ति को केवल ज्ञान ही नहीं देती, बल्कि उसे आत्मबोध, नैतिकता और जीवन के उद्देश्य की सही दिशा भी प्रदान करती है। यह शिक्षा मनुष्य को आंतरिक शांति, धैर्य और सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक होती है।

स्वामी विवेकानंद ने युवाओं के लिए आध्यात्मिक शिक्षा को अत्यंत महत्वपूर्ण बताया है। उनके अनुसार, "उठो, जागो और तब तक नहीं रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए।" यह संदेश युवाओं को आत्मविश्वास, परिश्रम और दृढ़ संकल्प की प्रेरणा देता है। विवेकानंद जी का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण करना है—"हम ऐसी शिक्षा चाहते हैं जिससे चरित्र का निर्माण हो, मन की शक्ति बढ़े, बुद्धि का विकास हो और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके।"

आज के युवा अनेक चुनौतियों जैसे तनाव, भटकाव और प्रतिस्पर्धा का सामना कर रहे हैं। ऐसे में आध्यात्मिक शिक्षा उन्हें आत्मनियंत्रण, संयम और सही निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। यह उन्हें बाहरी परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना अपने मूल्यों पर अडिग रहने की शक्ति देती है। अतः स्पष्ट है कि आध्यात्मिक शिक्षा न केवल व्यक्ति के समग्र विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि समाज में नैतिकता, सद्भाव और संतुलन स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिकता की कमी -वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिकता की कमी एक व्यापक रूप से अनुभव की जाने वाली समस्या है। आज की शिक्षा मुख्यतः रोजगार, तकनीकी दक्षता और भौतिक सफलता पर केंद्रित हो गई है, जबकि जीवन मूल्यों, नैतिकता और आंतरिक विकास पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया जाता है। परिणामस्वरूप, विद्यार्थी ज्ञान तो अर्जित कर लेते हैं, परंतु जीवन के उद्देश्य, आत्मचिंतन और संतुलित व्यक्तित्व के निर्माण में पीछे रह जाते हैं। स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को "मनुष्य में निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति" बताया था। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना देना नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण, आत्मविश्वास और आध्यात्मिक जागरूकता विकसित करना होना चाहिए। वर्तमान प्रणाली में यह दृष्टिकोण काफी हद तक अनुपस्थित दिखाई देता है। आज के विद्यार्थियों में बढ़ता तनाव, प्रतिस्पर्धा, नैतिक मूल्यों का ह्रास और जीवन में असंतोष—ये सभी इस कमी के संकेत हैं। आध्यात्मिक शिक्षा व्यक्ति को आत्मानुशासन, सहिष्णुता, करुणा और आंतरिक शांति सिखाती है, जो एक संतुलित और स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक हैं। हालाँकि, कुछ सकारात्मक पहलें भी हो रही हैं—जैसे योग, ध्यान और मूल्य-आधारित शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल करना—परंतु यह अभी भी सीमित स्तर पर है। निष्कर्षतः, वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिकता की कमी स्पष्ट है, और इसे दूर करने के लिए शिक्षा में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का समुचित समावेश आवश्यक है, ताकि विद्यार्थी केवल सफल ही नहीं, बल्कि सजग और संवेदनशील नागरिक भी बन सकें।

युवाओं के व्यक्तित्व पर आध्यात्मिकता की कमी का प्रभाव (सकारात्मक और नकारात्मक) -आज के आधुनिक और भौतिकवादी युग में युवाओं के जीवन में आध्यात्मिकता की भूमिका पहले की तुलना में कम होती दिखाई दे रही है। आध्यात्मिकता केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन मूल्यों, आत्मानुशासन, नैतिकता और आत्मबोध से जुड़ी होती है। जब युवाओं के व्यक्तित्व में आध्यात्मिकता की कमी होती है, तो इसका प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों में दिखाई देता है।

नकारात्मक प्रभाव :-सबसे प्रमुख नकारात्मक प्रभाव यह है कि युवाओं में मानसिक तनाव, अस्थिरता और जीवन के उद्देश्य को लेकर भ्रम बढ़ जाता है। आध्यात्मिक आधार कमजोर होने से नैतिक मूल्यों में गिरावट, स्वार्थ की प्रवृत्ति और सामाजिक जिम्मेदारी से दूरी देखने को मिलती है। कई बार युवा भौतिक सफलता को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य मान लेते हैं, जिससे असंतोष और प्रतिस्पर्धा की भावना बढ़ती है। परिणामस्वरूप व्यक्तित्व में संतुलन और धैर्य की कमी हो सकती है।

सकारात्मक प्रभाव :-हालाँकि, कुछ हद तक आध्यात्मिकता की कमी का एक सकारात्मक पक्ष भी देखा जाता है। इससे युवा पारंपरिक सीमाओं से बाहर निकलकर वैज्ञानिक सोच, नवाचार और स्वतंत्र विचारधारा को अपनाते हैं। वे नई तकनीक, ज्ञान और वैश्विक दृष्टिकोण की ओर अधिक उन्मुख होते हैं। लेकिन यदि यह स्वतंत्रता नैतिक मूल्यों के साथ संतुलित न हो, तो यह दीर्घकाल में हानिकारक भी हो सकती है। प्रख्यात आध्यात्मिक चिंतक आचार्य श्रीराम शर्मा ने युवाओं के व्यक्तित्व निर्माण में आध्यात्मिकता को अत्यंत आवश्यक बताया है। उनके अनुसार, **"आध्यात्मिकता मनुष्य को भीतर से मजबूत बनाती है और उसके विचारों को श्रेष्ठ दिशा देती है।"** वे मानते थे कि यदि युवा अपने जीवन में नैतिकता, आत्मचिंतन और सेवा भावना को अपनाएँ, तो उनका व्यक्तित्व संतुलित और प्रभावशाली बन सकता है।अतः यह स्पष्ट है कि युवाओं के समग्र व्यक्तित्व विकास के लिए आध्यात्मिकता का संतुलित समावेश आवश्यक है। इससे युवा न केवल सफल बनते हैं, बल्कि जिम्मेदार, संवेदनशील और आदर्श नागरिक भी बनते हैं।

युवाओं के व्यक्तित्व निर्माण में आध्यात्मिक शिक्षा की भूमिका-युवाओं के व्यक्तित्व निर्माण में आध्यात्मिक शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। आज का युवा तकनीकी रूप से सक्षम होने के बावजूद मानसिक तनाव, मूल्यहीनता और दिशाहीनता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसे समय में आध्यात्मिक शिक्षा उसे आत्मबोध, नैतिकता और संतुलित जीवन की दिशा प्रदान करती है। आध्यात्मिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य केवल धार्मिक ज्ञान देना नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर सत्य, अहिंसा, करुणा, संयम और आत्मानुशासन जैसे गुणों का विकास करना है। यह शिक्षा युवाओं को अपने भीतर झांकने, अपनी क्षमताओं को पहचानने और जीवन के उच्च आदर्शों को अपनाने की प्रेरणा देती है। इससे उनका व्यक्तित्व संतुलित, सशक्त और जिम्मेदार बनता है।

महात्मा गांधी के विचारों में भी आध्यात्मिकता का विशेष महत्व था। उन्होंने कहा था— "शिक्षा का उद्देश्य केवल बुद्धि का विकास नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण भी है।" गांधीजी के अनुसार सच्ची शिक्षा वही है, जो व्यक्ति के मन, शरीर और आत्मा का समन्वित विकास करे। वे सत्य और अहिंसा को जीवन का आधार मानते थे और युवाओं को इन मूल्यों को अपनाने के लिए प्रेरित करते थे।

आध्यात्मिक शिक्षा युवाओं में आत्मविश्वास, धैर्य और सकारात्मक सोच का विकास करती है। यह उन्हें विपरीत परिस्थितियों में भी स्थिर रहने और सही निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। साथ ही, यह समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारी और संवेदनशीलता को भी बढ़ाती है।

इसलिए कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक शिक्षा युवाओं के व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला है। यह उन्हें केवल सफल ही नहीं, बल्कि एक श्रेष्ठ और आदर्श नागरिक बनने की दिशा में अग्रसर करती है।

नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर आध्यात्मिक प्रभाव

नैतिक एवं चारित्रिक विकास में आध्यात्मिकता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। आध्यात्मिकता व्यक्ति को केवल बाह्य ज्ञान ही नहीं देती, बल्कि उसके आंतरिक चेतना, विवेक और आत्मबोध को भी जागृत करती है। जब व्यक्ति अपने जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों—जैसे सत्य, अहिंसा, करुणा, सहिष्णुता और ईमानदारी—को अपनाता है, तब उसका नैतिक एवं चारित्रिक विकास स्वतः ही होने लगता है।

डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान भी होना चाहिए। उन्होंने कहा था कि "सच्ची शिक्षा वह है जो मनुष्य को सही और गलत में अंतर करने की क्षमता प्रदान करे।" उनके विचार में आध्यात्मिकता व्यक्ति के भीतर आत्मानुशासन, कर्तव्यनिष्ठा और मानवता के प्रति संवेदनशीलता विकसित करती है।

आध्यात्मिकता व्यक्ति को अपने कर्मों के प्रति जागरूक बनाती है और उसे आत्मनिरीक्षण के लिए प्रेरित करती है। इससे व्यक्ति अपने दोषों को पहचानकर उन्हें सुधारने का प्रयास करता है। साथ ही, आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जीवन को देखने पर व्यक्ति में सहिष्णुता और समभाव की भावना उत्पन्न होती है, जो उसके चरित्र को दृढ़ और संतुलित बनाती है।

अतः कहा जा सकता है कि आध्यात्मिकता नैतिकता और चरित्र निर्माण की आधारशिला है। यह न केवल व्यक्ति को एक अच्छा नागरिक बनाती है, बल्कि उसे समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी भी बनाती है।

आध्यात्मिक शिक्षा का स्वरूप

आध्यात्मिक शिक्षा वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने आंतरिक स्वरूप, आत्मा और जीवन के उच्च मूल्यों को समझता है। इसका उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि व्यक्ति के नैतिक, मानसिक और आत्मिक विकास को संतुलित करना है। **स्वामी विवेकानंद** के अनुसार, "शिक्षा वह है जो मनुष्य में निहित पूर्णता को प्रकट करे।" इस दृष्टि से आध्यात्मिक शिक्षा व्यक्ति को आत्मबोध, आत्मानुशासन और जीवन के उद्देश्य की समझ प्रदान करती है।

आध्यात्मिक शिक्षा के प्रमुख तत्वों में **ध्यान (Meditation)**, **योग (Yoga)** और **नैतिक शिक्षा (Moral Education)** शामिल हैं। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने मन को एकाग्र करता है और आंतरिक शांति प्राप्त करता है। योग शरीर और मन के बीच संतुलन स्थापित करता है, जिससे स्वास्थ्य और मानसिक स्थिरता बढ़ती है। वहीं नैतिक शिक्षा व्यक्ति को सत्य, अहिंसा, करुणा, ईमानदारी और सहिष्णुता जैसे मूल्यों का ज्ञान कराती है। ये तत्व मिलकर व्यक्ति को एक संतुलित और जिम्मेदार नागरिक बनाते हैं। भारतीय परंपरा में आध्यात्मिक शिक्षा का विशेष महत्व रहा है। प्राचीन गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं थी, बल्कि जीवन मूल्यों और चरित्र निर्माण पर भी बल दिया जाता था। **उपनिषद** और **भगवद्गीता** जैसे ग्रंथों में आत्मज्ञान, कर्म और धर्म की शिक्षा दी गई है। भारतीय संस्कृति में "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसे आदर्श आध्यात्मिक शिक्षा के ही प्रतिफल हैं। अतएव स्पष्ट है कि आध्यात्मिक शिक्षा का स्वरूप समग्र विकास पर आधारित है, जो व्यक्ति को केवल सफल ही नहीं, बल्कि एक अच्छा और संतुलित इंसान भी बनाती है।

व्यक्तित्व निर्माण में आध्यात्मिकता की भूमिका-आध्यात्मिकता व्यक्ति के आंतरिक विकास का आधार है, जो उसे आत्मबोध, संतुलन और उच्च जीवन मूल्यों की ओर प्रेरित करती है। स्वामी चिन्मयानन्द के अनुसार, "मनुष्य का वास्तविक विकास बाहर नहीं, भीतर से होता है।" इस दृष्टिकोण से आध्यात्मिकता व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

1. आत्म-नियंत्रण और अनुशासन-आध्यात्मिक साधनाएँ जैसे ध्यान, योग और स्वाध्याय व्यक्ति को अपनी इंद्रियों और मन पर नियंत्रण रखना सिखाती हैं। इससे आत्म-अनुशासन विकसित होता है और व्यक्ति अपने लक्ष्यों के प्रति अधिक समर्पित बनता है। स्वामी चिन्मयानन्द का मानना था कि अनुशासित मन ही सच्ची स्वतंत्रता का अनुभव कर सकता है।

2. सकारात्मक सोच-आध्यात्मिकता व्यक्ति के दृष्टिकोण को व्यापक और सकारात्मक बनाती है। यह उसे हर परिस्थिति में धैर्य और आशा बनाए रखने की शक्ति देती है। स्वामी चिन्मयानन्द ने कहा कि "विचारों की शुद्धता ही जीवन की दिशा निर्धारित करती है।" इस प्रकार सकारात्मक सोच मानसिक शांति और आत्मविश्वास को बढ़ाती है।

3. नैतिक मूल्यों का विकास-आध्यात्मिकता सत्य, अहिंसा, प्रेम और करुणा जैसे नैतिक मूल्यों को मजबूत करती है। यह व्यक्ति को केवल व्यक्तिगत लाभ नहीं, बल्कि समाज के कल्याण के लिए भी प्रेरित करती है। ऐसे मूल्य व्यक्ति के चरित्र को श्रेष्ठ बनाते हैं और उसे समाज में आदर्श स्थापित करने योग्य बनाते हैं।

4. नेतृत्व क्षमता-आध्यात्मिक व्यक्ति में विनम्रता, सहनशीलता और दूरदर्शिता होती है, जो एक अच्छे नेता के गुण हैं। वह दूसरों को प्रेरित करता है और सामूहिक हित को प्राथमिकता देता है। स्वामी चिन्मयानन्द के अनुसार, "सच्चा नेता वही है जो पहले स्वयं को जीतता है, फिर संसार को दिशा देता है।"

आध्यात्मिक शिक्षा का युवा पीढ़ी पर प्रभाव-आध्यात्मिक शिक्षा का युवा पीढ़ी पर गहरा और सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आज के प्रतिस्पर्धात्मक और तनावपूर्ण जीवन में यह शिक्षा युवाओं को आंतरिक संतुलन और जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझने में सहायता प्रदान करती है। सबसे पहले, **मानसिक शांति और तनाव में कमी** आध्यात्मिक शिक्षा का प्रमुख प्रभाव है। ध्यान, योग और आत्मचिंतन जैसी प्रक्रियाएँ मन को स्थिर करती हैं और चिंता, भय तथा अवसाद को कम करती हैं। इससे युवा अपने जीवन में अधिक संतुलित और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं।

दूसरा, यह शिक्षा **निर्णय लेने की क्षमता में सुधार** करती है। आध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर युवा सही और गलत के बीच अंतर करना सीखते हैं। जब व्यक्ति के भीतर नैतिक स्पष्टता होती है, तो वह कठिन परिस्थितियों में भी विवेकपूर्ण और सही निर्णय ले पाता है। इससे उनके व्यक्तित्व में आत्मविश्वास और दृढ़ता का विकास होता है।

तीसरा, आध्यात्मिक शिक्षा **सामाजिक जिम्मेदारी का विकास** करती है। यह युवाओं में करुणा, सहानुभूति और सेवा भाव को बढ़ाती है। वे केवल अपने व्यक्तिगत हित तक सीमित नहीं रहते, बल्कि समाज और राष्ट्र के कल्याण के प्रति भी सजग होते हैं। इस प्रकार वे एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में समाज के विकास में योगदान देते हैं।

अंततः, कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक शिक्षा युवा पीढ़ी के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह न केवल उनके मानसिक और बौद्धिक विकास को सुदृढ़ करती है, बल्कि उन्हें नैतिक और सामाजिक रूप से भी सशक्त बनाती है, जिससे वे एक संतुलित और सार्थक जीवन जी सकें।

निष्कर्ष :-आध्यात्मिक शिक्षा का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह केवल धार्मिक या आध्यात्मिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व विकास का एक महत्वपूर्ण आधार है।आध्यात्मिक शिक्षा युवाओं के मानसिक, नैतिक और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह उन्हें आत्म-चेतना, आत्म -नियंत्रण और सकारात्मक सोच की दिशा में प्रेरित करती है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्य को समझता है और सही-

गलत के बीच अंतर करने की क्षमता विकसित करता है। इसके अतिरिक्त, आध्यात्मिक शिक्षा तनाव और चिंता को कम करने में सहायक होती है, जिससे मानसिक शांति और संतुलन बना रहता है। यह युवाओं में सहिष्णुता, करुणा, ईमानदारी और सामाजिक जिम्मेदारी जैसे मूल्यों का विकास करती है। परिणामस्वरूप, वे न केवल अपने जीवन में सफलता प्राप्त करते हैं, बल्कि समाज के प्रति भी उत्तरदायी नागरिक बनते हैं। आज के आधुनिक और प्रतिस्पर्धात्मक युग में, जहाँ भौतिकवाद और मूल्यहीनता तेजी से बढ़ रही है, वहाँ आध्यात्मिक शिक्षा की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है। यह व्यक्ति को आंतरिक शक्ति प्रदान करती है, जिससे वह जीवन की चुनौतियों का सामना धैर्य और विवेक के साथ कर सकता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि आध्यात्मिक शिक्षा केवल व्यक्तिगत विकास के लिए ही नहीं, बल्कि एक स्वस्थ, संतुलित और मूल्य-आधारित समाज के निर्माण के लिए भी अत्यंत आवश्यक है। इसे शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए, ताकि आने वाली पीढ़ी नैतिक, संवेदनशील और जागरूक नागरिक बन सके।

15. सुझाव (Suggestions)

1. वर्तमान समय में शिक्षा प्रणाली को अधिक समग्र और मानवीय बनाने के लिए उसमें आध्यात्मिक तत्वों का समावेश अत्यंत आवश्यक है। सबसे पहले, शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिक विषयों को शामिल किया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों को केवल ज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवन के उद्देश्य, आत्मबोध और आंतरिक शांति का भी अनुभव होगा। आध्यात्मिक शिक्षा व्यक्ति को स्वयं के प्रति जागरूक बनाती है और उसे सही-गलत में अंतर समझने की क्षमता प्रदान करती है।

2. दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव यह है कि विद्यालयों में योग एवं ध्यान का नियमित अभ्यास कराया जाए। योग और ध्यान न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करते हैं, बल्कि मानसिक तनाव को कम करके एकाग्रता और स्मरण शक्ति को भी बढ़ाते हैं। आज के प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में छात्र तनाव और चिंता का सामना करते हैं, ऐसे में योग और ध्यान उन्हें संतुलित और शांत रहने में सहायता करते हैं।

3. नैतिक शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। नैतिक मूल्यों के अभाव में शिक्षा अधूरी मानी जाती है। ईमानदारी, सहानुभूति, अनुशासन और जिम्मेदारी जैसे गुण व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करते हैं। यदि विद्यालय स्तर से ही इन मूल्यों का विकास किया जाए, तो समाज में सकारात्मक परिवर्तन संभव है। अंत: इन सुझावों के माध्यम से शिक्षा केवल रोजगार प्राप्त करने का साधन न होकर, एक सशक्त और संस्कारित व्यक्तित्व के निर्माण का माध्यम बन सकती है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. Swami Vivekananda विवेकानन्द, स्. (2006). *व्यक्तित्व का विकास*. रामकृष्ण मठ।
2. Swami Vivekananda विवेकानन्द, स्. (2006). *शिक्षा*. रामकृष्ण मठ।
3. Sri Ram Sharma Acharya शर्मा, श्. रा. (1998). *व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ*. अखण्ड ज्योति संस्थान।
4. Sri Ram Sharma Acharya शर्मा, श्. रा. (2005). *व्यक्तित्व परिष्कार की साधना*. युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि।
5. Jagadguru Shri Kripalu Ji Maharaj कृपालु जी महाराज, ज. (1955). *प्रेम रस सिद्धांत*. राधा गोविन्द समिति।
6. Swami Chinmayananda चिन्मयानन्द, स्. (2002). *गीता का ज्ञान (श्रीमद्भगवद्गीता व्याख्या)*. सेंट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट।
7. Mahatma Gandhi गाँधी, म. क. (1951). *मानव निर्माण में शिक्षा का योगदान*. नवजीवन प्रकाशन।
8. Swami Sivananda शिवानन्द, स्. (2000). *जीवन निर्माण के सूत्र*. द डिवाइन लाइफ सोसाइटी।
9. Sarvepalli Radhakrishnan राधाकृष्णन, स. (1999). *आध्यात्मिकता और व्यक्तित्व विकास*. राजपाल एण्ड सन्स।
10. Syed Amjad Hussain हुसैन, स. अ. (2025). *बिहार और सूफीवाद*. राजमंगल प्रकाशन।

भारत में शिक्षक – शिक्षा की नवीन धारणा

डॉ.उमा बणिचुल

'शिक्षक' शब्द ' शिक्ष ' धातु से बना है इसका अर्थ सीखना/सिखाना है I शिक्षक शब्द का पर्यायवाची शब्द है– ' गुरू ', ' अध्यापक ' , 'मार्गदर्शक' , 'आचार्य' , 'शिक्षणकर्ता' , 'प्रशिक्षक' आदि I समाज निर्माण में गुरू की अहम भूमिका होता है I सही गलत पहचान करा कर दिशा दिखाकर मार्गदर्शक बना है I ज्ञान प्राप्ति के लिए मार्गदर्शक के रूप में शिक्षक की आवश्यकता अधिक है I विषय में पारंगत व्यक्ति ही उसी विषय का विश्लेषण अच्छे तरह से कर सकता है I विषय में पारंगत होने के लिए अध्ययनशील और गहरी समझ होना आवश्यक है I इस परिप्रेक्ष्य में स्वामी हर्षानन्द का कहना है कि – '' एक सतत अध्ययनशील विद्यार्थी ही एक सुयोग्य शिक्षक हो सकता है I ''[१] इस कथन के माध्यम से स्वामी जी ने सुयोग्य शिक्षकों के अध्ययनशीलता के बारे में दर्शाया है I एक आदर्श शिक्षक अच्छे और श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण होता है I शिक्षक योजनानुसार समय का सदुपयोग करके विद्यार्थियों को सही शिक्षा, प्रेरणा, सहनशीलता व्यवहार में परिवर्तन तथा शुद्धता के साथ मार्गदर्शन प्रदान करें ताकि उनके भविष्य को उज्ज्वल बनाने के साथ एक बेहतर इंसान बना सकें I स्वामी हर्षानन्द जी ने कहा है –" उसे प्रभावी ढंग से इस ज्ञान को प्रदान करना चाहिए I विद्यार्थी की क्षमता के अनुरूप उसे अपनी शिक्षण पद्धति को परिवर्तन करने में बहुत सक्षम होना चाहिए एवं शुद्धता तथा पूर्णता के साथ पढ़ना चाहिए I परंतु इस प्रक्रिया में उसे प्रत्यक्ष रूप से शिक्षण की अपेक्षा मार्गदर्शन अधिक करना चाहिए I उसका उद्देश्य अपने छात्र के मन को प्रदीप्त करना होना चाहिए , न कि उसे रट्टू तोता बनाने का "[२]इससे स्पष्ट होता है कि श्रेष्ठ गुणो युक्त अध्यापक ही आदर्श शिक्षक बन सकता है I क्रोध , अहंकार ,लोभ नकारात्मक सोच एवं कक्षा के लिए पारिश्रमिक भावना से हट कर नैतिकता से जुड़ते हुए शिक्षा प्रदान करना चाहिए स्वामी जी गुरू के बारे में कहा है कि -"उसमें विद्यार्थियों के कल्याण की सच्ची भावना होनी चाहिए I उनके साथ उनका संबंध कक्षा में पढ़ाने तक ही सीमित नहीं होना चाहिए I वास्तव में हमारे प्राचीन गुरू अपने शिष्यों को अपने स्वयं के बच्चों के समान ही समझते थे Iयह आदर्श आधुनिक भारतीय शिक्षकों के लिए भी अनुकरणीय है I"इस कथन शिक्षक का नैतिक एवं मानवीय गुणों दर्शाता है I हृदय की कमलता को जितने के लिए सुमधुर बाणी की आवश्यकता होती है I शिक्षक की बाणी बच्चों को प्रभावित करती है I कबीर जी की एक दोहा –

ऐसी बाणी बोलिए , मन की आपा खोय
औरन को शीतल करे,आपहुं शीतल होय II

इस बात पर ध्यान देते हुए शिक्षक को अपना हाव – भाव, बोलने का लहजा को नियंत्रण में रखते हुए छात्रों के साथ पेश आना चाहिए I

जीवन को सार्थक बनाने के लिए जिस प्रक्रिया ज्ञान, कौशल और मूल्यों को प्रदान करने में सक्षम बनती है वह शिक्षा है Iशिक्षा ऐसा साधन है जो उज्ज्वल भविष्य को सुनिश्चित करती है I स्वतंत्रता के बाद देश के शिक्षाशास्त्रियों, राजनीतियों एवं विशेष व्यक्तिगण ने 'शिक्षक – शिक्षा' को नवीन रूप प्रदान करने के लिए प्रयास किए और कर रहे है I शिक्षक – शिक्षा की नवीन धारणा के निर्माण में विभिन्न कारकों साथ दिए हैं I अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री किलपैट्रिक के अनुसार – "सर्कस में काम करने वाले नाटों और पशुओं को प्रशिक्षण दिया जाता है,पर शिक्षकों को शिक्षा दी जाति है"[३]भारत की लोकतांत्रिय मान्यताओं के अनुकूलता बनाए रखने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण की धारणा में परिवर्तन किया जाना चाहिए I भारत में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार करने के लिए प्रशिक्षण में सुधार करना आवश्यक है I शिक्षक – प्रशिक्षण तुलना में शिक्षक – शिक्षा अधिक व्यापक है I

रामकृष्णन कमीशन शिक्षक प्रशिक्षण धारणा में कहा है कि " सच्ची शिक्षा केवल कुछ पाठों को पढ़ना और स्मरण करना ही नहीं है, वरन जीवनयापन एवं उद्देश्यपूर्ण कार्य में भाग लेना भी है "[५] शिक्षक – शिक्षा जीवन के सब क्षेत्रों को प्रभावित करने के कारण कला/ विज्ञान शिक्षण के साथ डिजिटल उपकरणों और आधुनिक पद्धतियों उपयोग करना चाहिए I शिक्षा क्षेत्र में राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 एक क्रन्तिकारी बदलाव हुआ है I 10+2 संरचना के वदले नई शैक्षणिक सरंचना 5+3+3+4 लाया गया I ये 4 अवस्था है - फाउंडेशनाल स्टेज,प्रिपरेटरी स्टेज, मिडिल स्टेज एवं सेकेंडरी स्टेज I फाउंडेशनाल स्टेज में प्री – स्कूल/ अंगनवाड़ी/ बालवाटिका के साथ कक्षा 1,2 को मिलाया गया I इस अवस्था 3 से लेकर 8 आयु तक बच्चों के लिए है I प्रिपरेटरी स्टेज में 3 से लेकर 5 कक्षा तक रखा गया I इस अवस्था में 8 से लेकर 11 आयु तक बच्चों के लिए है I मिडिल स्टेज 6 से लेकर 8 कक्षा तक रखा गया I इस अवस्था में 11 से लेकर 14 आयु तक बच्चों के लिए है I सेकेंडरी स्टेज 9 से लेकर 12 तक रखा गया I इस अवस्था में 14 से लेकर 18 आयु तक बच्चों के लिए है I प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा या स्थानिय भाषा उपयोग किया क्या I व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया गया I परीक्षा के बजाय समझ और व्यवहारिक ज्ञान को बताया गया I आब स्कूल स्तर पर कला, विज्ञान और वाणिज्य के बीच कड़ी विभाजन रेखा नहीं होगी I छात्रों बहु विषयों से अपना चयनित विषय को प्राप्त करने में सक्षम होंगे I मल्टीपल एंट्री/ एग्जिट होने का विकल्प दिया गया I क्रेडिटस को स्टोर करने और डिग्री के लिए उपयोग करने की सुविधा दिया गया I आवश्यक विषयों, कौशलों और क्षमताओं का पाठ्यक्रम में समावेशन के पर ध्यान दिया गया I इस शिक्षा नीति समग्र विकास (मानसिक,भावात्मक और क्रियात्मक) की बात करती है I पर्यावरण के साथ अवधारणाओं का जुड़ाव स्थापित करने के लिए भी कहेता है I छात्रों का मूल्यांकन के लिए विभिन्न तरीकों का उपयोग (रोल प्ले, पोर्टफोलियों आदि) करके गतिविधियों द्वारा करने पर बल दिया गया I

शिक्षार्थियों के अद्वितीय क्षमताओं को प्रतिबिंबित करने में शिक्षक का हाथ रहता है I सुगठित व्यक्तित्व, पूर्ण चरित्र निर्माण के लिए अपना प्रयास के साथ शिक्षक और शिक्षा आवश्यक है I अतः कहा जा सकता है चरित्र निर्माण में शिक्षक – शिक्षा परिपूरक है I

****

संदर्भ सूची :-

1. स्वामी हर्षानन्द ,विद्यार्थी- शक्ति कितनी उपयोगी , पृ.-८
2. स्वामी हर्षानन्द ,विद्यार्थी- शक्ति कितनी उपयोगी , पृ.-८
3. पी.डी. पाठक , भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ ,पृ.-३३४
4. पी.डी. पाठक , भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ ,पृ.-३३५

अकेलेपन का सौंदर्यशास्त्र: समकालीन हिंदी कविता में आधुनिक मनुष्य की आंतरिक दुनिया

डॉ.सलीजा ए पी
असिस्टंट प्रोफेसर
PG & Research department of Hindi
Govt.arts &science College, Kozhikode, keralam

प्रस्तावना: मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य की संवेदनाएँ और उसके अनुभव भी निरंतर बदलते रहे हैं। आधुनिक समय में विज्ञान, तकनीक, शहरीकरण और वैश्वीकरण ने मनुष्य के जीवन को अभूतपूर्व सुविधाएँ तो दी हैं, किंतु इसके साथ ही एक गहरा मानसिक और भावनात्मक संकट भी उत्पन्न किया है। इस संकट का एक प्रमुख रूप है—अकेलापन। आज का मनुष्य भीड़ में रहते हुए भी भीतर से अकेला होता जा रहा है। परिवारों का विघटन, संबंधों का औपचारिक होना, सामाजिक प्रतिस्पर्धा और डिजिटल जीवन शैली ने मनुष्य के भीतर एक ऐसी रिक्तता पैदा की है जो उसकी आत्मा को निरंतर कचोटती रहती है।

साहित्य, विशेष रूप से कविता, हमेशा से मनुष्य की अंतरतम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। समकालीन हिंदी कविता में आधुनिक मनुष्य के इसी अकेलेपन, उसकी आंतरिक बेचैनी और उसके आत्मिक संघर्ष का गहन चित्रण मिलता है। यह अकेलापन केवल दुख या पीड़ा का अनुभव नहीं है, बल्कि कई बार यह एक रचनात्मक और चिंतनशील स्थिति भी बन जाता है। इसी कारण समकालीन कवियों ने अकेलेपन को केवल एक नकारात्मक अनुभव के रूप में नहीं, बल्कि एक सौंदर्यात्मक और दार्शनिक अनुभव के रूप में भी प्रस्तुत किया है।

इस लेख का उद्देश्य यह समझना है कि समकालीन हिंदी कविता में अकेलेपन का सौंदर्यशास्त्र किस प्रकार निर्मित होता है और आधुनिक मनुष्य की आंतरिक दुनिया को किस प्रकार व्यक्त करता है।

आधुनिक जीवन और अकेलेपन की अनुभूति

आधुनिक जीवन की गति अत्यंत तीव्र हो चुकी है। महानगरों की चकाचौंध, आर्थिक प्रतिस्पर्धा और उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनुष्य को निरंतर व्यस्त और चिंतित बना दिया है। आज व्यक्ति के पास भौतिक संसाधनों की कमी नहीं है, परंतु भावनात्मक संबंधों की गर्माहट धीरे-धीरे कम होती जा रही है। पहले संयुक्त परिवारों और सामुदायिक जीवन के कारण मनुष्य अकेलेपन से अपेक्षाकृत दूर था। परिवार, पड़ोस और सामाजिक संबंध उसके जीवन को एक प्रकार की स्थिरता और आत्मीयता प्रदान करते थे। किंतु आधुनिक शहरी जीवन में यह सामूहिकता टूटने लगी है। व्यक्ति अब एक छोटे से फ्लैट में सीमित जीवन जीता है, जहाँ उसके पास समय भी कम है और संवाद के अवसर भी सीमित हैं।

डिजिटल युग ने इस स्थिति को और जटिल बना दिया है। सोशल मीडिया और आभासी संवाद ने लोगों को बाहरी रूप से जोड़ तो दिया है, परंतु वास्तविक मानवीय संबंधों की गहराई कहीं-न-कहीं कम होती जा रही है। परिणामस्वरूप आधुनिक मनुष्य के भीतर एक गहरी आंतरिक रिक्तता पैदा हो रही है। समकालीन हिंदी कवियों ने इस बदलती सामाजिक संरचना और मानसिक स्थिति को बड़ी सूक्ष्मता से पहचाना है। उनकी कविताओं में आधुनिक जीवन की भागदौड़, मनुष्य की थकान, संबंधों की दूरी और अकेलेपन की पीड़ा बार-बार सामने आती है।

अकेलेपन का सौंदर्यशास्त्र : एक अवधारणा

सामान्यतः अकेलापन एक नकारात्मक अनुभव माना जाता है, क्योंकि यह मनुष्य को दुख, निराशा और असुरक्षा की भावना से भर देता है।

- **मानसिक अकेलापन**
- **सामाजिक अकेलापन**
- **अस्तित्वगत अकेलापन**

इन तीनों स्तरों के माध्यम से कवि आधुनिक मनुष्य की आंतरिक दुनिया को व्यक्त करता है। इस प्रक्रिया में अकेलापन केवल एक भावनात्मक स्थिति नहीं रह जाता, बल्कि वह एक कलात्मक अनुभव बन जाता है।

समकालीन हिंदी कविता में अकेलेपन की अभिव्यक्ति

समकालीन हिंदी कविता में अनेक कवियों ने आधुनिक जीवन की इस अकेलेपन भरी स्थिति को अपने काव्य का विषय बनाया है। उनकी कविताओं में शहर की भीड़, खाली कमरों की खामोशी, टूटते संबंध और मनुष्य की आंतरिक बेचैनी के अनेक चित्र दिखाई देते हैं।

पहले ज़माने की कविताओं में कई कवियों ने अकेलेपन की खूबसूरती पर या तनाव पर कविता लिखी है I **रघुवीर सहाय** की कविता *"लोग भूल गए हैं"* में आधुनिक मनुष्य के भीतर बढ़ती दरी और अकेलेपन की स्थिति दिखाई देती है। इसी प्रकार **केदारनाथ सिंह** की प्रसिद्ध कविता *"अकेला आदमी"* में व्यक्ति के भीतर के एकांत और समाज से कटाव की अनुभूति को गहराई से व्यक्त किया गया है। **कुँवर नारायण** की कविताओं में भी आधुनिक जीवन की भीड़ के बीच मनुष्य के भीतर के एकांत का मार्मिक चित्रण मिलता है। वहीं **धूमिल** की कविताओं में व्यवस्था और समाज के प्रति असंतोष के कारण उत्पन्न मानसिक अकेलेपन की झलक मिलती है।

महादेवी वर्मा ने जो अकेलापन दर्ज की है, वह बेहद अलग था, उनकी कविताओं में नारी के अंतर्मन की गहरी भावनाएँ, पीड़ा और अकेलापन दिखाई देता है। उनकी कविता केवल प्रेम या व्यक्तिगत भावनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें नारी की स्वतंत्र चेतना, आत्मसम्मान और सामाजिक बंधनों से संघर्ष भी व्यक्त होता है। उनकी रचनाओं में नारी को केवल प्रेमिका या सहायक पात्र के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र और संवेदनशील व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनकी कविताओं में अकेलापन, आत्मसंवाद, संवेदनशीलता और आध्यात्मिकता के भाव प्रमुख हैं। महादेवी वर्मा ने अपनी कविताओं में *दीप, तारा, पथिक, अंधकार, कमल, नयन* जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया है, जो नारी के दर्द, आशा, संघर्ष और आत्मिक खोज को दर्शाते हैं। उनके काव्य में नारी के भीतर छिपी हुई शक्ति और उसकी पहचान की खोज भी दिखाई देती है।

महादेवी वर्मा का काव्य नारी की भावनात्मक दुनिया, उसकी स्वतंत्र पहचान और समाज में उसके स्थान को गहराई से प्रस्तुत करता है। उनकी कविताएँ केवल साहित्यिक सौंदर्य ही नहीं, बल्कि नारी चेतना और मानवीय संवेदनाओं का भी सशक्त चित्रण करती हैं। इस से अलग समकालीन कविताओं से अकेलेपन दर्ज करने वाली कई उदहारण लेने पर हम देख सकते है I **अंजुम शर्मा** की कविता – जिस रोज़ अकेला होता है आदमी; की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है जिस रोज़ अकेला होता है आदमी

तो वह अकेला नहीं नितांत अकेला होता है
अकेले में अकेला
भीड़ में और अधिक अकेला
जिस रोज़ होता है आदमी सबसे ज़्यादा अकेला
उस रोज़ कोई दरवाज़े के कान नहीं उमेठता
न ही फोन घनघनाता है पल भर
उस रोज़ संदेशों की आँख लग जाती है
मौन का गला नहीं खुलता

इस के ज़रिये अंजुम शर्मा जी अकेलेपन की तनाव को उसकी कठोर अवस्था को व्यक्त किया है कैलाश वाजपेयी जी ने अपनी कविता 'भटका हुआ अकेलेपन' में अपनी अकेलेपन की घबराहट को उसी घबराहट के साथ व्यक्त किया है -

यह अधनंगी शाम और
यह भटका हुआ/अकेलापन
मैंने फिर घबराकर अपना शीशा तोड़ दिया।
राजमार्ग—कोलाहल—पहिए
काँटेदार रंग गहरे/यंत्र-सभ्यता चूस-चूसकर
फेंके गए अस्त चेहरे
झाग उगलती खुली खिड़कियाँ/सड़े गीत सँकरे ज़ीने
किसी एक कमरे में मुझको
बंद कर लिया फिर मैंने

सुधा अरोड़ा बताती है कि अकेली औरत का हँसना किसी को सुहाता नही है , किसी को अच्छा नही लगेगा कि एक अकेली औरत बिना किसी के सहारे हंसी ख़ुशी के साथ जी सकती है, वे कहती है -

" अकेली औरत/ख़ुद से ख़ुद को छिपाती है।
होंठों के बीच क़ैद पड़ी हँसी को खींचकर
जबरन हँसती है
और हँसी बीच रास्ते ही टूट जाती है...
अकेली औरत का हँसना,
नहीं सुहाता लोगों को।"

रवीन्द्र स्वप्निल त्रिपाठी ने एकेलेपन को रुमाल बताया है और कहते है कि-

"अकेलापन एक रूमाल है
जो मेरे हाथों से गिरकर अधखुले दरवाज़े पर पड़ा है
यादों के फ़र्श पर उसकी सलवटें धूल जैसी बन गईं
अकेलापन कमरे में भरी हवा में धुला है
मैं आकर अपने फ्लैट पर साँस लेता हूँ"

निधीश त्यागी ने अपने अँधेरे अकेले में नमक कविता में बताते है -

"जैसे मौसम पहनता है पृथ्वी
उसकी प्रकृति को पहनना था उसे
देर रात वह अपनी साड़ी
उतार तह बनाती है
उसे छूती है सहलाती है
देर रात वह अपना शृंगार
उतारती है जो किया गया था
जा चुके पल और प्यार के लिए"

सोम प्रभ की कविता 'मै अकेला नहीं था' में कवि अपने आप को अकेला माने के लिए तैयार नहीं है , वे कहते है पर मैं उसमें मलहम नहीं भर सकता हूँ

मैं अकेला नहीं हूँ/बहुत-से हैं मेरी तरह
जिनके पास एक ही विकल्प है
कि हम अपनी देह के भीतर चले जाएँ
और नींद में जागते रहें

सोम प्रभ जी अपने आप को अकेला मानने के लिए तैयार नही है तो त्रिलोचन जी अपने आप को अकेला ही मानकर कहते है कि मुझसे अकेला नही रहा जाता -

"आज मैं अकेला हूँ/अकेले रहा नहीं जाता
जी व न मि ला है य ह/र त न मि ला है य ह
धूल में/कि/फूल में/मिला है
तो/मिला है यह/मौ ल-तो ल इ स का
अ के ले क हा न हीं जा ता"

इन कविताओं में अक्सर ऐसे बिंब मिलते हैं जो आधुनिक जीवन की विडंबना को उजागर करते हैं—जैसे खाली सड़कें, बंद दरवाज़े, मोबाइल स्क्रीन की रोशनी में डूबा हुआ चेहरा, या देर रात तक जागता हुआ शहर।

ये सभी बिंब आधुनिक मनुष्य के अकेलेपन की ओर संकेत करते हैं।कई कवियों ने यह भी दिखाया है कि आधुनिक जीवन में मनुष्य का संवाद धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। लोग एक-दूसरे के साथ रहते हुए भी भावनात्मक रूप से दूर होते जा रहे हैं। इस स्थिति को कविता में अत्यंत मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है

समकालीन कवियों की दृष्टि में अकेलापन केवल सामाजिक परिस्थिति का परिणाम नहीं है, बल्कि यह आधुनिक मनुष्य की आंतरिक स्थिति भी है। मनुष्य अपने ही विचारों, स्मृतियों और इच्छाओं के बीच एक ऐसे संसार में रहता है जहाँ उसे स्वयं को समझने का अवसर मिलता है।

अकेलापन और आत्मचिंतन :-समकालीन हिंदी कविता में अकेलापन कई बार आत्मचिंतन की स्थिति बन जाता है। जब मनुष्य भीड़ से दूर होकर स्वयं के साथ होता है, तब उसे अपने भीतर झाँकने का अवसर मिलता है। इस दृष्टि से अकेलापन केवल दुखद अनुभव नहीं है, बल्कि यह आत्मबोध की प्रक्रिया भी बन सकता है। कई कवियों ने अपनी कविताओं में यह दिखाया है कि अकेलेपन के क्षणों में मनुष्य अपने जीवन, अपने संबंधों और अपने अस्तित्व के बारे में गंभीरता से सोचता है।

यह आत्मचिंतन कभी-कभी जीवन के नए अर्थों को भी उद्घाटित करता है। मनुष्य अपने भीतर छिपी संवेदनाओं और संभावनाओं को पहचानने लगता है। इस प्रकार अकेलापन एक प्रकार की रचनात्मक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है।

शहर और अकेलेपन का संबंध-समकालीन हिंदी कविता में शहर का चित्रण अक्सर अकेलेपन से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। महानगरों की भीड़, ऊँची इमारतें, व्यस्त सड़कें और तेज़ रफ्तार जीवन—ये सभी आधुनिकता के प्रतीक हैं, किंतु इनके बीच मनुष्य की भावनात्मक स्थिति कई बार अत्यंत एकाकी हो जाती है।

कई कविताओं में शहर को एक ऐसे स्थान के रूप में चित्रित किया गया है जहाँ हजारों लोग रहते हैं, परंतु प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने संसार में बंद है। पड़ोसी एक-दूसरे को पहचानते तक नहीं, और संबंध धीरे-धीरे औपचारिक होते जाते हैं। इस प्रकार शहर आधुनिक जीवन की उस विडंबना का प्रतीक बन जाता है जिसमें भीड़ के बीच अकेलापन जन्म लेता है।

भाषा, बिंब और प्रतीक-समकालीन हिंदी कविता में अकेलेपन की अभिव्यक्ति के लिए कवि विशेष प्रकार की भाषा और बिंबों का प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा अक्सर सरल, संवेदनशील और आत्मीय होती है, जिससे पाठक सीधे उस अनुभव से जुड़ जाता है। कई कविताओं में प्रकृति के बिंबों का भी प्रयोग किया गया है—जैसे खाली आकाश, सूनी शाम, या ठंडी हवा। ये बिंब मनुष्य की आंतरिक स्थिति को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त करते हैं।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक जीवन से जुड़े बिंब—जैसे मोबाइल फोन, कंप्यूटर स्क्रीन, मेट्रो स्टेशन, या बंद कमरा—भी कविता में दिखाई देते हैं। ये बिंब आधुनिक जीवन की वास्तविकता को सामने लाते हैं और अकेलेपन की अनुभूति को और अधिक गहरा बनाते हैं।

अकेलेपन का सकारात्मक पक्ष-हालाँकि अकेलापन अक्सर दुख और पीड़ा से जुड़ा होता है, परंतु समकालीन हिंदी कविता में इसका एक सकारात्मक पक्ष भी दिखाई देता है। कई कवियों ने अकेलेपन को रचनात्मकता, स्वतंत्रता और आत्मबोध के रूप में देखा है। अकेलेपन के क्षणों में मनुष्य अपने भीतर की आवाज़ को सुन सकता है। वह अपने विचारों और भावनाओं के साथ ईमानदारी से संवाद कर सकता है। यही कारण है कि कई कवियों के लिए अकेलापन एक प्रकार की आत्मिक मुक्ति का अनुभव बन जाता है। इस दृष्टि से अकेलापन केवल आधुनिक जीवन की त्रासदी नहीं है, बल्कि यह मनुष्य की रचनात्मक और आध्यात्मिक संभावनाओं का भी संकेत देता है

निष्कर्ष-समकालीन हिंदी कविता में आधुनिक मनुष्य के अकेलेपन की अनुभूति अत्यंत महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभरकर सामने आती है। यह अकेलापन केवल सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम नहीं है, बल्कि यह आधुनिक जीवन की जटिलताओं और मनुष्य की आंतरिक संवेदनाओं से भी गहराई से जुड़ा हुआ है

कवियों ने इस अनुभव को अत्यंत संवेदनशील और कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है। उनकी कविताओं में अकेलापन केवल दुख या निराशा का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह आत्मचिंतन, रचनात्मकता और आत्मबोध की प्रक्रिया भी बन जाता है

इस प्रकार समकालीन हिंदी कविता आधुनिक मनुष्य की आंतरिक दुनिया को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनती है। अकेलेपन का यह सौंदर्यशास्त्र हमें यह सिखाता है कि जीवन की जटिलताओं और चुनौतियों के बीच भी मनुष्य अपनी संवेदनशीलता और रचनात्मकता को बनाए रख सकता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी कविता में अकेलेपन की अभिव्यक्ति आधुनिक समय की एक गहरी सांस्कृतिक और मानवीय सच्चाई को सामने लाती है। यह कविता हमें अपने भीतर झाँकने और अपने अस्तित्व के अर्थ को समझने के लिए प्रेरित करती है।

****

संदर्भ

1. आधुनिकता और हिंदी साहित्य — नामवर सिंह
2. हिंदी कविता का विकास — रामविलास शर्मा
3. आधुनिक हिंदी कविता: एक परिप्रेक्ष्य — विश्वनाथ त्रिपाठी

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

सूर्यबाला के 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास में स्त्री स्वत्व की विश्लेषण

श्रीलक्ष्मी. वी
(शोधार्थी)
महाराजा कॉलेज, एर्नाकुलम-केरल

डॉ. अंजली. एस
(शोध निर्देशिका)
सहायक आचार्या,स्नातकोत्तर हिंदी विभाग एवं शोध केंद्र
महाराजा कॉलेज एर्नाकुलम -केरल
ई मेल:sreevijayalashmi2540@gmail.com

समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श की जो सशक्त धारा विकसित हुई है, उसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है सूर्यबाला का उपन्यास 'मेरे संधिपत्र' । हिंदी साहित्य के विकासक्रम में स्त्री-जीवन आरंभ से ही कथा-साहित्य का केंद्रीय विषय रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल, विशेषतः सन् 1960 के बाद, हिंदी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श की जो नई धारा विकसित हुई, उसमें स्त्री का 'स्वत्व' केंद्र में आया। अब वह केवल पीड़िता या त्यागमूर्ति नहीं रही, बल्कि अपने अस्तित्व, अधिकार और आत्मसम्मान के प्रति सजग व्यक्तित्व के रूप में उभरी। इसी ऐतिहासिक -सामाजिक पृष्ठभूमि में सूर्यबाला का उपन्यास 'मेरे संधिपत्र' विशेष महत्व रखता है। यह उपन्यास स्त्री-जीवन की बाह्य समस्याओं से अधिक उसके आंतरिक संसार का अन्वेषण करता है। यहाँ नारी मन की सूक्ष्मतम भावनाएँ, उसकी कामनाएँ, उसके अंतर्द्वंद्व और उसकी मौन आकांक्षाएँ कथा के केंद्र में हैं। उपन्यास का शीर्षक 'संधिपत्र' अपने आप में प्रतीकात्मक है। संधि का अर्थ है समझौता और पत्र का अर्थ है लिखित दस्तावेज। मानो स्त्री का जीवन स्वयं एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें उसने समय-समय पर परिस्थितियों से संधि की है। किंतु यह संधियाँ उसकी कमजोरी का नहीं, बल्कि उसकी परिस्थितिजन्य विवेकशीलता और संबंधों के प्रति उसकी प्रतिबद्धता का प्रतीक हैं।

नायिका शिवा का जीवन 'मेरे संधिपत्र' उपन्यास का मुख्य धुरी है। शिवा एक शिक्षित, संवेदनशील और आत्मसम्मान से युक्त स्त्री है| विवाहोपरांत वह एक ऐसे पारिवारिक साँचे में ढलने को बाध्य हो जाती है जहाँ उसे पत्नी, सौतेली बेटियों की माँ और गृहिणी की भूमिकाओं को संतुलित करना पड़ता है। उसके जीवन में बाह्य रूप से कोई अभाव नहीं है| पति का सम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक सुरक्षा उसे प्राप्त है। फिर भी उसके भीतर निरंतर एक गहरा अंतर्द्वंद्व चलता रहता है। वह पहचान लेती है कि उसका जीवन निरंतर समझौतों की शृंखला है|

शिवा का जीवन त्याग और समर्पण से निर्मित है और वह त्याग नि:शब्द है। वह विरोध या विद्रोह का मार्ग नहीं अपनाती क्योंकि उसका शोषण प्रत्यक्ष रूप से कोई नहीं कर रहा। पति उससे प्रेम करता है, सौतेली बेटियाँ उसका आदर करती हैं, परिवार में उसे सम्मान प्राप्त है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं से प्रश्न करती है कि विद्रोह का औचित्य क्या है! यही प्रश्न उसकी चेतना को जटिल बनाता है। वह जानती है कि भीतर उसकी जो स्वतंत्र अस्मिता है वह केवल पत्नी या माँ की भूमिका में सीमित नहीं होना चाहती| वह संबंधों को तोड़कर अपनी स्वतंत्रता की घोषणा भी नहीं करना चाहती। इस प्रकार उसका संघर्ष बाह्य से अधिक आंतरिक है।

दाम्पत्य संबंधों का चित्रण इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण आयाम है। शिवा और उसके पति का संबंध सम्मान और मर्यादा पर आधारित है| किंतु उनके बीच एक अनुशासनात्मक दूरी भी विद्यमान है। पति का व्यक्तित्व दृढ़ और नियंत्रक है जिसके कारण शिवा अपनी भावनाओं को खुलकर व्यक्त नहीं कर पाती। शिवा का व्यक्तित्व नए और पुराने मूल्यों के बीच संघर्षरत दिखाई देता है। वह आधुनिक शिक्षा प्राप्त स्त्री है और पारिवारिक परंपराओं का सम्मान भी करती है। वह आत्मसम्मान रखती है, परंतु अहंकार नहीं। वह सहनशील है, परंतु आत्महीन नहीं। उसके जीवन में विद्रोह का अभाव है किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह निर्बल है। सहनशीलता उसकी शक्ति है क्योंकि वह परिस्थितियों को समझकर संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती है। इस संदर्भ में शिवा भारतीय मध्यवर्गीय स्त्री का प्रतिनिधि चरित्र बन जाती है जो संबंधों की रक्षा करते हुए भी अपने भीतर एक स्वतंत्र चेतना को जीवंत रखती है।रिंकी, ऋचा, रत्ना जैसे स्त्री पात्र उपन्यास में पीढ़ियों के अंतर और बदलते मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। रिंकी जो शिवा की सौतेली बेटी है, नई पीढ़ी का प्रतिनिधि है। उसे लिंग्विस्टिक्स का द्विवर्षीय फैलोशिप प्राप्त होती है तो वह ब्रिस्टल चली जाती है| तब उपन्यास में विदेशी स्त्री पात्रों का प्रवेश होता है। यहीं से भारतीय और पाश्चात्य स्त्री-जीवन की तुलनात्मक दृष्टि उभरती है। ब्रिस्टल में रहने वाली स्त्रियाँ सामाजिक बंधनों से अपेक्षाकृत मुक्त दिखाई देती हैं। उनके जीवन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधिक स्पष्ट है।

सेरों रॉबिन्स ब्रिस्टल की लाइब्रेरी में असिस्टेंट है। पैंतालीस वर्ष की आयु में भी वह तीसरे नवविवाहित पति के साथ मदहोशी और उल्लास का जीवन जीती है। उसके जीवन में विवाह कोई अंतिम संस्था नहीं, बल्कि व्यक्तिगत संतोष का साधन है। वह सामाजिक आलोचना से निर्भीक है। इसके विपरीत शिवा के लिए विवाह जीवन-पर्यंत निभाया जानेवाला नैतिक दायित्व है। यह तुलना भारतीय स्त्री की सहनशीलता और पश्चिमी स्त्री की आत्मकेंद्रित स्वतंत्रता के बीच के अंतर को उजागर करती है। ग्रेटा अस्टिन एक अन्य विदेशी स्त्री पात्र है जो विचारप्रधान और आत्मविश्वासी है। वह अपने दूसरे पति से तलाक लेकर पचास वर्ष की आयु में भी स्वयं को नई ऊर्जा के साथ प्रस्तुत करती है। वह व्यवस्थित और निश्चित जीवन जीती है किंतु उसमें आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता स्पष्ट दिखाई देती है। उसकी दृष्टि में जीवन का पुनर्निर्माण संभव है; आयु कोई बाधा नहीं। इसके विपरीत भारतीय संदर्भ में विवाह-विच्छेद और पुनर्विवाह अब भी जटिल सामाजिक समस्या है। इस प्रकार ग्रेटा का चरित्र सामाजिक संरचनाओं की भिन्नता को रेखांकित करता है। मिसेज बनार्ड विधवा होकर भी अपने व्यक्तित्व और रूप-रंग के प्रति सजग है। वह मेकअप और वेशभूषा में रुचि रखती है और सामाजिक जीवन में सक्रिय रहती है। भारतीय समाज में विधवा का जीवन प्रायः संयम और त्याग से जोड़ा जाता है, जबकि पाश्चात्य परिवेश में वह आत्मकेंद्रित और स्वतंत्र है। मिसेज अंडरवुड एक प्रौढ़ वृद्धा है जो जीवन को व्यापक और उदार दृष्टि से देखती है। वह जीवन की प्रत्येक वस्तु को संजोने और बाँटने की प्रवृत्ति के आदी है।

उसके भीतर अनुभव की परिपक्वता और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है। मार्टिन अविवाहित और स्वच्छंद जीवन जीने वाली स्त्री है। उसके अनुसार अपने ढंग से न जीना जीवन के प्रति अन्याय है। वह किसी सामाजिक दबाव के अधीन नहीं है और अपनी इच्छाओं को खुलकर व्यक्त करती है। इस प्रकार विदेशी स्त्रीपात्र नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित और सामाजिक प्रतिष्ठा के पारंपरिक मानदंडों से परे जीवन जीने की आकांक्षा रखती हैं। उनका जीवन बोल्ड और आत्मकेंद्रित है।इन विदेशी पात्रों के माध्यम से उपन्यास में एक तुलनात्मक विमर्श उपस्थित होता है। एक ओर शिवा है, जो संबंधों को निभाने में विश्वास करती है और अपने जीवन को 'संधियों की श्रृंखला' मानती है| दूसरी ओर वे स्त्रियाँ हैं, जो संबंधों को बदलने, तोड़ने और पुनर्निर्मित करने की स्वतंत्रता रखती हैं। यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि कौन-सा जीवन अधिक उचित है, बल्कि यह कि स्त्री की स्वतंत्रता की परिभाषा समाज के अनुसार कैसे बदलती है। भारतीय संदर्भ में स्वतंत्रता संबंधों के भीतर संतुलन खोजने में है जबकि पाश्चात्य संदर्भ में स्वतंत्रता आत्मनिर्णय और व्यक्तिगत संतोष में निहित है।

उपन्यास इस तथ्य को रेखांकित करता है कि स्त्री-विमर्श केवल बाहरी शोषण का प्रश्न नहीं है। शिवा का जीवन बाह्य रूप से संतुलित है किंतु आंतरिक स्तर पर वह निरंतर स्वयं को टटोलती रहती है। विदेशी स्त्रियाँ बाह्य रूप से स्वतंत्र हैं, किंतु उनके जीवन में भी स्थायित्व और संबंधों की गहराई का अभाव दिखाई देता है। इस प्रकार लेखिका ने किसी एक जीवन-पद्धति का समर्थन न करती हुई दोनों की सीमाएँ और संभावनाओं को उजागर करने में सक्षम होती हुई दिखाई देती है |

'मेरे संधिपत्र' समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श की उस धारा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें स्त्री न तो केवल शोषित है और न ही अति-आक्रामक विद्रोही। वह संवेदनशील, विवेकशील और आत्मसम्मान से युक्त व्यक्ति है जो अपने जीवन की जटिलताओं को समझती हुई उनका सामना करती है। सूर्यबाला ने इस उपन्यास में स्त्री-मन की गहराइयों को अत्यंत मार्मिक और यथार्थपरक शैली में उद्घाटित किया है। शिवा, रिंकी, ऋचा और रत्ना जैसे पात्रों के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध किया है कि स्त्री का जीवन केवल व्यथा-कथा नहीं, बल्कि आत्मसंघर्ष, संतुलन और आत्मबोध की सतत प्रक्रिया है।

इस प्रकार 'मेरे संधिपत्र' स्त्री-विमर्श की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण रचना है, जो यह प्रतिपादित करती है कि परिवर्तनशील समाज में स्त्री का आंतरिक परिवर्तन भी उतना ही आवश्यक है जितना बाह्य सामाजिक परिवर्तन। यहाँ स्त्री की शक्ति उसके मौन, धैर्य और आत्मसम्मान में निहित है। यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि वह स्त्री के सूक्ष्म, जटिल और बहुआयामी व्यक्तित्व को पूर्ण गरिमा और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। इसमें स्त्री के विविध रूप—सहनशील, आत्मसंघर्षरत, स्वच्छंद, विचारप्रधान, परिपक्व और भावुक— एक साथ उपस्थित हैं। सूर्यबाला ने स्त्री को न तो एकांगी रूप में प्रस्तुत किया है और न ही किसी आदर्श के साँचे में ढाला है। उन्होंने उसे उसकी समस्त जटिलताओं, संवेदनाओं और विरोधाभासों सहित चित्रित किया है, यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धी है । यह स्त्री-विमर्श को जीवन की ठोस परिस्थितियों से जोड़ता है और भारतीय तथा पाश्चात्य संदर्भों में स्त्री-अस्तित्व की भिन्न-भिन्न संभावनाओं को सामने लाता है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-
1. सूर्यबाला. मेरे संधि पत्र ,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2019
2.गुजराल, तरसेम. सूर्यबाला साक्षात्कार के आईने में,अमन प्रकाशन,कानपुर,2017
3. खड़से, दामोदर. सूर्यबाला का सृजन संसार,अमन प्रकाशन,कानपुर,2017
4.https://www.drmullaadamali.com/

ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में व्याप्त सामाजिक समस्याएँ

डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय
निर्देशक
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
शासकीय कन्या महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)

संजीव कुमार वर्मा
शोधार्थी
एमफिल. नेट, JRF (हिन्दी)

सारांश: हिंदी दलित साहित्य भारतीय समाज की उस ऐतिहासिक वास्तविकता को अभिव्यक्त करता है जिसे सदियों तक मुख्यधारा के साहित्य और विमर्श में हाशिये पर रखा गया। इस साहित्यिक परंपरा में ओमप्रकाश वाल्मीकि का योगदान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। उनका साहित्य दलित समाज के जीवनानुभवों, सामाजिक अपमान, जातिगत भेदभाव, आर्थिक शोषण तथा नारी उत्पीड़न की समस्याओं को प्रत्यक्ष और प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करता है। वाल्मीकि का लेखन सहानुभूति या दया पर आधारित नहीं है, बल्कि वह स्वयं भोगे गए यथार्थ से जन्म लेता है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' में वर्णित अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि दलित जीवन का यथार्थ कितना अमानवीय और पीड़ादायक रहा है। वाल्मीकि स्वयं स्वीकार करते हैं कि "दलित साहित्य सहानुभूति का नहीं, बल्कि प्रतिरोध का साहित्य है" ("दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र", वाल्मीकि, 1997)। इस शोध-लेख में ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में व्याप्त जातिवाद, दलित जीवन और नारी उत्पीड़न की समस्याओं का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है तथा यह प्रतिपादित किया गया है कि उनका साहित्य सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना की दिशा में एक सशक्त हस्तक्षेप है।

मुख्य शब्द: दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जातिवाद, दलित जीवन, नारी उत्पीड़न, दलित चेतना

प्रस्तावना: हिंदी साहित्य की परंपरा लंबे समय तक सवर्ण दृष्टिकोण से संचालित रही, जिसमें दलित समाज के यथार्थ को या तो अनदेखा किया गया या करुणा के सीमित दायरे में बाँध दिया गया। दलित साहित्य ने इस दृष्टिकोण को चुनौती देते हुए साहित्य को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा। ओमप्रकाश वाल्मीकि इसी चेतना के प्रतिनिधि लेखक हैं। वे मानते हैं कि "जब तक साहित्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़ा नहीं होता, तब तक उसका कोई नैतिक मूल्य नहीं" (वाल्मीकि, 1997)। उनका लेखन जाति-व्यवस्था को केवल सामाजिक कुरीति नहीं, बल्कि सत्ता की संरचना के रूप में उजागर करता है।

मुख्य विषय: ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में जातिवाद एक केंद्रीय समस्या के रूप में उपस्थित है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' दलित जीवन की पीड़ा का जीवंत दस्तावेज है। इसमें वर्णित अनुभव यह दर्शाते हैं कि किस प्रकार दलित व्यक्ति को बचपन से ही अपमान और बहिष्कार झेलना पड़ता है। विद्यालय जैसे आधुनिक संस्थान भी जातिगत भेदभाव से मुक्त नहीं थे। वाल्मीकि लिखते हैं—"हमारे लिए स्कूल भी एक सजा था, जहाँ हर दिन अपनी जाति का अहसास कराया जाता था" ("जूठन", वाल्मीकि, 1997)। यह कथन यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा जैसी संस्था भी दलितों के लिए मुक्ति का साधन नहीं बन सकी। जातिवाद केवल सामाजिक व्यवहार नहीं, बल्कि मानसिकता का निर्माण करता है। वाल्मीकि के साहित्य में सवर्ण समाज की वह

मानसिकता स्पष्ट दिखाई देती है, जिसमें दलित को 'नीच' और 'अस्पृश्य' माना जाता है। डॉ. आंबेडकर ने इस व्यवस्था को स्पष्ट शब्दों में रेखांकित करते हुए कहा था—"जाति केवल श्रम का विभाजन नहीं, बल्कि श्रमिकों का विभाजन है" ("जाति का विनाश", आंबेडकर, 1936)। वाल्मीकि का साहित्य इसी विचार को अनुभवजन्य स्तर पर प्रमाणित करता है। दलित जीवन की समस्याएँ वाल्मीकि के साहित्य का दूसरा प्रमुख पक्ष हैं। उनके लेखन में दलित जीवन निरंतर संघर्ष का प्रतीक है। दलित समाज श्रम करता है, किंतु उसे न तो सम्मान मिलता है और न ही सुरक्षा। वाल्मीकि के अनुसार "दलित का श्रम समाज के लिए जरूरी है, पर उसका जीवन नहीं" (वाल्मीकि, 1997)। यह कथन दलित जीवन की त्रासदी को अत्यंत संक्षेप में अभिव्यक्त करता है।

नारी उत्पीड़न की समस्या वाल्मीकि के साहित्य में विशेष रूप से दलित स्त्री के संदर्भ में सामने आती है। दलित स्त्री दोहरे उत्पीड़न की शिकार है—जाति और लिंग के आधार पर। शरद पाटिल और शरद रेगे जैसे विद्वानों ने इसे 'डबल मार्जिनलाइजेशन' कहा है। शरद रेगे के अनुसार "दलित स्त्री का अनुभव न तो केवल स्त्रीवाद में समा सकता है और न ही केवल दलित विमर्श में" (Rege, 2013)। वाल्मीकि के साहित्य में दलित स्त्री संघर्षशील रूप में उपस्थित है, जो अन्याय को स्वीकार नहीं करती। ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य दलित जीवन की यथार्थपरक, अनुभवजन्य और संघर्षशील अभिव्यक्ति है। उनका रचनाकर्म भारतीय समाज की उस संरचना पर सीधा प्रहार करता है, जो जन्म आधारित जातिव्यवस्था को बनाए रखने में सहायक रही है। वाल्मीकि स्वयं इस व्यवस्था के प्रत्यक्ष भुक्तभोगी रहे हैं, इसलिए उनका साहित्य 'देखे हुए यथार्थ' का साहित्य है, न कि कल्पनाजन्य करुणा का। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं—"दलित साहित्य सहानुभूति का नहीं, अनुभव का साहित्य है" (वाल्मीकि, 1997)। यह कथन उनके सम्पूर्ण लेखन की वैचारिक धुरी को स्पष्ट करता है।

जातिवाद की समस्या वाल्मीकि के साहित्य में मूलभूत प्रश्न के रूप में उपस्थित है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता, भेदभाव और अमानवीय व्यवहार का जीवंत दस्तावेज है। विद्यालय, कार्यस्थल, गाँव, मंदिर और सार्वजनिक स्थल—हर जगह दलित को अपमान और बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। वाल्मीकि लिखते हैं—"हमारे लिए स्कूल ज्ञान का मंदिर नहीं, अपमान का अखाड़ा था" ("जूठन", 1997)। यह कथन केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की क्रूरता को उजागर करता है। वाल्मीकि के साहित्य में दलितों की समस्या केवल आर्थिक अभाव तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक सम्मान, मानवीय गरिमा और आत्मसम्मान से जुड़ी हुई है। वे यह प्रश्न उठाते हैं कि यदि लोकतंत्र और संविधान समानता की बात करते हैं, तो समाज में दलितों को आज भी अछूत क्यों माना जाता है। उनका लेखन इस अंतर्विरोध को उजागर करता है—"कागज़ पर हम नागरिक हैं, ज़मीन पर आज भी अछूत" (वाल्मीकि, 1997)।

दलित नारी उत्पीड़न की समस्या वाल्मीकि के साहित्य में अत्यंत संवेदनशील रूप में अभिव्यक्त हुई है। दलित स्त्री जाति और लिंग—दोनों स्तरों पर शोषण का शिकार होती है। 'जूठन' में वर्णित स्त्रियों का जीवन निरंतर श्रम, अपमान और हिंसा से घिरा हुआ है। वाल्मीकि दिखाते हैं कि दलित स्त्री न केवल सवर्ण पुरुषों द्वारा, बल्कि कई बार दलित पुरुषों द्वारा भी उत्पीड़ित होती है। यह द्विस्तरीय शोषण उनकी रचनाओं को विशिष्ट बनाता है। वाल्मीकि का दृष्टिकोण यहाँ किसी एकांगी नारीवाद तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह दलित नारी की विशिष्ट सामाजिक स्थिति को समझने का प्रयास करता है। शरद रेगे का कथन इस संदर्भ में प्रासंगिक है—"दलित स्त्री का अनुभव मुख्यधारा स्त्रीवाद से भिन्न है" (Rege, 2013)। वाल्मीकि के साहित्य में यह भिन्नता पूरी स्पष्टता से उभरती है।

वाल्मीकि के साहित्य में धर्म और संस्कृति की भूमिका पर भी गहन प्रश्न उठाए गए हैं। वे मानते हैं कि धर्म का प्रयोग सदियों से दलितों को सामाजिक रूप से नियंत्रित करने के लिए किया गया। धार्मिक ग्रंथों, परंपराओं और रीति-रिवाजों ने जाति व्यवस्था को नैतिक वैधता प्रदान की। इसी संदर्भ में आंबेडकर का यह कथन उल्लेखनीय है—"जाति व्यवस्था केवल श्रम का विभाजन नहीं, श्रमिकों का विभाजन है" (Ambedkar, 1936)। वाल्मीकि इस विचार को अपने साहित्य में जीवन्त रूप देते हैं।

भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी वाल्मीकि का साहित्य पारंपरिक हिंदी साहित्य से भिन्न है। उनकी भाषा सीधी, तीखी और यथार्थवादी है। वे अलंकारों और प्रतीकों के स्थान पर जीवन की कड़वी सच्चाइयों को प्राथमिकता देते हैं। उनका सौंदर्यबोध संघर्ष, प्रतिरोध और चेतना से निर्मित है। स्वयं उनके शब्दों में—"हमारा सौंदर्य संघर्ष से पैदा होता है" (वाल्मीकि, 1997)।

वाल्मीकि का साहित्य सामाजिक प्रतिरोध का साहित्य है। वह पाठक को केवल संवेदनशील नहीं बनाता, बल्कि उसे असहज करता है, प्रश्न करने को बाध्य करता है। यही कारण है कि उनका लेखन सत्ता, व्यवस्था और परंपरा के लिए चुनौती बनता है। उनका साहित्य आंबेडकरवादी चेतना से प्रेरित होकर सामाजिक परिवर्तन की दिशा में हस्तक्षेप करता है।

निष्कर्ष: इस प्रकार स्पष्ट है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य हिंदी दलित साहित्य की वैचारिक रीढ़ है। उनके लेखन में जातिवाद, दलित उत्पीड़न और नारी शोषण की समस्याएँ केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि आलोचनात्मक और परिवर्तनकामी स्वर में प्रस्तुत होती हैं। वाल्मीकि का साहित्य यह सिद्ध करता हैं कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम हो सकता है। उनका लेखन पाठक को केवल संवेदनशील नहीं बनाता, बल्कि उसे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़ा होने की प्रेरणा देता है।

उनका साहित्य यह भी रेखांकित करता है कि जब तक जाति आधारित मानसिकता समाप्त नहीं होती, तब तक लोकतंत्र अधूरा रहेगा। वाल्मीकि का लेखन दलित समाज को आत्मसम्मान, चेतना और प्रतिरोध की भाषा प्रदान करता है। साथ ही, यह मुख्यधारा समाज को आत्मालोचना के लिए विवश करता है। अतः ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य केवल दलित समाज की पीड़ा का दस्तावेज नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का घोषणापत्र है। हिंदी साहित्य के इतिहास में उनका योगदान स्थायी, अपरिहार्य और युगांतरकारी है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (1997). जूठन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (1997). दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
3. Ambedkar, B.R. (1936). Annihilation of Caste. Bombay.
4. Rege, Sharmila (2013). Writing Caste/Writing Gender. New Delhi: Zubaan.
5. Zelliot, Eleanor (2001). From Untouchable to Dalit. New Delhi: Manohar।
6. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (1997). जूठन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (1997). दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
8. Ambedkar, B.R. (1936). Annihilation of Caste. Bombay.
9. Rege, Sharmila (2013). Writing Caste/Writing Gender. New Delhi: Zubaan.
10. Zelliot, Eleanor (2001). From Untouchable to Dalit. New Delhi: Manohar.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

Marginalization and poverty: A study of the social status of tea garden labourers of Badla Batá tea estate in Tinsukia district and its impact on children

Ms. Joymati Panika
Research scholar
Department of Legal Studies, Arunachal University of Studies (Namsai)
joymotipanika2@gmail.com, Ph. no-8135908724

Prof. Stuti Deka
Research supervisor
Department of Legal Studies, Arunachal University of Studies (Namsai)
stutideka@gauhati.ac.in, Ph. no-9957563023

Abstract-Assam's tea industry is a substantial contributor to its economy. It is despite this that the tea Plucker's/tea garden labourers in Assam continue to languish under appalling conditions of marginalization and poverty. The objective study is to study the social status and living conditions of tea garden labourers at BadlaBata Tea Estate of Tinsukia district, Assam, and its effects on their children. The research design is descriptive qualitative and quantitative research. The primary and secondary sources of data were the following. The information was gathered from 100Tea Garden labourers. Poverty inducing factors have been ascertained to be the set of circumstances that labourers of Badla batá Tea Estate lived below poverty line, poor wages, lack job security and have no access to proper primary health care and education facility. It was found that most tea garden labourers at the Badla Batá Tea Estate are below the poverty line, receive inadequate pay, have unstable work schedules, and have little access to quality primary healthcare and education.

Keywords- Marginalization, Poverty, Tea Garden laborers, oppressed community, primary health and systematic neglect.

Introduction-Poverty and social marginalization are two of the most complex and prevalent problems in the world today, affecting millions of people globally. Even though they are commonly addressed together, they are distinct but closely related problems that contribute to an unending cycle of injustice and inequality. Poverty is the result of not having enough money or material possessions to cover one's basic needs, which is a fundamental violation of human rights. It makes it impossible to get basic needs like food, shelter, clean water, and healthcare. Conversely, social exclusion refers to the methodical exclusion of individuals or groups from the political, social, cultural, and economic spheres of their respective countries. A person may be excluded based on a variety of factors, including race, ethnicity, gender, socioeconomic status, disability, or religion. Poverty and marginalization combine to form a potent feedback loop. Because those without resources are denied a voice and a seat at the table, poverty can lead to social exclusion. Furthermore, social marginalization can lead to poverty because it frequently denies excluded groups opportunities for education, employment, and personal development. " In addition to financial solutions, addressing these problems requires dedication to social justice, resistance to the power structure that creates and sustains inequality, and ensuring that everyone can lead a life of dignity and purpose. Since the time of colonization, Assam's tea plantations have been a key component of the state economy. It accounts for about half of India's tea production, and thousands of workers are employed in different estates. Of these, the Tinsukia district's Badla Bata Tea estate represents the everyday struggles of a marginalized group that still faces poverty, deprivation, and slow social progress. Originally brought from Central India's tribal and Dalit communities as bonded laborers by the British in the 19th century, the ancestors of the Tea Garden labourers still face social and economic hardships today. The primary causes of poverty and marginalization are historical exploitation, structural neglect, and insufficient government action. Marginalization is the term used to describe the social and economic segregation of Tea Garden labourers, which leads to their insufficient access to political representation, healthcare, education, and employment opportunities. The plantation ownership system has historically created system dependency due to its high levels of control, where labourers are obligated to the estate through subpar pay, subpar accommodations, and restricted rights. Despite efforts to address welfare issues through labor laws such as the Plantation Labour Act of 1951, their implementation remains inadequate. As a result of the never-ending cycle of poverty, Tea Garden labourers not only faced financial hardship but also structural challenges like hunger and low literacy, which limited their opportunities for upward mobility.

Historical background of the study-The study's

historical backdrop is the mid-19th century establishment of commercialized tea plantations in Assam by the British East India Company. There was a severe labor shortage because the Assamese people in the area did not want to work in the harsh conditions of the plantations. To meet this demand, the British funded a massive labor recruitment drive from underprivileged, tribal, and impoverished regions of central and eastern India, including what is now Jharkhand, Odisha, and West Bengal. The study of Assam tea garden labourers' poverty and marginalization, especially at the Badlabeta Tea Estate in Tinsukia, is based on the history of British colonial exploitation. The systemic discrimination that this history established still affects these labourers' ancestors. Over many generations, Tea Garden labourers and their descendants from diverse linguistic and ethnic backgrounds came to form a single, cohesive, but marginalized group known as the "Tea Tribes." Their common identity, which served to distinguish them from most of Assamese society while simultaneously serving as a source of cultural pride, kept them socially excluded. The colonial system had established their poverty and dependency to maintain it. They were in debt because the plantation owners gave them insufficient money, usually in the form of rations and a small cash payment. Due to a lack of economic mobility and an effective policy of isolation from the outside world, they were confined to the plantations for the duration of their lives. The historical injustices of this system have a direct and lasting impact on the socioeconomic status of tea garden labourers and their children, which is the focus of this study. Poverty and Economic Stagnation: The historical legacy of low wages has perpetuated a cycle of poverty. Due to low income, many families are unable to pay for necessities, which leads to malnutrition and poor health. Educational Deprivation: As a result of earlier conservative policies, there were either insufficient or no educational facilities. Due to the historical lack of access to education, which is still evident in the high rates of illiteracy and low school enrollment, children are stuck in the same low-paying jobs that their ancestors were forced to work in. Social Exclusion: The public still frequently perceives the "Tea Garden labourers" as a "other" community in Assam, despite their presence for more than 150 years. This social marginalization can lead to discrimination and restricted access to government opportunities and benefits.

Review of Literature

Kurmi.P (2014) The present study's main objective was to investigate the socioeconomic factors that affect household demand for children's education in the neighborhoods surrounding the tea garden. Data for this study came from 59 houses that were randomly selected from the Derby Tea Garden. The following findings are the result of the estimation: i. Mothers' education enhances children's education and is crucial in guaranteeing that youngsters in tea-garden environments acquire the education they are supposed to. ii. Family size has an impact on children's educational achievement as well. Regarding children's educational attainment, family size is negatively correlated, unlike "mother's education." iii. Research has discovered that children's academic achievement is influenced by household income.

Bhowmik.S.K(2011) The conditions of tea plantation workers are discussed in this article within the context of marginalization and ethnicity. It addresses the issue of tribal tea plantation laborers in the Indian state of West Bengal, who have long been neglected mostly because of their ethnic status and seclusion on the plantations. The paper starts off by analyzing the characteristics of the plantation system and demonstrating how the methods of labor management led to relations that were not free. Labor is part of the formal, organized workforce in the majority of nations with plantations; employment and working conditions are governed by legislation, and positions are stable and permanent.

Medhi. G.K (2006) According to the study, children of tea garden workers in Assam had a marked growth disadvantage because their average height and weight were lower than those of both wealthy Indian children and international norms (NCHS). A high prevalence of malnutrition, both recent and chronic, was found when nutritional status was evaluated using WHO markers, indicating continuous and long-term nutrition problems. The degree of malnutrition among these children was demonstrated by the specific prevalence rates for malnutrition markers such as wasting, stunting, underweight, and thinness that were given for various age groups.

Borkakoty.B (2024) This study aims to investigate the perceptions of tea garden workers in the Golaghat District of Assam on their children's higher education. The tea industry in Assam contributes significantly to the nation's economy. The establishment of tea plantations in Assam dates to the British colonial era. Various social projects have been periodically launched by the Assam government to improve the socioeconomic status of these people. Despite these efforts, the educational status of the Tea Tribe community is still far lower than that of other Assamese communities. Parental attitudes on their children's education may be a hindrance to the tea-tribe group's educational attainment. It was shown that attitudes regarding their children's higher education did not significantly differ between literate and illiterate parents, or between single and co-parents. Furthermore, 72 percent of tea garden workers had a negative attitude toward their children's further education, compared to 28 percent who had a positive view.

Banerji.S and Willoughby.R(2019) The rights of tea plantation workers in the Indian state of Assam to a livable salary and respectable living and working circumstances are often violated. ration cards from the Assam government, which entitles them to 5 kg of rice per family each month. In addition, tea workers face challenges in accessing clean drinking water, timely and high-quality healthcare, and a proper education for their kids. deeply embedded in the history and development of the Indian tea business are the underlying causes, which have resulted in a widespread power imbalance between the brands and supermarkets that sell tea to customers and the women and men who make it. Tea companies and supermarkets take a significant cut (up to 95% in some circumstances) for each kilogram of packaged Assam tea sold, while a little fraction (less than 5%) stays on tea plantations to pay workers.

Sarma.N(2025) According to this survey, 47% of the employees are men and 53% are women. It presents a picture of the empowerment of women through raising their financial standing and highlighting the important role that female employees have played in the tea garden. However, it has been discovered that 69% of the workers lack literacy, meaning they do not know how to read or write, 26% have completed elementary through high school, and only 5% are pursuing higher education after passing the 10th board exam. Due to financial difficulties, most respondents stopped their education, and it is a known fact that children of girls typically drop out of school. Additionally, it reveals that 70% of the employees were married, 16% were single, 8% were widowed after their husbands passed away from a variety of causes, including high fever, leprosy illness, smoking, malnutrition, etc., and 6% were split up because they were unable to support their families. The tea community is in a backward condition as a result of the workers' tendency for early marriage. They are unable to fully understand the different developmental programs offered by the state and federal governments at various times due to a lack of adequate knowledge. Just 26% of male employees marry after the age of 21, compared to 74% who do so before. When they reached 18, 22% of the female employees got married. However, 78% of women report getting married before turning 18. For the young women who work in tea gardens, the negative consequences of early marriages have become an international matter. 21% of the tea workers are contractual or temporary employees, while 79% are permanent employees of the chosen workplace. Temporary employees are denied access to all government-provided facilities, but permanent employees enjoy all of them. Only 9% of workers made more than ten thousand rupees a month, while 63% made less than five thousand, 21% made between five and seven thousand, and 7% made between seven and ten thousand. Only 9% of workers made more than ten thousand rupees a month, while 63% made less than five thousand, 21% made between five and seven thousand, and 7% made between seven and ten thousand. Just 22% of all respondents are above the poverty line, while 78% of them are below it. Because of this outcome, poverty is a major issue among workers, indicating that their economic situation is still worrying. 89% of workers get their drinking water from tube wells, which are operated by hand pumps; only 11% of respondents depend on ponds, dug wells, or even neighboring streams. One major problem is that there have been major health concerns brought up as a result of drinking groundwater without testing. The research makes it evident that despite the numerous initiatives aimed at raising the community's level of living, they still have a need for clean drinking water.

Dutta.P and Goswami.G(2018) A total of 263 samples has been collected for the purpose of the study. Of the overall sample, 48.29 percent are men and 51.71 percent are women. About 40% of sample respondents are between the ages of 26 and 35, 27% are between the ages of 26 and 45, and 17% are between the ages of 46 and 55. Regarding the respondents' housing type, almost 72% of the sample resides in homes that their employers supply. Of the samples, 46.39 percent lack illiteracy. Just 14% of the samples have studied above the lower primary level, 23% have studied up to the middle primary level, and 17% have studied up to the lower primary level. 3. This indicates that the tea garden workers have extremely low levels of education. The percentage of women who lack literacy (64%) is more than twice that of men, who have an illiteracy rate of about 28%. Just 14% of the samples have studied above the lower primary level, 23% have studied up to the middle primary level, and 17% have studied up to the lower primary level. 3. This indicates that the tea garden workers have extremely low levels of education. The percentage of women who lacking literacy (64%) is more than twice that of men, who have an illiteracy rate of about 28%. It is discovered that 21% of the samples lack a bank account. Insufficient revenue is cited by many employees as the primary reason they do not have access to a bank account. Other reasons for not having a bank account include challenging working hours and a lack of required documentation. A few employees also express their lack of knowledge regarding the account opening procedure.

Research methodology- The descriptive methodology is used in this study. Both primary and secondary sources were used to gather the data. Books, periodicals, research papers, newspapers, and statements from different public servants are examples of secondary sources. The primary data collection in this study is

done using basic random sampling techniques. One hundred is the sample size, and Data was gathered using a series of questionnaires.

Objectives of the study

1.To examine the poverty and marginalization faced by Tea Garden workers.

2. To investigate the impact of poverty and marginalization on children

Analysis

Table 1-

Household income of the respondent	frequency
below 5000	45%
5000-10000	50%
10000-15000	7%
above 15000	3%

Source-Field survey

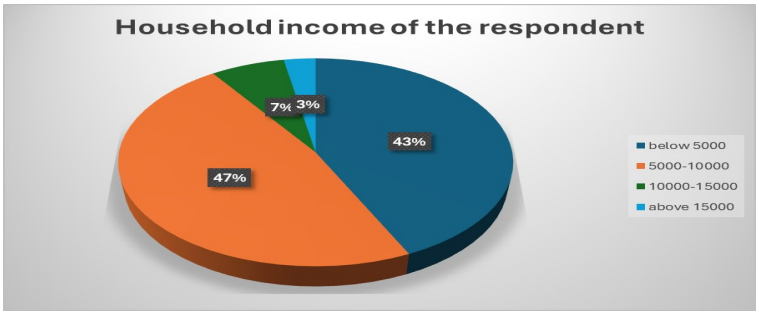

From the above table it shows that 43% respondent household income is below 5000 in Badlabata Tea estate of Tinsukia district. And 47% tea garden labourers of Badlabata tea estate earn 5000-10000rs monthly. 7% of Tea Garden labourers earn between 10000-15000rs monthly. And only 3% of labourers earn above 15000rs monthly. It reflects that inadequacy of wages in the Tea Estate, where Garden labourers are primarily paid daily wages far below living wage standards.

Educational details of the household	Frequency
Illiterate	40%
Primary level	52%
secondary education	5%
higher secondary	2%
Graduate	1%

Source-Field survey

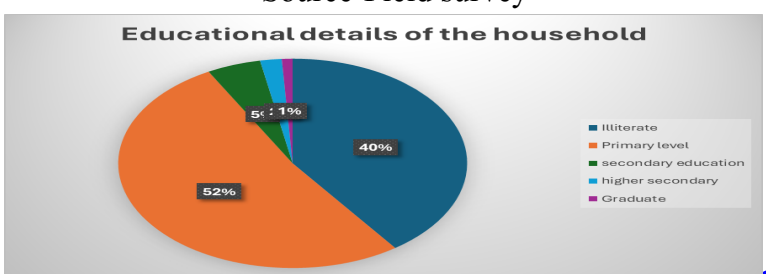

From the table 2 it was found that 40% of the household heads have no formal education in Badlabata Tea Estate. 52% of the household heads of Badlabata Tea Estate completed the primary level. And 5% of the respondent completed the secondary education. Only 2% respondent completed the higher secondary education and 1% respondent completed the graduation .

Table 3-

Access to healthcare facility	frequency
No access to healthcare facilities	35%
Depending on basic Tea Garden hospital	45%
Use of government PHC/CHC	18%
Depending on private clinic	2%

Source-field survey

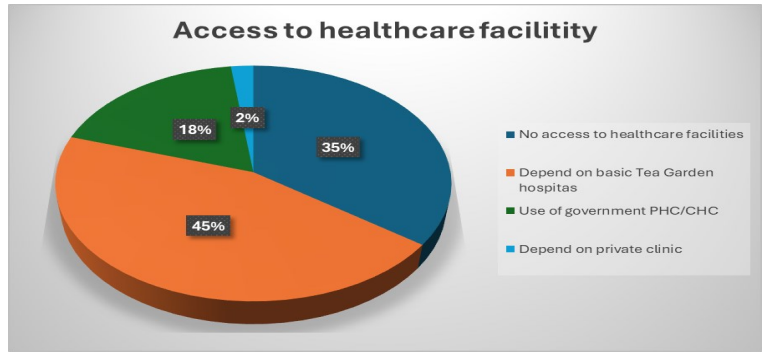

This pie diagram shows that 35% of the respodent of Badlabata Tea estate no access the healthcare facilities provided by the tea garden managemant. 45% respondent accessing the tea garden facilities. There are total 18% respondent who use of government PHC/CHC. And only 2% respondent depend on private clinic.

Findings-Lack of social security and insufficient income are both components of poverty. The respondent reports that although they receive their ration on a regular basis, it is insufficient for them. Amartya Sen's "capability deprivation" theory defines poverty as the absence of basic freedoms that enable one to live a dignified life rather than merely possessing wealth. Low wages are the root cause of poverty. The living conditions of the Badlabata Tea Garden respondents are subpar. They don't own any land. Additionally, poverty breeds anxiety and despair. Employees at Badlabata Tea Estate Tea Garden frequently abuse alcohol and other drugs as a result of their stress. Poverty impacts children's social, mental, physical, and educational development. Children who live in poverty often drop out of school in order to provide for their families. The financial situation of the parents of the Badla Batá tea estate is extremely dire. Physical disability is a result of poverty. Due to poverty, a large number of children in the Badla Batá Tea Estate suffer from malnutrition. In

addition to impairing the proper development of every bodily part, malnutrition also lowers IQ. The mental health of the kids at Badla Batá Tea Estate is also impacted by poverty. This indicates that children living in poverty experience stress and anxiety in addition to inadequate food and housing. Due to social stigma, many kids from extremely low-income families feel inferior. Additionally, social exclusion is a result of poverty. A country's children are its future. The state or country will not develop if the nation's future is not safeguarded. Social exclusion is a result of poverty. Due to poverty, many children in the Badla Batá tea estate were unable to purchase toys or clothing, which hindered their ability to engage in social activities and separated them from their peers in other communities. Additionally, it was discovered that the majority of Badla Batá Tea Estate respondents were illiterate. Tea Garden labourers and their kids are affected by illiteracy. Labourers who lack literacy are vulnerable to exploitation, unable to understand their rights as employees, and unable to bargain for better pay. As a result, they are ignorant of the negative effects of alcohol and tobacco as well as the Adivasi or Tea Garden labourers' welfare programs. Respondents' low literacy levels make it impossible to assist kids with schoolwork and homework and to support higher education. Early school withdrawal is also caused by parents who are illiterate. because the vast majority of respondents are unaware of the value of education. Respondents' lack of literacy also contributes to their children getting married young.

The majority of respondents do not use the healthcare facilities, it was also discovered. This raises the risk of newborn babies in the Badla Batá tea estate and contributes to the high rate of maternal death. They are superstitious and rely on herbal remedies. The death ratio is high as a result.

Conclusion and suggestion

Assam tea labourers receive lower wages than other tea garden labourers in India, even though they support a lucrative industry. Tea garden labourers purposefully stayed with bonded residents in accordance with colonialism's practices, and low pay has persisted. Even now, a lot of families make extra cash by doing unapproved tasks like gathering firewood or doing housework, but these profits are still quite small. And poverty and marginalization are the results of all of these. In this sense, poverty encompasses both the lack of social security and a sufficient source of income.

The people's reports of uneven access to financial aid, such as pensions or ration reimbursement, revealed administrative exclusions. Among Assamese communities, the Tea Garden labourers have the lowest literacy rates. Existing research indicates that the literacy rate of respondents is extremely low. Compared to the state, residents of the Tea Garden usually have worse health ratings. Mother mortality, infant mortality, and the percentage of dehydration are all extremely high. The primary causes of malaria, tuberculosis, and anemia are inadequate nutrition, unpurified drinking water, and improper cleanliness.

The following steps may mitigate this systemic issue:

1. Improvements in living standards and the economy. The underlying causes of the problem are poverty wages and economic vulnerability.

Implement and Evaluate Minimum Wages: Implement the legally required minimum wage for plantation labor right away, making sure it is at least as high as the minimum wage for unskilled agricultural labor in the region. It should be assessed annually to ensure that it is a true living wage that covers essentials like housing, food, healthcare, and education. Several Revenue Sources: Encourage laborers and their children to enroll in vocational and skill-development courses (like computer skills, weaving, driving, and tailoring), especially for women, to create alternative, higher-paying livelihood options outside of the tea garden economy. Micro Finance and Financial Access: To make formal financial services like bank accounts, low-cost loans, and microloan programs more accessible, as well as to help families break free from debt cycles and set up small businesses. As soon as possible, laborers who have resided on tea estate land for generations should be granted the right to own their property. They will gain safety, security, and a higher social standing as a result.

2. Improving Education and Child Welfare: The impact on children's safety, education, and health is the most significant indicator of marginalization. Fight Child Trafficking and Child Labor: Pay special attention to and deal with any child labor that occurs on tea estates. Get people to learn about child rights, the dangers of child marriage and human trafficking, and the illegality of child labor. Create and strengthen Child Protection Committees (CPCs) in tea communities to act as first responders. Enhance the infrastructure and facilities of schools in and around tea garden areas to improve the quality and accessibility of education (e.g., appropriate classrooms, clean water, proper sanitation). Verify that teachers are regularly present in class and choose instructors who can collaborate effectively with a diverse group of students. For students attending college outside of the garden grounds, they provide additional dorms. Provide creche or childcare facilities for working mothers' children as mandated by the Plantation Labour Act. This will free up women for work or training and lessen the need for older children to look after their siblings.

3. Strengthening Social Status and Legal Protection: Addressing marginalization requires an understanding

of and commitment to the community. Effectively Putting Labor Laws into Practice: Oversee and closely monitor the tea garden administration's adherence to the 1951 Plantations Labour Act's housing, healthcare, water, and sanitation provisions. Violations must be followed by severe penalties. Getting to Government Plans and Documents: Launch extensive campaigns to ensure that all tea garden laborers and their families have identity documents (Aadhaar cards, ration cards, voter IDs) and caste certificates (OBC/MOBC status) needed to access welfare, health, and social security programs. Empowerment and Awareness: Support and fortify community-based organizations and trade unions (like the Adivasi Women's Association) to advance rights and collective bargaining. Run legal literacy and awareness programs about labourers' rights, health, sanitation, and family planning. Boost Essential Amenities: Fill in the gaps in the tea estate residential communities' access to clean drinking water, electricity, and suitable restroom and sanitation facilities by using public funds (government, CSR, or NGO).

4. Multi-Stakeholder Coordination: All parties involved in the tea production chain need to work together to find answers. Inspection and Coordination by the Government: Create a dedicated Tea Garden Welfare Cell at the district level (Tinsukia) with representatives from the local government, the Labour Department, Social Welfare, Education, and Health to facilitate the coordinated implementation and oversight of the program. Industry and Consumer Accountability: Encourage domestic and international tea brands and retailers to commit to a more equitable distribution of the final tea price in order to ensure that the industry can earn a living wage. Consumers must be informed and encouraged to choose tea that is sourced responsibly. NGO and Civil Society Partnership: Apply their expertise in community mobilization by working with international organizations like UNICEF and Oxfam, as well as NGOs like PAJHRA and Nazdeek, to implement grassroots programs on health, education, safety, and awareness for children.

****

References

1. R. R. Singphow"A study on Socio-Economic and Educational status of tea garden labourers with special reference to Powai Tea Estate, Tinsukia, Assam" Vol. 32, In *Journal of Namibian Studies,* pp. 416–426 (2022)
2. Wikipedia contributors. (2025, September 17). *Tea-garden community*. Wikipedia. https://en.wikipedia.org/wiki/Tea-garden_community.
3. Gaurav Sharma "*Child welfare situational analysis in tea gardens in Assam*" Bal Raksha Bharat (2025, July 29). https://balrakshabharat.org/blog/child-protection/child-welfare-situational-analysis-in-tea-gardens-in-assam/#:~:text=This%20had%20already%20taken%20a,to%20Rs%20110%20per%20day.
4. Pradip Kurmi & International Science Congress Association"Problem of Educational Attainment of Children, A case Study of the Tea Garden Labourer's Households in Derby Tea Estate" Vols. 1(4) In *Research Journal of Language, Literature and Humanities*,pp. 1–7 (2014). https://www.isca.in.

6. Sharit K.Bhowmik "Ethnicity and isolation: Marginalization of tea plantation workers*"4*(2) *Race/Ethnicity Multidisciplinary Global Contexts*, 235–253(2011). https://doi.org/10.2979/racethmulglocon.4.2.235

7. Gajendra Kumar Medhi. et.al "Growth and nutritional status of school age children (6-14 years) of tea garden worker of Assam" *19*(2) *Journal of Human Ecology*, 83–85 (2006). https://doi.org/10.1080/09709274.2006.11905860
8. Dr. Bidyananda Borkakoty "Attitude of Tea Garden Workers towards Higher Education of their Children: An Analytical Study in Golaghat District of Assam" In *International Journal of Science and Research (IJSR)* (2024). [Journal-article]. https://dx.doi.org/10.21275/SR24205085432464
*9. Addressing the Human Cost of Assam Tea: An agenda for change to respect, protect and fulfil human rights on Assam tea plantations - Oxfam Policy & Practice*Oxfam Policy & Practice, (2024, July 18). https://policy-practice.oxfam.org/resources/addressing-the-human-cost-of-assam-tea-an-agenda-for-change-to-respect-protect-620876/
10. Dr. Namita Sarma "A Study About Socio-Demographic and Socio-Economic Conditions of the Tea Workers of Assam: A Case Study of Darrang and Sonitpur Districts of Assam" Vol. 7, Issue 4In *International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)*pp. 1–3(2025). [Journal-article; E-ISSN: 2582-2160]. International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR). https://www.ijfmr.com.
11. Priyanka Dutta and Gayatri Goswami "FINANCIAL INCLUSION AMONG THE TEA GARDEN WORKERS IN ASSAM." Vol. 6, Issue 2 In International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT) & Gauhati University, *International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT)*pp.104–105(2018) [Journal-article]. https://ijcrt.org/papers/IJCRT1893014.pdf.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

Role of NEP 2020 in Promoting Indian Knowledge Systems in Curriculum and Pedagogy

Dr. Govind Kumar Rohit
Assistant Professor, Department of Sociology
Radha Govind University, Near Lalki Ghati, Ramgarh, Jharkhand, India
E-mail: govindkmgs@gmail.com

Abstract-The National Education Policy (NEP) 2020 marks a significant shift in India's educational vision by emphasizing the integration of Indian Knowledge Systems (IKS) into curriculum and pedagogy across all levels of education. Recognizing India's rich intellectual heritage, NEP 2020 seeks to move beyond a purely colonial and Western-centric framework and promote a more holistic, inclusive, and culturally rooted education system. The policy highlights the importance of drawing upon ancient, medieval, and indigenous knowledge traditions in fields such as philosophy, mathematics, astronomy, medicine (Ayurveda), yoga, ecology, linguistics, architecture, and arts and crafts.

NEP 2020 advocates for the incorporation of IKS not as isolated or optional content, but as an integral part of mainstream curricula. It encourages interdisciplinary learning, experiential pedagogy, and the use of local contexts and indigenous practices to enhance conceptual understanding. By promoting multilingualism and education in mother tongues or regional languages, the policy facilitates better transmission of traditional knowledge and cultural values. Further, NEP 2020 supports the development of new courses, textbooks, and teacher training programmes focused on Indian Knowledge Systems, ensuring academic rigor and contemporary relevance.

Pedagogically, NEP 2020 emphasizes learner-centered approaches that resonate with traditional Indian methods such as dialogue, debate, observation, and practical engagement. The establishment of institutions and centers dedicated to IKS, along with encouragement for research, documentation, and innovation, reflects the policy's commitment to knowledge continuity and renewal. Importantly, NEP 2020 positions Indian Knowledge Systems as complementary to modern scientific knowledge, fostering critical thinking rather than blind traditionalism. Overall, the role of NEP 2020 in promoting Indian Knowledge Systems lies in its effort to create a balanced educational framework that integrates tradition with modernity. By embedding IKS within curriculum and pedagogy, the policy aims to nurture culturally confident, ethically grounded, and intellectually versatile learners capable of addressing contemporary global challenges while remaining rooted in India's civilizational wisdom.

Keywords: NEP 2020; Indian Knowledge Systems; Curriculum Reform; Pedagogy; Indigenous Knowledge; Holistic Education.

Introduction-The National Education Policy (NEP) 2020 marks a significant shift in India's educational philosophy by emphasizing the integration of Indian Knowledge Systems (IKS) into curriculum design and pedagogical practices. Indian Knowledge Systems represent a vast and diverse body of indigenous knowledge encompassing philosophy, science, mathematics, medicine, ecology, linguistics, art, culture, and ethics developed over millennia. Recognizing the historical marginalization of indigenous epistemologies during the colonial period, NEP 2020 seeks to restore epistemic balance by valuing India's civilizational knowledge traditions alongside modern scientific approaches (Ministry of Education [MoE], 2020).

A central objective of NEP 2020 is to promote a holistic, multidisciplinary, and culturally rooted education system. The policy advocates the inclusion of local knowledge, traditional practices, and classical languages such as Sanskrit, Pali, Prakrit, and regional languages as carriers of indigenous wisdom. By encouraging experiential learning, storytelling, debate, and inquiry-based methods drawn from traditional pedagogies like *Gurukul* and *Shravana–Manana–Nididhyasana*, NEP 2020 aims to make learning more contextual, reflective, and value-oriented (Sharma, 2021). This pedagogical shift aligns with the policy's broader goal of fostering critical thinking, ethical reasoning, and creativity among learners.

Furthermore, NEP 2020 envisions Indian Knowledge Systems as a means to strengthen national identity while preparing learners for global engagement. The establishment of IKS research centers, integration of traditional ecological and medical knowledge, and encouragement of interdisciplinary studies highlight the policy's commitment to knowledge pluralism (Aithal & Aithal, 2020). In this context, the role of NEP 2020 in promoting Indian Knowledge Systems is not merely additive but transformative, seeking to redefine curriculum and pedagogy in ways that are inclusive, sustainable, and rooted in India's intellectual heritage.

Education is not merely a means of acquiring skills but a powerful instrument for shaping cultural identity, social values, and intellectual traditions. In India, the education system inherited during the colonial period largely marginalized indigenous knowledge systems, privileging Western epistemologies and frameworks. This resulted

in a disconnect between education and the country's civilizational heritage.The National Education Policy (NEP) 2020 represents a landmark attempt to address this historical imbalance. For the first time since independence, a comprehensive policy explicitly acknowledges the importance of Indian Knowledge Systems (IKS) and emphasizes their integration into curriculum and pedagogy. NEP 2020 envisions education as a means of fostering holistic development—intellectual, ethical, emotional, and cultural—by reconnecting learners with India's rich traditions of knowledge.

This paper examines the role of NEP 2020 in promoting Indian Knowledge Systems, focusing on curriculum reform, pedagogical transformation, and the broader implications for higher education and society.

Conceptual Understanding of Indian Knowledge Systems-Indian Knowledge Systems refer to the vast body of knowledge developed in the Indian subcontinent over millennia. These systems encompass diverse domains such as philosophy, mathematics, astronomy, medicine, agriculture, ecology, linguistics, governance, arts, and architecture. Rooted in texts like the Vedas, Upanishads, Arthashastra, Charaka Samhita, and works of medieval scholars, IKS also include folk traditions, tribal wisdom, and local practices transmitted orally across generations.

Indian Knowledge Systems (IKS) represent a cumulative body of knowledge developed in the Indian subcontinent over millennia, encompassing philosophy, science, mathematics, medicine, ecology, linguistics, art, governance, and pedagogy. Rooted in indigenous epistemologies, IKS emphasize holistic understanding, experiential learning, ethical living, and harmony between humans and nature (Nair, 2020). Unlike Eurocentric knowledge traditions that prioritize compartmentalization and positivist methodologies, Indian knowledge traditions advocate integrative, interdisciplinary, and value-based approaches to learning.

Conceptually, IKS is grounded in principles such as *Pramāṇa* (means of knowledge), *Śruti* and *Smṛti* traditions, *Gurukul* pedagogy, and dialogical learning methods such as *Śāstra–Artha–Samvāda*. Knowledge in the Indian tradition is viewed not merely as information acquisition but as a transformative process (*Vidya*) leading to self-realization and social responsibility (Radhakrishnan, 1951). This epistemological framework aligns education with moral, spiritual, and civic dimensions of human development.

The National Education Policy (NEP) 2020 marks a significant paradigm shift by formally recognizing Indian Knowledge Systems as an integral component of modern education. NEP 2020 envisions education as a means to reconnect learners with India's civilizational heritage while fostering critical thinking, creativity, and global competence (Ministry of Education [MoE], 2020). It explicitly calls for the integration of IKS across disciplines rather than confining it to history or cultural studies.

In curriculum design, NEP 2020 promotes the inclusion of traditional knowledge in subjects such as mathematics (Vedic mathematics), science (ancient metallurgy, astronomy, and ecology), medicine (Ayurveda and Yoga), environmental studies (indigenous conservation practices), and social sciences (ancient governance and ethics). This integration aims to contextualize learning within local knowledge systems, thereby enhancing relevance, cultural rootedness, and cognitive engagement among students (Sharma, 2021).

Pedagogically, NEP 2020 encourages experiential, inquiry-based, and multidisciplinary learning approaches that resonate with traditional Indian pedagogical practices. Methods such as storytelling, debate (*Shastrartha*), observation, apprenticeship, and community-based learning mirror the *Guru–Shishya* tradition and support deeper conceptual understanding. The policy also emphasizes learning in the mother tongue or regional languages during the foundational years, recognizing language as a crucial medium for transmitting indigenous knowledge (Kumar, 2019).

Furthermore, NEP 2020 supports institutional mechanisms such as the establishment of IKS centers, incorporation of Sanskrit and classical languages, and capacity-building programs for teachers. These initiatives aim to legitimize indigenous knowledge within formal education structures and counter historical marginalization caused by colonial education models (Altbach, 2014). By doing so, NEP 2020 positions IKS not as a nostalgic revival but as a dynamic and evolving knowledge system relevant to contemporary challenges.

In essence, the conceptual framework of IKS under NEP 2020 reflects an epistemic decolonization of education. It seeks to balance tradition with modernity by integrating indigenous wisdom with scientific temper and global knowledge systems. The promotion of Indian Knowledge Systems through curriculum and pedagogy thus contributes to culturally responsive education, national identity formation, and sustainable development in the 21st century.

Objective of the Study-To analyze the policy provisions of NEP 2020 that emphasize the inclusion of traditional, indigenous, and local knowledge systems within school and higher education curricula

To explore how NEP 2020 encourages experiential, practice-based, and value-oriented learning methods inspired by Indian pedagogical traditions such as *Gurukul*, *Shravana*, *Manana*, and *Nididhyasana*

Methodology of the Study-The present study adopts a

qualitative, descriptive, and analytical research design to examine the role of the National Education Policy (NEP) 2020 in promoting Indian Knowledge Systems (IKS) within curriculum and pedagogy at school and higher education levels.

Research Design-The study is primarily based on a documentary and interpretative research approach. It aims to critically analyze policy texts and related academic literature to understand how NEP 2020 conceptualizes, integrates, and operationalizes IKS in contemporary education.

Sources of Data-The study relies exclusively on secondary data, collected from the following sources:

- Official policy documents, especially the National Education Policy 2020 issued by the Government of India
- Reports and guidelines released by the Ministry of Education, UGC, NCERT, and IKS Division, AICTE
- Books, edited volumes, research articles, and review papers on Indian Knowledge Systems, indigenous education, and traditional pedagogical practices
- Conference proceedings, working papers, and credible academic websites related to curriculum reforms and pedagogy

Methods of Data Collection-Relevant documents were identified through systematic searches of academic databases such as Google Scholar, ERIC, JSTOR, and official government portals. Keywords such as *NEP 2020*, *Indian Knowledge Systems*, *indigenous knowledge*, *curriculum reform*, *experiential learning*, and *traditional pedagogy* were used for data collection.

Method of Data Analysis-The collected data were analyzed using qualitative content analysis and thematic analysis. Policy provisions related to IKS were coded and categorized under themes such as:

- Integration of traditional and indigenous knowledge in curricula
- Pedagogical approaches inspired by Indian traditions (e.g., experiential learning, value-based education)
- Language, culture, and local knowledge in education

Teacher education and institutional mechanisms for IKS promotion

Interpretative analysis was employed to link these themes with broader educational objectives such as holistic development, cultural sustainability, and epistemic diversity.

Scope of the Study-The study focuses on the conceptual and policy-level dimensions of NEP 2020 and does not include empirical fieldwork or primary data collection. It covers both school and higher education, with special emphasis on curriculum design and pedagogical transformation. Ethical Considerations As the study is based on secondary data, no direct ethical risks are involved. All sources have been duly acknowledged, and academic integrity has been maintained by avoiding plagiarism and ensuring proper citation.

Limitations

The study is limited by its reliance on secondary sources and policy documents. The actual implementation and ground-level impact of NEP 2020 on IKS integration are beyond the scope of the present research.

Discussion

NEP 2020: A Paradigm Shift in Educational Philosophy-NEP 2020 marks a decisive shift from rote-based and examination-oriented learning towards competency-based, multidisciplinary, and value-oriented education. One of its most distinctive features is the explicit recognition of India's knowledge heritage as a foundational element of education.

The policy acknowledges that a sustainable and meaningful education system must be rooted in local culture while remaining open to global knowledge. By advocating the integration of Indian Knowledge Systems, NEP 2020 challenges the long-standing dominance of Eurocentric models and promotes epistemic diversity. This shift has important sociological implications, as it seeks to democratize knowledge and validate indigenous and marginalized ways of knowing.

Integration of Indian Knowledge Systems in Curriculum-NEP 2020 emphasizes that Indian Knowledge Systems should be embedded within mainstream curricula rather than treated as peripheral or optional subjects. At the school level, this includes the introduction of Indian contributions to mathematics, science, philosophy, and environmental studies. At the higher education level, universities are encouraged to offer courses, minors, and majors focusing on IKS.

The policy promotes interdisciplinary curriculum design, enabling students to explore connections between traditional knowledge and contemporary disciplines. For example, Ayurveda can be studied alongside modern medical science, or ancient Indian ecological practices can inform sustainable development studies. Such integration enhances conceptual clarity and demonstrates the contemporary relevance of traditional knowledge.

Pedagogical Approaches Rooted in Indian Traditions

Pedagogy is central to the successful integration of Indian Knowledge Systems. NEP 2020 advocates learner-centered, inquiry-based, and experiential pedagogies that resonate with traditional Indian methods of teaching and learning. Ancient systems such as the Gurukul emphasized dialogue (samvada), debate (shastrartha), observation, and practical engagement—approaches that align closely with modern constructivist pedagogy.

The policy encourages the use of storytelling, case studies, project-based learning, and community engagement

to make learning meaningful and contextual. Such pedagogical practices not only enhance cognitive development but also foster ethical sensitivity, empathy, and social responsibility.

Role of Language and Multilingualism-Language plays a crucial role in the transmission of knowledge. NEP 2020 strongly advocates education in the mother tongue or regional languages, especially at the foundational and primary levels. This approach facilitates better comprehension and allows students to access traditional knowledge embedded in local languages and cultural practices.

Multilingualism also enables learners to engage with classical languages such as Sanskrit, Pali, Prakrit, and Tamil, which serve as repositories of Indian Knowledge Systems. By strengthening linguistic diversity, NEP 2020 enhances cultural continuity and intellectual depth.

Institutional Support and Research Promotion-NEP 2020 emphasizes the establishment of dedicated centers and institutions for the study, research, and dissemination of Indian Knowledge Systems. These centers are expected to undertake documentation, digitization, translation, and critical analysis of traditional knowledge.

The policy also encourages collaboration between traditional scholars and modern academics, fostering innovation while maintaining academic rigor. Research in IKS is envisioned not as a nostalgic exercise but as a dynamic field capable of contributing to contemporary challenges such as climate change, public health, and ethical governance.

Indian Knowledge Systems and Modern Science: A Complementary Relationship-A significant contribution of NEP 2020 lies in its balanced approach to tradition and modernity. The policy does not advocate uncritical glorification of the past; instead, it positions Indian Knowledge Systems as complementary to modern scientific knowledge. By encouraging critical inquiry, evidence -based analysis, and interdisciplinary dialogue, NEP 2020 ensures that traditional knowledge is evaluated, refined, and adapted to contemporary contexts. This approach fosters scientific temper while preserving cultural rootedness.

Challenges in Implementation-Despite its progressive vision, the implementation of IKS under NEP 2020 faces several challenges. These include a shortage of trained teachers, lack of standardized curriculum frameworks, limited availability of quality textbooks, and the risk of ideological misuse.

Addressing these challenges requires sustained investment in teacher training, academic research, and institutional capacity-building. Ensuring inclusivity and academic objectivity is essential to prevent the politicization of knowledge.

Finding-The *National Education Policy (NEP) 2020* marks a strategic shift towards embedding Indian Knowledge Systems (IKS) into formal education, recognizing the historical marginalization of indigenous wisdom. NEP 2020 explicitly calls for the integration of Indian Knowledge Systems—including tribal knowledge, traditional ways of learning, and local knowledge—across curricula at school and higher education levels (NEP 2020 policy provision). This integration spans humanities, sciences, arts, crafts, sports, and ecological practices, ensuring a breadth of cultural contexts are reflected in academic content. For example, the policy encourages the inclusion of elective IKS courses in secondary schools and institutional strengthening of Indian languages, Indology, philosophy, and traditional arts in higher education, embedding indigenous perspectives within disciplinary curricula. Such provisions indicate a deliberate effort to bridge indigenous and mainstream knowledge frameworks, fostering cultural continuity and expanding epistemic diversity in education (Government of India, Ministry of Education, 2026; Grokipedia, 2026).

Further, NEP 2020 proposes practical learning initiatives—such as heritage tours under *Ek Bharat Shrestha Bharat*—that enable students to engage directly with local traditions, indigenous practices, and scientific contributions of diverse Indian regions, enhancing appreciation for context-specific knowledge (Grokipedia, 2026). This demonstrates policy recognition that learning rooted in local ecological and cultural realities strengthens learners' understanding of heritage and contemporary relevance.

NEP 2020 institutionalizes the inclusion of traditional, indigenous, and local knowledge systems through curriculum mandates, strengthened academic structures, and context-sensitive learning experiences that promote cultural pride, identity, and relevance in modern education. NEP 2020 emphasizes experiential and practice-based learning as foundational pedagogical strategies, aligning closely with traditional Indian methods such as *Shravana* (listening), *Manana* (reflection), and *Nididhyasana* (deep internalization). Indigenous pedagogical values—rooted in mentorship, co-existence with knowledge practices, and holistic learning—are echoed in modern policy frameworks that advocate hands-on exploration, community learning, and reflective engagement with content (International Journal for Multidisciplinary Research, 2025). These traditional elements resonate with contemporary constructivist and experiential learning theories, showcasing continuity between age-old Indian educational philosophies (e.g., guru–shishya parampara) and the curriculum reforms proposed by NEP 2020.Moreover, NEP 2020 promotes arts-integrated and culture-based pedagogies that transcend

rote memorization, supporting value-oriented learning that cultivates ethical reasoning, emotional intelligence, and holistic development. Arts, yoga, music, and indigenous games are incorporated not merely as subjects but as culturally embedded methods fostering experiential engagement and reflection, consistent with Indian pedagogical traditions of immersive learning (NEP 2020 policy provision; Grokipedia, 2026). Teacher training and capacity building in IKS further ensure educators are equipped to implement experiential and reflective approaches effectively, facilitating deeper internalization of values beyond surface-level learning.

The policy's emphasis on experiential, practice-based, and value-oriented learning reflects ancient Indian pedagogical ideals, promoting a transformative learning paradigm where knowledge is lived, practiced, and internalized.

Conclusion-The National Education Policy 2020 represents a transformative step in reimagining Indian education by integrating Indian Knowledge Systems into curriculum and pedagogy. By reconnecting education with India's civilizational heritage, the policy seeks to nurture learners who are culturally confident, ethically grounded, and intellectually versatile.The role of NEP 2020 in promoting Indian Knowledge Systems lies not merely in curriculum reform but in redefining the purpose of education itself. By harmonizing tradition with modernity, the policy aspires to create a holistic education system capable of addressing contemporary global challenges while remaining rooted in India's timeless wisdom.

****

References

1.Aithal, P. S., & Aithal, S. (2020). *Analysis of the Indian National Education Policy 2020 towards achieving its objectives*. International Journal of Management, Technology, and Social Sciences, 5(2), 19–41. https://doi.org/10.47992/ijmts.2581.6012.010
2.Altbach, P. G. (2014). *Global perspectives on higher education*. Johns Hopkins University Press.
3.Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.
4.Kumar, K. (2005). Political Agenda of Education. New Delhi: Sage Publications.
5.Kumar, K. (2019). *Education and social change in South Asia*. Orient BlackSwan.
6.Ministry of Education. (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India. https://www.education.gov.in
7.Ministry of Education. (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
8.Nair, S. (2020). Indian knowledge systems and the modern world. *Journal of Indian Philosophy and Culture, 34*(2), 45–60.
9.Nussbaum, M. (2010). Not for Profit: Why Democracy Needs the Humanities. Princeton University Press.
10.Radhakrishnan, S. (1951). *Indian philosophy* (Vol. 1). George Allen & Unwin.
11.Radhakrishnan, S. (1951). Indian Philosophy. London: George Allen & Unwin.
12.Sen, A. (2005). The Argumentative Indian. New Delhi: Penguin.
13.Sharma, R. (2021). Indian knowledge systems and the National Education Policy 2020: Reclaiming indigenous epistemologies. *Journal of Indian Education*, 47(3), 1–15.
14.Sharma, R. (2021). Reimagining curriculum through Indian knowledge systems under NEP 2020. *University News, 59*(32), 12–18

भारतीय ग्यान परंपरा तथा हिन्दी साहित्य

डॉ. सुधामणि एस.
सह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
सरकारी रामनारायण चेल्लाराम वाणिज्य तथा प्रबंध महाविद्यालय,रेस कोर्स रोड, बेंगळूरु. 560001
मो- 8971843352 ईमेल; sudhamani905@gmail.com

प्रस्तावना: भारती ग्यान परंपरा वैदिक काल से प्रचलित है। भारत देश अनेक परंपराओं और संस्कृतियों का देश है। हमारी भारतीय संस्कृती और सभ्यता ने सदियों से विग्यान, गणित, खगोल, चिकित्सा, आयुर्वेद, दर्शन जैसे अनेक क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय ग्यान प्रणाली हजारों वर्षों से विकसित वैदिक परंपराओं, दर्शन, विग्यान, कला और स्वदेशी प्रथाओं का एक विशाल संग्रह है। काव्य और शास्त्र दोनो ही भारतीय ग्यान परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। वेद भारतीय संस्कृती, ग्यान और सभ्यता का मूल है। भारतीय ग्यान परंपरा का निर्वाह करते हुए अपने पथ पर अग्रसर है। भारतीय ज्ञान परंपरा (वेद, उपनिषद, दर्शन) हिंदी साहित्य की आधारशिला है, जो आध्यात्मिकता, नैतिकता, और सामाजिक मूल्यों को साहित्य में प्रवाहित करती है। भक्ति काल में कबीर-तुलसी से लेकर आधुनिक काल तक, इस परंपरा ने भारतीय संस्कृति को संरक्षित किया। यह साहित्य जीवन दर्शन, योग, और समन्वय के साथ-साथ समाज को सुदृढ़ सांस्कृतिक पहचान प्रदान करता है।

बीजक शब्द : आध्यात्कता, नैतिकता, साहित्य, दार्शनिक, सांस्कृतिक भारतीय ग्यान परंपरा और हिन्दी साहित्य के मुख्य बिंद

सांस्कृतिक धरोहर: यह साहित्य को सांस्कृतिक और दार्शनिक जड़ों से जोड़कर आध्यात्मिकता, नैतिकता और जीवन के गूढ़ रहस्यों को प्रस्तुत करता है। भक्ति साहित्य का योगदान: संत कवियों (कबीर, तुलसीदास, मीराबाई) ने लोकभाषा में भक्ति और ज्ञान का प्रसार किया, जिससे ज्ञान विद्वानों से निकलकर जनसामान्य तक पहुँचा।

दार्शनिक धाराएं: जैन, सिद्ध और नाथ साहित्य ने योग, हठयोग, अहिंसा और सामाजिक आडंबरों के विरोध के माध्यम से हिंदी भाषा को आकार दिया।

सामाजिक समरसता: यह परंपरा सहिष्णुता, प्रेम, समानता और भाईचारे का संदेश देती है, जो आज भी प्रासंगिक है।

आधुनिक साहित्य में छाप: प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु और अन्य लेखकों के साहित्य में प्राचीन ज्ञान परंपरा, लोकजीवन, और नैतिकता के तत्व स्पष्ट रूप से मिलते हैं।

सांस्कृतिक पहचान: भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रवाह हिंदी साहित्य को एक विशिष्ट पहचान और गहराई प्रदान करता है, जो उसे अपनी समृद्ध विरासत से जोड़े रखती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा न केवल हिंदी साहित्य के विषय-वस्तु को समृद्ध करती है, बल्कि यह साहित्य के माध्यम से समाज को एक स्वस्थ और कल्याणकारी दिशा भी प्रदान करती है। भारतीय ग्यान परंपरा अत्यंत विशाल एवं समृद्ध है। भारतीय ग्यान परंपरा के आधार पर ही संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंष भाषाओं का उगम हुआ । भारतीय ग्यान परंपरा विकसित होते भक्तिकाल में सर्वाधिक तीव्रता से अभिव्यक्त हुई है। तुलसी, सूरदास महाकवियों ने भक्ति का महत्व, जीवन का आदर्श, सार्थकता को सामान्य जनता तक पहुंचाया। भारतीय ग्यान परंपरा का विकसित रूप गद्य, कविता, नाटक, उपन्यास, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज जनता को नवीन चेतना, जागरूकता और सजगता की ओर ले जाती है। विभिन्न भाषायें तथा उनकी विभिन्न संस्कृतियों को भारतीय ग्यान परंपरा ने मोतियों के माला रूप में बांधा है।

हिन्दी भाषा ने अपनी सरसता, सफलता, सुगमता, तथा, सशक्तता से विश्व को अलौकिक कर दिया है। भारतीय परम्परा में संपूर्ण रीती से देखा जाए तो "शास्त्र (विज्ञान, दर्शन, इतिहास आदि), काव्य (शास्त्रों से इतर) यदि शास्त्र. और काव्य में अन्तर किया जाए तो शास्त्र की भाषा रिजु (सीधी), काव्य की भाषा वक्र (व्यंजना पूर्ण) होती है।

भारतीय ग्यान परंपरा में गुरू-शिष्य संबंध को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। गुरुकुल परंपरा में शिष्य, गुरू की आग्या के अनुसार ग्यान की विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते थे। विभिन्न क्षेत्रों में अनुशासन तथा नियमों का स्वीकार करते हुए अपना जीवन यापन करते थे। कबीर के अनुसार गुरू, गोविंद में, पहले गुरू को ही महत्व दिए है क्योंकि गुरू ही गोविंद का अस्तित्व बताते है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में हिंदी साहित्य की मुख्य भूमिका:

ज्ञान का लोक-व्यापीकरण: हिंदी साहित्य ने संस्कृत के दार्शनिक, धार्मिक (जैसे- रामायण, महाभारत) और वैज्ञानिक ज्ञान को सरल भाषा में प्रस्तुत किया, जिससे यह ज्ञान आम जनता तक पहुँचा।

सांस्कृतिक व ऐतिहासिक संरक्षण: हिंदी साहित्य ने भारतीय परंपराओं, रीति-रिवाजों और इतिहास को सहेजकर अगली पीढ़ियों तक पहुँचाया।

नैतिकता और आध्यात्मिकता का प्रसार: भक्तिकाल (कबीर, तुलसी, सूर, मीरा) ने भक्ति, नीति, और आत्म-समर्पण के माध्यम से भारतीय आध्यात्मिक परंपरा को समृद्ध किया।

सामाजिक सुधार और चेतना: साहित्य ने जाति-पाँति, धार्मिक आडंबरों और रूढ़ियों पर चोट कर सामाजिक एकता और नैतिकता का संदेश दिया।

राष्ट्रीय चेतना: आधुनिक काल में हिंदी साहित्य ने राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता संग्राम, और सामाजिक समरसता को बढ़ावा दिया।

भारतीय ज्ञान परंपरा (वेदों, उपनिषदों, दर्शन, योग, आयुर्वेद) प्राचीन, सनातन और समृद्ध है, जिसने हिंदी साहित्य को वैचारिक, नैतिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान किया है। हिंदी साहित्य (भक्ति, रीती, आधुनिक) ने इस ज्ञान को लोकभाषा में प्रस्तुत कर जन-जन तक पहुँचाया और सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को जागृत कर उसे संरक्षित व गतिशील रखा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य के प्रमुख आयाम:

प्राचीन दर्शन का प्रभाव: हिंदी साहित्य की विषय-वस्तु (विशेषकर भक्ति काल में) वेदों, उपनिषदों और पुराणों के दार्शनिक विचारों (जैसे- आत्मा, परमात्मा, माया) से गहराई से प्रेरित है।

भक्ति आंदोलन और ज्ञान का प्रसार: कबीर, तुलसीदास, मीराबाई, रैदास और गुरु नानक जैसे संत कवियों ने ज्ञान, प्रेम और समानता का संदेश लोकभाषा (हिंदी) में दिया, जिससे ज्ञान केवल विद्वानों तक सीमित न रहकर आमजन तक पहुँचा।

नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य: हिंदी साहित्य ने भारतीय संस्कृति के मूलभूत संस्कारों (कर्म, धर्म, त्याग) को कविताओं, कथाओं और नाटकों के माध्यम से जीवंत रखा।

आधुनिक युग में पुनर्जागरण: आधुनिक हिंदी साहित्य (प्रेमचंद, दिनकर, पंत) ने भारतीय ज्ञान को आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत किया और स्वतंत्रता, सामाजिक सुधार और राष्ट्रवाद की भावना को प्रोत्साहित किया।विविध विधाओं में झलक: रासो साहित्य (वीरता), सूफी काव्य (प्रेम), और आधुनिक उपन्यासों में भारतीय इतिहास, दर्शन और लोकजीवन का अद्भुत संगम मिलता है।

संक्षेप में, हिंदी साहित्य ने भारतीय ज्ञान परंपरा के वाहक के रूप में काम किया है, जो इसे केवल एक इतिहास न बनाकर जीवन पद्धति के रूप में प्रस्तुत करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा सदियों से सांस्कृतिक, दार्शनिक और सामाजिक विचारों का भंडार रही है। हिंदी साहित्य ने इस परंपरा में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है, जो न केवल ज्ञान के संचार का माध्यम बना बल्कि आमजनता तक ज्ञान पहुंचाने का साधन भी रहा। हिंदी साहित्य के माध्यम से विभिन्न शास्त्रीय, धार्मिक, लोक और आधुनिक विषयों का संवहन हुआ है, जिसने भारतीय समाज को उसकी पहचान दी। हिंदी साहित्य ने भारतीय इतिहास में न केवल पौराणिक कथाओं और धार्मिक ग्रंथों का प्रचार किया, बल्कि इसे लोकभाषा में प्रस्तुत कर इसका प्रभाव व्यापक बनाया। ज्ञान और संस्कृति के विभिन्न आयाम हिंदी कविताओं, कथाओं, नाटकों, और निबंधों में व्यक्त हुए हैं। विशेष रूप से भक्ति आंदोलन और आधुनिक युग में हिंदी साहित्य ने सामाजिक सुधार, शिक्षा, और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी भाषा में आचार्यों, विद्वानों और साहित्यकारों ने अपने ग्रंथों, रचनाओं से भारतीय दार्शनिकता, विज्ञान और नैतिकता को परिलक्षित किया है।

इस प्रकार, हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का एक अभिन्न और प्रभावशाली अंग रहा है जिसने सामाजिक एकता, सांस्कृतिक समृद्धि, और वैचारिक जागृति में योगदान दिया है। यह आज भी ज्ञान का स्रोत होते हुए हमें हमारी सांस्कृतिक विरासत से जोड़ता है और नए विचारों के विकास का माध्यम है।

निष्कर्ष : साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्यकार समाज का दर्पणकार है। सहित्यकार अपनी साहित्य के द्वारा समाज को उत्तम पथ पर ले जाने क प्रयास करता है। भारतीय ग्यान परंपरा वेदों, उपनिषदों विभिन्न कलाओं का संगम है। भारतीय ग्यान परंपरा में हिन्दी साहित्य का देन महत्वपूर्ण माना गया है। हिन्दी भाषा के विभिन्न साहित्यकारों ने अपने विभिन्न साहित्य विधाओं द्वारा समाज को प्रगतिपथ पर ले जाने का प्रयास की है।

****

संदर्भ सूची :

1)https://www.google.com/search?q=bhartiya+gyan+parampara+our+hindi+sahitya&rlz=1C1GIGM_enIN973IN973
2) 1&oq=&aqs=chrome.0.35i39i362l2j35i39i362i813j35i39i362l3j35i39i
3) indijournal.com/assets/archives/2024/vol10issue4/10059.pdf
4) oogle.com/search?sca_esv=21a6b12fa57c4177&rlz=1C1GIGM_enIN973IN973&sxsrf=ANbL-n6WS-lOF5LwmjjeIuc8xtCt0sRM0Q:1774376312341&q=भारतीय+ज्ञान+परंपरा

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

Indigenous Knowledge, Tribal Mobilization, and Green Innovation: A Holistic Approach Towards Development

Mr. Sachidananda Rath
Research Scholar (Sociology),
Rabindranath Tagore University, Bhopal Chiklod Road, Raisen, M.P.

Prof. (Dr.) Usha Vaidya
Research Guide and Professor of Sociology,
Department of Humanities and Liberal Arts, Rabindranath Tagore University, Bhopal Chiklod Road, Raisen, M.P.

Abstract: In line with the One Health concept, this study aimed to assess the long-term impact of the industrialization of mining in the tribal areas of Rayagada district, Odisha, on public knowledge and policymakers' knowledge. These areas have been inhabited by tribal people in the hills and forests for generations. The indigenous people have faced significant challenges in their lives, battling various health issues and struggling to access basic education for literacy, employment, and other essential needs. A fresh attempt to revive the bauxite mining project by Vedanta's refinery in the eco-sensitive areas has triggered a new round of mobilization by local tribals and the state machinery. It is pertinent to note that the mining area is a pristine ecosystem under severe threat from industrialization. There have been many explorations about their native networks, their living space, life, conviction, dissent, and so forth; however, there seems to be a research gap between the possible issues of tribal problems and the offsite mining areas affecting economic, cultural, livelihood, education, health, and other conditions etc. The objective of this study is to examine concerns related to their natural livelihood, as well as the impact on life on land, peace, and justice resulting from industrialization. An analytical approach is employed as a starting point for further research and discussion on the economic, sociological, ecological, and cultural significance of tribal peoples, as well as decisions related to their management and conservation, to validate the objectives and analyze developments and issues. Keeping the activities in mind, the Government has been implementing various schemes in the interest of tribals to promote their upliftment through green innovation and to address their problems. The outcomes of this research can offer potential benefits to tribal people and policymakers.

Key Words: Industrialization, Livelihood, Odisha, Health, Tribal, Niyamgiri.

Introduction: Indigenous knowledge plays a central role in shaping tribal mobilization in Odisha, particularly among communities such as the Dongria Kondh, Juang, Saura, and Kandha. Their traditional ecological wisdom, land-use practices, sacred geography, and community-led governance systems form the foundation of collective identity and resistance. In recent decades, attempts to alter or exploit tribal landscapes—through mining, deforestation, and development projects—have led to strong mobilization movements rooted in the protection of indigenous knowledge and cultural heritage. Tribal organizations and youth groups have increasingly used both traditional methods of consensus-building and modern platforms of advocacy to assert rights over land, forests, and resources. This convergence of inherited wisdom and contemporary activism highlights how knowledge indigenous system not only preserves cultural continuity but also empowers tribal communities in Odisha to negotiate equitable development and safeguard their socio-ecological future.

The tribal population around Niyamgiri hill in the Rayagada district of Odisha, majorly relies on the natural resources of the hill for their traditional means of subsistence and believe in preserving the natural environment and their traditional values, forests, water, land, and other natural resources crucial for survival; the local tribes regard the forest and hill as a place of worship. Mining and industrial activities have caused significant losses to livelihoods, the natural environment, the ecological system, water resources, and animals, directly hindering the preservation of their traditional rights since the time of their ancestors. These activities also negatively impacted their cultural, religious beliefs, language, and holiness. The opposition to development projects by the tribals is primarily attributed to land acquisition, loss of livelihood, social inequality, health concerns, deforestation, displacement, environmental damage, and the loss of autonomy in agriculture, cultivation, and forest management. Resistance initially originated to support their livelihoods and biodiversity and later evolved into a protest cemented by environmentalists and human rights advocates at the national and international political levels. Due to ongoing land acquisition and alienation by state governments and investors, the situation surrounding tribal territories has become volatile. Irrespective of caste,

class, gender, and ethnicity, the tribal people would be compelled to protest the mining operations and industrialization.

Source: Google Map

Literature Reviews: The relevant literature reviews conducted from different sources are fundamentally supportive of analyzing the current development of this research.

"Studies from the Scheduled Castes and Scheduled Tribes Research and Training Institute (SCSTRTI) show that the photographic handbooks on Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs) serve as valuable visual records of Odisha's tribal life. These handbooks not only support academic research but also help development workers, policymakers, and visitors understand the cultural practices and lived realities of PVTGs in a simple and accessible way."

"Sahu (2008) highlights the conflict between industrial expansion and indigenous survival in the Niyamgiri region. His analysis reveals how corporate mining interests, backed by state mechanisms, compromise the ecological balance, cultural identity, and livelihood of the Dongria Kondh. This work underscores the role of tribal mobilization in resisting environmentally and socially harmful development projects."

"Nayak (2009) examines educational progress among tribal villages in Odisha and notes that although some improvement has occurred since independence, overall development remains uneven. His study argues that despite multiple governmental initiatives, tribal communities continue to face educational and socio-economic gaps, indicating the need for more inclusive and culturally rooted development strategies."

"Saxena et al. (2010) conducted a detailed committee investigation into the Niyamgiri mining proposal, assessing how the project would affect Forest Rights Act implementation, displacement risks, cultural survival of the Dongria Kondh, and the overall ecological balance of the region. Their report emphasized the deep cultural and environmental vulnerabilities of the area and highlighted serious shortcomings in the planning and approval process for mining." "Padel and Das (2010) emphasize that tribal ecological knowledge—particularly among the Dongria Kondh—forms the backbone of community-led mobilization against mining projects in regions like Niyamgiri. Their research shows that traditional beliefs associated with sacred hills, forest management practices, and clan-based decision-making systems strengthen solidarity and enable organized **protest movements."**

"Jena (2013) documented the historic decision of twelve gram sabhas in Rayagada and Kalahandi districts that unanimously rejected the proposed bauxite extraction in Niyamgiri. Her study shows how grassroots democratic participation strengthened tribal voices and set a national precedent for community consent in resource governance."

"Behera (2014) highlighted the significance of indigenous knowledge in sustaining cultural, ecological, and economic life among tribal communities in Rayagada. His study stressed that traditional practices, biodiversity preservation, and spiritual beliefs together form the foundation of sustainable livelihoods, especially at a time when deforestation and resource depletion threaten tribal ecosystems."

"Borde (2017) examined how both local and global activists strategically represented Dongria Kondh religiosity during the Niyamgiri movement. Her analysis shows that these representations created international visibility for the tribe's sacred connection to Niyamgiri, enabling the community to challenge powerful economic and political interests and successfully resist mining."

"Bal (2020) provided a critical assessment of how development-induced industrialization generates environmental degradation and, consequently, mass protest movements. His analysis illustrates the interconnected nature of development pressures, ecological threats, and people's resistance—especially visible in tribal regions facing extractive industries."

"Rout (2022) explored the Niyamgiri resistance as a model of contemporary environmental activism that connects local struggles with global networks. His study explains how a village-level movement over land and livelihood evolved into a transnational campaign, demonstrating the power of alliances between tribal communities and international organizations in addressing ecological issues."

Objective:

1. To examine how indigenous knowledge systems influence tribal mobilization efforts in Odisha, particularly in the context of protecting land, culture, and natural resources.
2. To examine concerns related to their natural livelihood, as well as the impact on life on land, peace, and justice resulting from industrialization.

Methodology of the Study:-The present study aims to focus on the ecological perspective, which advocates for the conservation of the environment, and the

developmental perspective to provide a more comprehensive understanding of the internal dynamics of the state, government policies, and dominance of environment in the area. The theoretical portion of this study within the paradigm of environmental sociology and its linkages to development, discourse, and social movement, would serve as the basic structure for this study. The data are collected for environmental studies, practical purposes, and qualitative methods are favoured with a major focus on movement. The proposed study will be based on primary and secondary sources of data. Participation and observation in village life, informal discussions, and free flow of interviews would provide great support in enriching the analysis. The study will explore secondary sources, including available literature such as books, articles, journals, newspaper reports, Government databases/reports, publications, e-sources, vernacular and library sources. The collection of data would primarily be from primary sources, collected firsthand through convenient sampling, surveys, interviews, questionnaires, and observations.

The study will primarily employ qualitative research methods and quantitative data will also be used in some instances to support arguments. Since the tribal people speak typical indigenous language hence, they also need to be 'interpreted'. The study will employ both explanatory and descriptive analytical tools to generate a clear understanding of the problem. Descriptive research focused on providing a detailed and systematic understanding of the current situation, perceptions, attitudes, and experiences of local communities in relation to mining activities and development.

Analysis:

Analysis of village-wise population (Table 1), so far, data collected:

Village Name	Block	Tehsil	District	
Serkapadi	Muniguda	Muniguda	Rayagada	
Total Houses	Population (Age group)	Male	Female	Total
30	Below 18 Yrs	Total= 20	Total =10	30
		1) Below 10th Class =14 (Literate=14)	1) Below 10th Class =06 (Literate=06)	
		2) 10th = 0	2) 10th =0	
		3) 10th to 12th/ITI=0	3) 10th to 12th/ITI=0	
		4) Above graduation=0	4) Above graduation=0	
		5) Illiterate =06	5) Illiterate =04	
	18-28 Years	Total =15	Total =20	35
		1) Below 10th Class = 09 (Literate=09)	1) Below 10th Class= 19 (Literate=19)	
		2) 10th= 02 (Literate=02)	2) 10th = 01 (Literate=01)	
		3) 10th to 12th/ITI=04 (Literate=04)	3) 10th to 12th/ITI=0	
		4) Above graduation=0	4) Above graduation=0	
		5) Illiterate =0	5) Illiterate =0	
	29-39 Years	Total =12	Total =10	22
		1) Below 10th Class = 12 (5 are up to Class 5th)	1) Below 10th Class = 10	
		2) 10th = 0	2) 10th = 0	
		3) 10th to 12th/ITI=0	3) 10th to 12th/ITI=0	
		4) Above graduation=0	4) Above graduation=0	
		5) Illiterate = 12	5) Illiterate =10	
	40-50 Years	Total =10	Total =15	25
		1) Below 10th Class = 0 (All Illiterate)	1) Below 10th Class = 0 (All Illiterate)	
		2) 10th = 0	2) 10th = 0	
		3) 10th to 12th/ITI=0	3) 10th to 12th/ITI=0	
		4) Above graduation=0	4) Above graduation=0	
		5) Illiterate = 10	5) Illiterate = 15	

51-60 Years	Total =8	Total =8	16
	1) Below 10th Class = 0 (All Illiterate)	1) Below 10th Class = 0 (All Illiterate)	
	2) 10th = 0	2) 10th = 0	
	3) 10th to 12th/ITI=0	3) 10th to 12th/ITI=0	
	4) Above graduation=0	4) Above graduation=0	
	5) Illiterate = 8	5) Illiterate = 8	
Above 60Years	Total =2	Total =2	4
	1) Below 10th Class =0	1) Below 10th Class =0	
	2) 10th = 0	2) 10th = 0	
	3) 10th to 12th/ITI=0	3) 10th to 12th/ITI=0	
	4) Above graduation=0	4) Above graduation=0	
	5) Illiterate = 2	5) Illiterate = 2	
Total	67	65	132
Literate	29	26	55
Illiterate	38	39	77

Table 2: Socio-cultural intellectual/literacy participation:

Gender Ratio (Male: Female)	67:65=1.03:1
Literacy (Male) from the Total population in %	21.96%
Literacy (Female) from the Total population in %	19.69%
Total Literacy from the Total population in %	41.66%
Total Illiteracy from the Total population in %	58.33%

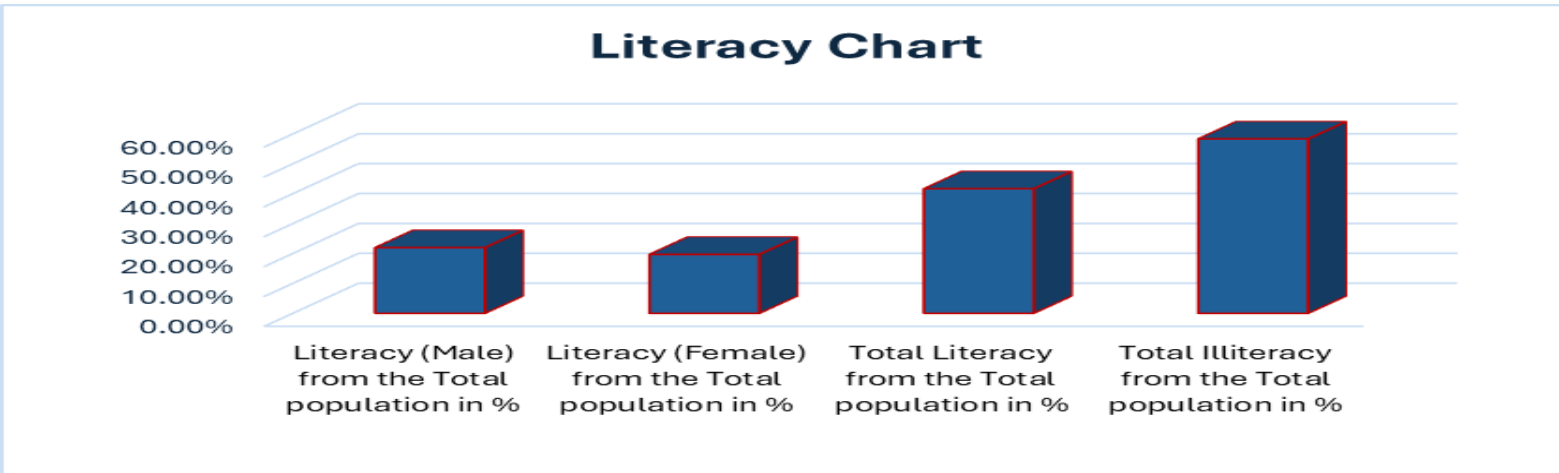

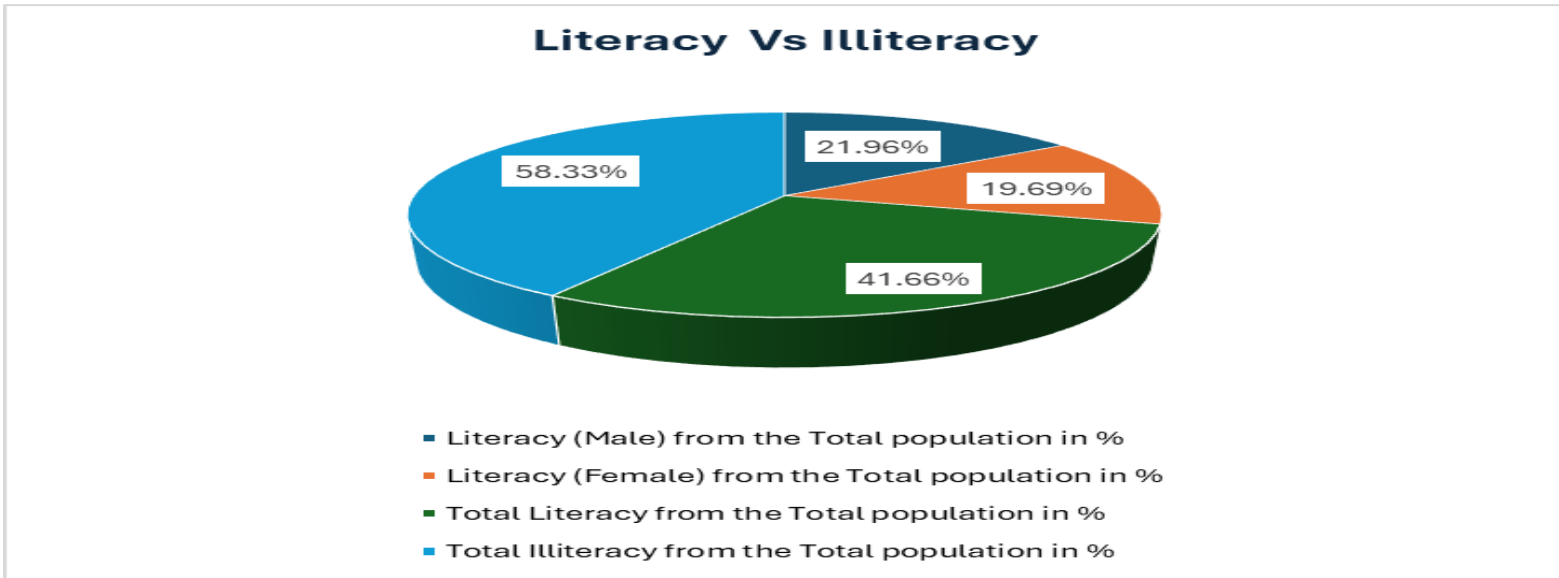

Analysis Framework and Scope of Improvements:

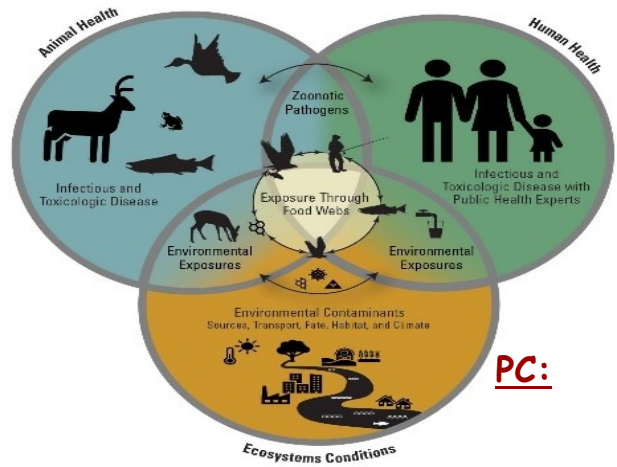

PC:

1.1One Health: Post-pandemic, One Health is a unifying approach for optimizing the integration of the health of people, animals, and the environment. It has gained more importance, mobilizing multiple sectors, disciplines, and communities, particularly in food, water safety, fuel nutrition, disease control, pollution management, antimicrobial resistance, and generating robust and agile response systems. This comprehensive and integrated strategy unlocks opportunities for combating the issues endangering people, animals, and the environment, including plants, where they coexist. Coordination, communication, and cooperation are essential components of an efficient governance strategy. People find it easier to comprehend the co-benefits, adjustments, and possibilities to develop equitable and comprehensive solutions when the One Health approach is implemented.

1.2Sustainable Development Goals (SDG): In this study, all such possible feasible parameters and remedial measures as well as the narratives from development and disadvantages associated with proposed mining in line with SDGs such as No Poverty, Good Health, Clean Water, Sanitation, Sustainable Cities and Communities, Life on Land, Responsible Consumption and Production, Climate Action, Peace and Justice Strong Institutions, etc are incorporated.

1.3Impact of Industrialization on the Environment: The ecologically delicate Niyamgiri hill is preserved by the tribals and is filled with various natural habitats. Any form of industrialization in the area, particularly mining, has the potential to cause habitat destruction, soil erosion, and water pollution. The region's delicate ecosystem could suffer permanent harm, impacting local biodiversity and disrupting its balance.

1.4Rights of Tribals: The tribes living in the Niyamgiri hill have a strong cultural and spiritual bond with the land. The natural resources that the hill provides are integral to their way of life. Any industrialization could cause these indigenous communities to be uprooted, resulting in the loss of their traditional means of subsistence, cultural heritage, and social stability.

1.5Ethical view: The rights and voices of the tribes should be honored. To ensure that decisions regarding industrialization are made with the full understanding and consent of local communities, the principle of Free, Prior, and Informed Consent (FPIC) should be adhered to. Ensuring that the benefits of industrialization are fairly distributed among all parties is another ethical consideration.

1.6Socioeconomic Impact: Industrialization may boost the region's economy; however, it can also cause inequality, social unrest, and resource depletion. The long-term effeclife nearby communities, including potential employment opportunities, income sources, and overall quality of life, must be considered.

1.7Legal and Regulatory Obligations: All industrial activities in the tribal areas must have a concrete mechanism and follow environmental rules and regulations. There should be adequate safeguards for the environmental lands and compensation for impacted communities. It's crucial to strike a delicate balance among environmental protection, the interests of tribal communities, and economic growth.

1.8Global Perspective: The Niyamgiri hill case brings to light more general concerns about the conflict between environmental sustainability and economic growth, and the rights of indigenous communities. The importance of defending indigenous rights and preserving biodiversity is increasingly being acknowledged by the international community.

1.9Green innovation/technology: Sustainable development models using natural resources for community-based initiatives, eco-tourism, and preserving traditional knowledge could be investigated as an alternative to resource-intensive industrialization. This strategy could reduce adverse effects while promoting inclusive growth.

1.10Issues of Tribals: The indigenous communities at Niyamgiri hill, particularly, have socioeconomic, cultural, and environmental concerns. An analysis of the salient features, Livelihoods, and significance of culture; environmental concerns; displacement and Relocation of tribal communities; land rights; legal issues; protests; corporate social responsibility (CSR) and development; and government policies and regulations is necessary.

Conclusion:In conclusion, the tribal disputes in the Niyamgiri hills are a microcosm of the broader conflict between the rights of indigenous communities, environmental preservation, and development, all of which aim to preserve their land and culture. The literacy survey directly links to the awareness of the tribal people, and their awareness has substantially increased for their need for fair, long-term

development strategies that respect the rights and aspirations of tribal communities. The recent announcement by Vedanta to invest ₹1 lakh crore in Odisha's alumina and green aluminum projects has raised internal mobilization in the tribal areas. The conflict highlights the challenges in striking a balance between development objectives and the rights of indigenous communities. Making thoughtful policy decisions and upholding laws that defend tribal rights are necessary to strike a balance.

****

References:

1.Bal, S. (n.d.). *Development, environment and people's protest: A study of Niyamgiri movement in Odisha* [Doctoral thesis, Ravenshaw University]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/373304
2.Barik, R. (n.d.). *Globalization and its impact on tribal society of Odisha: A case study of Kalahandi district* [Doctoral thesis, Utkal University]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/282768
3.Borde, R., & Bluemling, B. (n.d.). *Representing indigenous sacred land: The case of the Niyamgiri movement in India*. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/10455752.2020.1730417
4.Government of Odisha. (2016). *Orissa Review* (August issue, pp. 78–84). https://magazines.odisha.gov.in/Orissareview/2016/August/engpdf/78-84.pdf
5.Government of Odisha. (n.d.). *Culture and heritage: Rayagada district*. https://rayagada.nic.in
6.Indira Gandhi National Open University. (2025, November 18). *Unit 11*. egyankosh.ac.in
7.Jamdalia, K. K. (n.d.). *Industrialization, livelihood and health issues of scheduled tribes: A study of Vedanta Alumina Ltd. in Western Odisha* [Doctoral thesis, Sambalpur University]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/284717
8.Kumar, K. (n.d.). *The sacred mountain: Confronting global capital at Niyamgiri*. https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/S0016718513002510
9.Manipadma, J. (n.d.). *Voices from Niyamgiri*. https://www.jstor.org/stable/23528364
10.Ministry of Tribal Affairs. (n.d.). *Official publications and resources*. https://tribal.nic.in
11.Ministry of Tribal Affairs. (n.d.). *Tribal Digital Document Repository*. https://repository.tribal.gov.in/
12.Mohapatra, D. (n.d.). *Tribal development in Orissa: A study on strategy, performance and problems* [Doctoral thesis, Utkal University]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/188614
13.Naik, I. C. (n.d.). *The environmental protest movement and the right to livelihood* [Doctoral thesis]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/259659
14.Nayak, M. (n.d.). *Education and development: A sociological analysis of tribal villages in Orissa* [Doctoral thesis]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/18034
15.Pradhan, B. (n.d.). *Panchayat Extension to Scheduled Areas (PESA) Act and tribal development in Odisha* [Doctoral thesis, Pondicherry University]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/247511
16.Pradhan, L. (n.d.). *Naxalite movement and tribals* [Doctoral thesis, Guru Nanak Dev University]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/368325
17.Ray, M. (n.d.). *Power and potentialities of the Dongria and Kutia Kondh women and their role in the development process* [Doctoral thesis, Utkal University]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/188604
18.Rout, S. (2022). Global-local linkages in contemporary environmental movements. *Sociological Bulletin, 71*(1), 67–85. https://doi.org/10.1177/00380229221081979
19.Rout, S. (n.d.). *Global-local linkages in contemporary environmental movements: Networking, diffusion and scale shift in the Niyamgiri movement of Odisha*. https://doi.org/10.1177/00380229221081979
20.Roy, S. (n.d.). *Empowering the tribals: Role of Non-Governmental Organizations—A case study of Orissa* [Doctoral thesis, Jadavpur University]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/133053
21.Sahu, G. (n.d.). *Mining in the Niyamgiri Hills and tribal rights*. https://www.jstor.org/stable/40277331
22.Samal, J. S. (n.d.). *Mining and local resistance: A study of anti-mining movements in Odisha* [Doctoral thesis, Jawaharlal Nehru University]. Shodhganga. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/378675
23.cheduled Castes and Scheduled Tribes Research and Training Institute. (n.d.). *Adivasi photo handbook*. https://www.scstrti.in/images/phocagallery/adivasi/v_61_2.pdf
24.Scheduled Castes and Scheduled Tribes Research and Training Institute. (n.d.). *PVTGs of Odisha*. https://www.scstrti.in/index.php/communities/pvtg
25.Scheduled Castes and Scheduled Tribes Research and Training Institute. (n.d.). *Tribes of Odisha*. https://www.scstrti.in/index.php/communities/tribes
26.Scheduled Castes and Scheduled Tribes Research and Training Institute. (n.d.-b). *Photo handbook on PVTGs*. https://www.scstrti.in/index.php/activities/publication/books/photo-handbook-on-pvt
27.Sipra, S. (n.d.). *New social movements and its transition: A case study of Niyamgiri movement in Odisha*. https://arfjournals.com/image/catalog/Journals%20Papers/SKYLINES%20OF%20ANTHROPOLOGY/No%202%20(2021)/5_Sipra%20Sagarika.pdf
28.Srikant, P. (n.d.). *Tribal movement in Orissa: A struggle against modernisation?* http://www.isec.ac.in/WP%20215%20-%20%20Patibandla%20Srikant.pdf
29.Sundar, N. (n.d.). *Subalterns and sovereigns*. Oxford University Press. https://global.oup.com/academic/product/subalterns-and-sovereigns-9780195697049
30.Tatpati, M., et al. (n.d.). *The Niyamgiri story: Challenging the idea of growth without limits?* https://www.researchgate.net/publication/326972762
31.Vajiram & Ravi. (2025, November 17). *Tribal movements*. https://vajiramandravi.com/upsc-exam/tribal-movement/
32.Vedanta News. (n.d.). *Vedanta to invest ₹1 lakh crore in Odisha's alumina and green aluminium projects*. https://vedantanews.com
33.Wisdom Library. (2025, November 18). *Modern* India. https://www.wisdomlib.org/concept/modern-india
34.Saxena, N. C., Parasuraman, S., Kant, P., & Baviskar, A. (2010). Report of the four-member committee for investigation into the proposal submitted by the Orissa Mining Corporation for bauxite mining in Niyamgiri. Ministry of Environment and Forests, Government of India.
35.Padel, F., & Das, S. (2010). Out of this earth: East India Adivasis and the aluminium cartel. Orient Blackswan.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

खड़ी बोली के साहित्य निर्माण में भारतेंदु हरिश्चंद्र की भाषाई नीति

रोहित मिश्रा
शोधार्थी, (पीएचडी)
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी साहित्य में आधुनिक काल की शुरुआत भारतेंदु युग से मानी जाती है। भारतेंदु युग से पूर्व का साहित्य मुख्यतः काव्य विधा तथा ब्रज भाषा में लिखा जा रहा था, जिसमें कहीं-कहीं खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है क्योंकि खड़ीबोली उक्त समय तक जन भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। परंतु फिर भी खड़ी बोली को साहित्य की भाषा के रूप में सम्मान प्राप्त नहीं था। खड़ीबोली को यह स्थान सर्वप्रथम 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के माध्यम से प्राप्त हुआ, जहां अनुवाद के रूप में खड़ी बोली की प्रारंभिक गद्य रचनाएं प्रकाश में आई। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है "संवत् 1860 में फोर्ट विलियम कॉलेज (कलकत्ता) के हिंदी-उर्दू अध्यापक जान गिलक्राइस्ट ने देशी भाषा की गद्य पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की तब उन्होंने उर्दू और हिंदी दोनों के लिए अलग-अलग प्रबंध किया। इसका मतलब यही है कि उन्होंने उर्दू से स्वतंत्र हिंदी खड़ी बोली का अस्तित्व भाषा के रूप में पाया। फोर्ट विलियम कॉलेज के आश्रय में लल्लूलाल जी गुजराती ने खड़ी बोली के गद्य में 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। अतः खड़ी बोली गद्य को एक साथ आगे बढ़ाने वाले चार महानुभाव हुए हैं- मुंशी सदासुख लाल, सैयद इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र।"[1]

स्पष्ट है कि खड़ीबोली के निर्माण में पं.लल्लूलाल, पं. सदल मिश्र, मुंशी सदासुख लाल तथा इंशा अल्ला खां की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन रचनाकारों में इंशा अल्लाह खां के अतिरिक्त अन्य तीनों ने 'खड़ीबोली' का प्रयोग अनुवाद के रूप में किया था जिस कारण शुद्ध साहित्यिक भाषा के रूप में इस समय तक ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया जा रहा था। साहित्य की भाषा बनने के लिए 'खड़ी बोली' का यह संघर्ष 'भारतेन्दु युग' में समाप्त होता है जहां गद्य की भाषा के रूप में 'खड़ीबोली' को स्वीकार किया गया।

'भारतेंदु युग' को मध्यकाल तथा आधुनिक काल का संधिस्थल माना जाता है। भारतेन्द हरिश्चंद्र इस युग के अग्रणी लेखक थे जिन्होंने न केवल साहित्यिक भाषा के रूप में 'खड़ी बोली' को स्थापित किया बल्कि साहित्य को नवीन विधाओं से भी अवगत कराया। निबंध, आलोचना, पत्रकारिता, अनुवाद, नाटक, कहानी, उपन्यास, आदि अनेक विधाओं ने इस युग में अपना प्रारंभिक स्वरूप प्राप्त किया। इन सभी विधाओं के माध्यम से भारतेन्दु युग के रचनाकारों ने साहित्य को समाज से जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास किया, जिसमें लोक में प्रचलित शब्दों का साहित्य में प्रयोग कर 'खड़ी बोली' का संवर्धन और विकास भी किया जा रहा था। पद्य भाषा के रूप में खड़ी बोली को स्थान न मिलने के बावजूद इस युग के रचनाकारों ने गद्य भाषा के रूप में 'खड़ी बोली' को निर्मित किया और उसे लोकप्रिय बनाया। इसमें सबसे प्रमुख योगदान भारतेंदु हरिश्चंद्र का था जिन्होंने तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव शब्दों का प्रयोग करना आरंभ किया और क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों को भी साहित्य में यथासंभव प्रयोग किया। इस संबंध में डॉ. अमरनाथ ने लिखा है कि भारतेन्द की भाषा में "तद्भव और देशज शब्दों एवं मुहावरों का प्राधान्य है और दूसरी ओर जनजीवन में घुले हुए विदेशी शब्दों से भी कोई खास परहेज नहीं है।"[2] जो साहित्य भारतेन्दु युग से पूर्व उच्च तथा शिक्षित वर्ग तक सीमित था, वह भारतेंदु युग में जनसामान्य के मध्य तक स्थापित हो गया, जिसका एक प्रमुख कारण भारतेन्दु हरिश्चंद्र की भाषाई नीति थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भाषा का महत्व समझते हुए उसे राष्ट्रीयता और समाज का प्रमुख अंग माना। हालांकि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने स्वयं काव्य भाषा के रूप में ब्रज भाषा को अपनाया है और खड़ी बोली का प्रयोग केवल गद्य साहित्य तक सीमित रखा है इसलिए उनकी भाषाई नीति में केवल गद्य साहित्य से संबंधित चर्चा की जाएगी। भारतेंदु हरिश्चंद्र की यह स्पष्ट मान्यता थी कि राष्ट्रीयता और सामाजिक अस्मिता का प्रमुख अंग भाषा है, इसलिए वे जातीय पहचान को 'निज भाषा' से जोड़ते हैं। इस संबंध में उन्होंने कहा है-

"निज भाषा उन्नति अहै सब भाषा को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को सूल।।"[3]

अर्थात निज भाषा की उन्नति के बिना किसी भी समाज की उन्नति संभव नहीं हो सकती और निज भाषा के ज्ञान के बिना मन के संशय को भी दूर नहीं किया जा सकता।

'निज भाषा' का तात्पर्य भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुसार उस भाषा से हैं जिसे जनसामान्य अपने लोकव्यवहार में प्रयोग करता है। भारतेंदु जी से पूर्व की भी राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद तथा राजा लक्ष्मण सिंह साहित्यिक भाषा के संबंध में अपने मत प्रस्तुत कर चुके थे। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद भारतेंदु जी के गुरु थे और वह ऐसी भाषा का समर्थन करते थे जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों की अत्यधिक भरमार थी और यह भाषा मुसलमानों तथा कचहरियों से संबंधित लोगों की भाषा का प्रतिनिधित्व करती थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह सिद्ध किया है कि अंत तक उनकी भाषा उर्दू हो चुकी थी। उन्होंने लिखा है - "राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद क्रमशः उर्दू की ओर झुकते गए और अंत तक उनकी भाषा देवनागरी लिपि में लिखी हुई उर्दू बन गई।"4 दूसरी ओर राजा लक्ष्मण सिंह ऐसी भाषा के समर्थन में थे जिसमें संस्कृत और तत्सम शब्दों की भरमार थी और यह भाषा हिंदू धर्म के शिक्षित विद्वानों का प्रतिनिधित्व करती थी। भाषा के यह दोनों ही रूप जनभाषा का प्रतिनिधित्व कर पाने में असमर्थ थे इसलिए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने उस मध्यम शैली को अपनाया जिसमें सभी भाषाओं के लोकप्रिय शब्दों को स्थान दिया गया और जनभाषा का प्रतिनिधित्व किया।

भारतेंदु के संबंध में यह भी मान्यता है कि वे संस्कृत-उर्दू आदि अन्य भाषाओं के विरोधी थे। परंतु उनकी भाषा संबंधी मान्यता का अध्ययन करने पर ऐसा कहना अत्यंत अनुचित मालूम पड़ता है क्योंकि वह किसी भी भाषा के विरोधी न होकर खड़ी बोली के पक्षधर थे। वे अगर उर्दू विरोधी होते तो 'रसा' नाम से उर्दू में गजलें न करते। उनका तो केवल इतना मानना था कि संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी, क्षेत्रीय बोलियों आदि को एक सीमा तक पीछे हटा दिया जाए ताकि खड़ी बोली हिंदी को साहित्य व समाज में उसका उचित स्थान मिल सके।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की यह भाषा नीति उनके द्वारा रचित 'भारत दुर्दशा' नाटक में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है जिसमें उन्होंने लोकजीवन में इस्तेमाल होने वाले शब्दों के साथ मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र का मानना था कि अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य को यदि जनता तक पहुंचाना है तो उसे जनभाषा अर्थात खड़ी बोली में अनुवाद करके जनता के लिए उपलब्ध कराना चाहिए। इसके लिए उन्होंने स्वयं अनुवाद करके इस क्षेत्र में अन्य साहित्यकारों का नेतृत्व किया। भारतेंदु द्वारा अनूदित नाटकों में प्रमुख है - विद्यासुंदर

(बांग्ला भाषा के 'चौरपंचाशिका' का हिंदी अनुवाद), पाखंड विडंबन (संस्कृत भाषा में रचित 'प्रबोध चंद्रोदय' का अनुवाद), कर्पूर मंजरी (राजशेखर कवि कृत प्राकृत नाटक का अनुवाद), भारत जननी (बांग्ला की 'भारत माता' का अनुवाद), दुर्लभ बंधु (शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद) आदि। भारतेंदु की भाषाई नीति की सबसे प्रमुख विशेषता यह रही है कि उनके मन में सभी भाषाओं के प्रति आदर और सम्मान था। वे लोक प्रचलित शब्दों का बेझिझक प्रयोग करते थे चाहे वह शब्द संस्कृत का हो या उर्दू का या अंग्रेजी का। इस संबंध में यदि उनकी भाषा को पंचमेल की खिचड़ी कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि भाषा का मिला-जुला रूप ही उसका स्वाभाविक रूप होता है। इन्हीं की भाषा शैली को आगे चलकर 'महात्मा गांधी' ने राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार किया था जिसे 'हिंदुस्तानी शैली' कहा गया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने उन सभी भाषा नीतियों का खंडन किया था जो जनभाषा अर्थात खड़ी बोली को घृणा की दृष्टि से देखते थे। चाहे वह अंग्रेजों की भाषा नीति हो या मुसलमानों की। इस संबंध में रामविलास शर्मा ने कहा है- "भारतेंदु की भाषा-नीति अंग्रेजी राज्य की नीति के विरुद्ध ही न थी, वह पंडितों-मौलवियों की नीति के विरुद्ध थी, जो जनसाधारण की भाषा को हिकारत की निगाह से देखते थे।"[5]

भारतेंदु की भाषा नीति पर दृष्टि डालने पर ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्य की भाषा के रूप में उन्होंने खड़ी बोली को तो अपना लिया था परंतु उस खड़ी बोली का स्वरूप निश्चित नहीं कर पाए थे। भाषागत त्रुटियां और व्याकरणिक अशुद्धियां भारतेंदु युग की भाषा में सर्वथा विद्यमान थी, जिस पर भारतेंदु मंडल के किसी भी रचनाकार ने विशेष ध्यान नहीं दिया। इसका कारण बताते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "भारतेन्द-युग की गद्य-शैली में परिष्कार की जरूरत थी। लेकिन यह जरूरत इतनी बड़ी न थी जितनी कि लोग समझते हैं।.... जो परिष्कार आप करेंगे, वह कुछ शब्दों को लेकर होगा, वाक्यरचना, शब्दों के चुनाव, शैली के प्रवाह आदि में इससे ज्यादा अंतर न पड़ेगा।"[6]

इसके अतिरिक्त यदि भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रारंभिक रचनाओं जैसे 'विद्यासुन्दर', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'सत्य हरिश्चंद्र' आदि पर ध्यान दिया जाए तो उनकी भाषा अपने स्वरूप को तलाशती हुई दृष्टव्य होती है और उनकी यह तलाश तब पूरी होती है जब वह घोषणा करते हैं कि 'हिंदी नई चाल में ढली'। हालांकि इस तलाश के पूर्ण हो जाने के बावजूद वे खड़ी बोली हिंदी को स्थिरता प्रदान नहीं कर सके और उसमें हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी तीनों ही शैलियों के तत्व विद्यमान थे।

इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र ऐसी भाषा का निर्माण करना चाहते थे जो सर्वमान्य और सुलभ हो। इसलिए वे भाषा के क्षेत्रीय रूप अर्थात लोकभाषा को भी अपनाने की बात करते हुए नजर आते हैं- " इस हेतु ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छंदों में और साधारण भाषा में बने, वरंच गंवारू भाषा में और स्त्रियों की भाषा में विशेष हों- और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो अर्थात पंजाब में पंजाबी, बुंदेलखंड में बुंदेलखंडी, बिहार में बिहारी ऐसे जिन देशों में जिन भाषा का साधारण प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बने।"[7]

उक्त कथन में यह स्पष्तः देखा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र की भाषा नीति में खड़ी बोली हिंदी को केवल साहित्य की भाषा के रूप में ही स्थापित करना नहीं था बल्कि वे इसे राष्ट्रीय चेतना से जोड़कर समाज का विकास करना चाहते थे। संभवतः उन्हें यह आभास था कि लोकभाषा और स्त्रियों की भाषा के बिना खड़ी बोली हिंदी को व्यापक रूप प्रदान नहीं किया जा सकता।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की उक्त भाषा नीति के कारण ही भारतेंदु युगीन साहित्य को जनसामान्य ने अपनाया और खूब पसंद भी किया। इस युग की भाषा में जो व्यंग्य, परिहास, चुटकुलेबाजी, आकर्षण और जीवंतता है वह इसे अन्य साहित्यिक युगों की तुलना विशिष्टता प्रदान करती है। शायद यही कारण है कि इस युग के साहित्य की प्रसंशा करते हुए रामविलास शर्मा ने इसे 'जातीय साहित्य' की संज्ञा दी है। वे लिखते हैं- "भारतेन्दु-युग का साहित्य हिन्दी-भाषी जनता का जातीय साहित्य है , वह हमारे जातीय नवजागरण का साहित्य है। भारतेन्दु-युग की जिंदादिली, उसके व्यंग्य और हास्य, उसके सरल सरस गद्य और लोकसंस्कृति से उसकी निकटता से सभी परिचित है, ये उसकी जातीय विशेषताएं है।"[8]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र का भाषा प्रेम एक व्यापक स्तर तक फैला हुआ है, जो 'निज भाषा' के माध्यम से राष्ट्रभाषा की भूमि को तैयार करने में प्रयत्नशील थे। अपनी रचनाओं और भाषणों के द्वारा उन्होंने सदैव जन सामान्य व अन्य रचनाकारों को हिंदी भाषा में साहित्य सृजन करने के लिए प्रेरित किया है। उनकी इस भाषा नीति के कारण ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें वर्तमान साहित्य परंपरा का प्रवर्तक माना है। वे लिखते हैं - "विक्रम की बीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण समाप्त हो जाने पर जब भारतेंदु ने हिन्दी गद्य की भाषा को सुव्यवस्थित और परिमार्जित करके उसका स्वरूप स्थिर कर दिया तब से गद्य साहित्य की परम्परा लगातार चली। इस दृष्टि से भारतेंदुजी जिस प्रकार वर्तमान गद्य भाषा के स्वरूप प्रतिष्ठापक थे, उसी प्रकार वर्तमान साहित्य परंपरा के प्रवर्तक।"[9]

****

सन्दर्भ

1 हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 301
2 हिंदी आलोचना का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. अमरनाथ,
3 महापुरुषों का स्मरण - हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 66
4 हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 205
5 भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं - रामविलास शर्मा, पृ. 53
6 भारत की भाषा समस्या - रामविलास शर्मा, पृ.32
7 भारतेन्दु ग्रंथावली - सं. ब्रजरत्नदास, तीसरा भाग, पृ. 935
8 भारतेन्दु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा- रामविलास शर्मा, तीसरे संस्करण की भूमिका
9 चिंतामणि भाग-1, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.187

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

आचार्य चतुरसेन के 'श्रीराम' में रस-निष्पत्ति

हरमनजोत कौर
पीएच.डी.शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में रस-सिद्धांत को वह केंद्रीय स्थान प्राप्त है, जिसके बिना नाट्य और काव्य की सौंदर्यात्मक व्याख्या अधूरी मानी जाती है। भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" का सूत्र न केवल नाट्य की संरचना को समझने की कुंजी प्रदान करता है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि साहित्य का लक्ष्य बाह्य यथार्थ का चित्रण न होकर भावानुभूति का परिष्कृत संप्रेषण है (भरतमुनि 68)। आचार्य चतुरसेन कृत *"श्रीराम"* नाटक इसी परंपरा में एक ऐसी कृति है, जिसमें रामकथा के उत्तरकाण्डीय प्रसंगों के माध्यम से करुणा, प्रेम, धर्म और त्याग का बहुस्तरीय नाट्य-विन्यास उपस्थित होता है। यह नाटक केवल धार्मिक आख्यान का पुनर्पाठ नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं की जटिलता का कलात्मक रूपांतरण है, जिसे रस-सिद्धांत के आलोक में विश्लेषित करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

नाटक का प्रारंभ ही उस भावभूमि को निर्मित करता है जहाँ स्मृति और वर्तमान के बीच का तनाव धीरे-धीरे करुणा की दिशा में विकसित होता है। *कथासार (पृष्ठ 2–4)* में यह स्पष्ट किया गया है कि राम को लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग करना पड़ता है। यह प्रसंग नाटक के समस्त भाव-संरचना का केंद्रबिंदु है, क्योंकि यहीं से शोक, विरह और आत्मद्वंद्व की श्रृंखला आरंभ होती है। भरतमुनि के अनुसार करुण रस का स्थायीभाव 'शोक' है, और यह शोक तभी प्रभावी होता है जब उसके साथ उपयुक्त विभाव, अनुभाव और संचारी भाव जुड़े हों। इस नाटक में राम और सीता दोनों ही आलंबन विभाव के रूप में उपस्थित हैं, जबकि लोकापवाद, सामाजिक मर्यादा और वनवास उद्दीपन विभाव के रूप में कार्य करते हैं। इन विभावों के प्रभाव से उत्पन्न अनुभाव जैसे स्मृति, मौन, विषादपूर्ण संवाद, करुण रस को सघन बनाते हैं।

राम का यह कथन, "मेरा मन उन्हीं दिनों की ओर दौड़ जाता है…" (पृ. 14), इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह वाक्य केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान की पीड़ा का संकेत है। यहाँ स्मृति एक अनुभाव के रूप में कार्य करती है, जो स्थायीभाव 'शोक' को उद्दीप्त करती है। अतीत के सुखद क्षण वर्तमान के दुःख को और अधिक तीव्र बना देते हैं, जिससे दर्शक के भीतर करुणा का संचार होता है। अभिनवगुप्त के अनुसार रस का अनुभव तभी संभव है जब दर्शक इन भावों को अपने व्यक्तिगत अनुभव से अलग कर सार्वभौमिक रूप में ग्रहण करे (अभिनवगुप्त 112)। इस संवाद के माध्यम से दर्शक केवल राम के दुःख को नहीं देखता, बल्कि स्वयं उस दुःख का अनुभव करने लगता है। सीता का चरित्र इस करुणता को और अधिक गहन बनाता है। उनके संवादों में प्रेम और पीड़ा का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उदाहरणतः—"आपका सान्निध्य ही मुझे प्रिय है…" (पृ. 13), यह कथन श्रृंगाररस की अभिव्यक्ति है, किंतु इसकी पृष्ठभूमि विरह है। यहाँ 'सान्निध्य' की कामना वास्तव में उसकी अनुपस्थिति को ही रेखांकित करती है, जिससे विप्रलंभ श्रृंगार की स्थिति उत्पन्न होती है। इस प्रकार श्रृंगार और करुण रस एक-दूसरे में अंतर्ग्रथित होकर एक जटिल भावानुभव का निर्माण करते हैं। यह वही स्थिति है जिसे आधुनिक आलोचना में 'संकर रस' कहा जाता है, जहाँ दो या अधिक रस मिलकर एक नवीन अनुभूति उत्पन्न करते हैं। नाटक के एक अन्य प्रसंग में, जहाँ राम अपने निर्णय का औचित्य प्रस्तुत करते हैं, यह स्पष्ट होता है कि उनके भीतर केवल करुणा ही नहीं, बल्कि वीरता का भी भाव है। *कथासार (पृ. 3)* में उल्लिखित है कि राम ने प्रजा के हित में सीता का परित्याग किया। यह निर्णय उत्साह और धैर्य का परिचायक है, जो वीर रस के स्थायीभाव से संबंधित है। किंतु यह वीरता पारंपरिक युद्ध या पराक्रम की नहीं, बल्कि नैतिक साहस की है। यहाँ वीर और करुण रस एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक बन जाते हैं। राम का चरित्र इसी द्वंद्व के कारण गहराई प्राप्त करता है। राम और सीता के संवादों में बार-बार स्मृति, विरह और प्रेम का जो अंतःसंबंध दिखाई देता है, वह नाटक की सौंदर्यात्मक शक्ति का मूल स्रोत है। उदाहरणतः राम का स्मरण और सीता का प्रत्युत्तर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है जहाँ अतीत और वर्तमान एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। यह समय-भंग (temporal collapse) दर्शक को एक गहन भावानुभव की ओर ले जाता है। यहाँ संचारी भावों, जैसे दैन्य, विषाद, निराशा, उत्कंठा की सक्रियता करुण रस को पूर्णता प्रदान करती है।

अभिनवगुप्त ने रस को 'आनंद' के रूप में परिभाषित किया है, जो साधारणीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न होता है। *"श्रीराम"* नाटक में यह प्रक्रिया अत्यंत प्रभावी ढंग से घटित होती है। दर्शक राम और सीता के दुःख को व्यक्तिगत न मानकर एक सार्वभौमिक अनुभव के रूप में ग्रहण करता है। यही कारण है कि दुःखद घटनाएँ भी एक प्रकार के सौंदर्यात्मक आनंद का स्रोत बन जाती हैं। यह आनंद किसी सुखद स्थिति से नहीं, बल्कि भावों के परिष्कृत अनुभव से उत्पन्न होता है।

नाटक के उत्तरार्ध में जब सभी भाव अपनी चरम अवस्था पर पहुँचते हैं, तब एक प्रकार की वैराग्यपूर्ण शांति उत्पन्न होती है। यह शांत रस की स्थिति है, जो सभी पूर्ववर्ती रसों का परिपाक है। यहाँ करुण और श्रृंगारदोनों ही एक उच्चतर स्तर पर पहुँचकर शांत में विलीन हो जाते हैं। यह प्रक्रिया नाटक को एक पूर्णता प्रदान करती है, जहाँ भावों की यात्रा दुःख से आरंभ होकर शांति में समाप्त होती है।

इस नाटक की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह केवल भावात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक विमर्श भी प्रस्तुत करता है। लोकापवाद का प्रसंग यह दर्शाता है कि समाज की धारणाएँ किस प्रकार व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती हैं। राम का निर्णय इस संदर्भ में एक जटिल नैतिक प्रश्न उठाता है, क्या आदर्श शासक को अपने निजी जीवन का त्याग करना चाहिए? यह प्रश्न नाटक को आधुनिक संदर्भ में भी प्रासंगिक बनाता है। नागेन्द्र के अनुसार रस-सिद्धांत की शक्ति इसी में है कि वह बदलते समय में भी साहित्य की व्याख्या करने में सक्षम है (नागेन्द्र 54)। इसी प्रकार रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को मानवीय संवेदना का दर्पण माना है (शुक्ल 112), और इस दृष्टि से *"श्रीराम"* नाटक आधुनिक पाठक के लिए भी उतना ही अर्थपूर्ण है।

यदि नाटक की संपूर्ण संरचना को देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि इसमें रसों का अत्यंत संतुलित संयोजन है। करुण रस अंगी है, जबकि शृंगार, वीर और शांत रस अंग के रूप में कार्य करते हैं। यह संयोजन नाटक को बहुस्तरीय बनाता है और दर्शक को एक गहन सौंदर्यात्मक अनुभव प्रदान करता है। विशेषतः संवादों में जो भाव-सघनता है, वह नाटक की आत्मा है। इन संवादों के माध्यम से ही रस की निष्पत्ति होती है और दर्शक उस अनुभव का भागी बनता है।

राम के चरित्र की जटिलता को और गहराई से समझने के लिए नाटक के संवादों का सूक्ष्म विश्लेषण आवश्यक है। एक स्थल पर राम की स्मृति-प्रधान चेतना केवल अतीत का पुनर्स्मरण नहीं करती, बल्कि वर्तमान की नैतिक विडम्बना को भी उद्घाटित करती है। जब वे कहते हैं—"मेरा मन उन्हीं दिनों की ओर दौड़ जाता है…" (पृ. 14), तो यह

केवल व्यक्तिगत भावुकता नहीं, बल्कि एक ऐसे मन का उद्घाटन है जो अपने ही निर्णय के परिणामों से आंतरिक रूप से विचलित है। यहाँ 'दौड़ जाता है' क्रिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि यह अनैच्छिकता को सूचित करती है; अर्थात् स्मृति पर राम का नियंत्रण नहीं है। इस प्रकार स्मृति स्वयं एक उद्दीपन विभाव बन जाती है, जो स्थायीभाव 'शोक' को पुनः सक्रिय करती रहती है। इस निरंतर पुनरावृत्ति से करुण रस की तीव्रता स्थिर न रहकर गतिशील बनती है।सीता के संवादों में यह गतिशीलता एक भिन्न स्तर पर प्रकट होती है। जब वे कहती हैं—"आपका सान्निध्य ही मुझे प्रिय है..." (पृ. 13) , तो यह कथन प्रत्यक्षतः प्रेम की अभिव्यक्ति है, परंतु इसका अंतर्निहित अर्थ अनुपस्थिति की वेदना है। यहाँ भाषा एक प्रकार का 'व्यंजना' (ध्वनि) उत्पन्न करती है, जहाँ कहा गया से अधिक अनकहा अर्थपूर्ण हो जाता है। आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त की ध्वनि-परंपरा के अनुसार यही व्यंजना रस-निष्पत्ति का प्रमुख साधन है। इस प्रकार यह संवाद श्रृंगाररस का होते हुए भी करुण की भूमि पर स्थित है, जिससे एक संयुक्त भावानुभूति उत्पन्न होती है।

नाटक के सामाजिक संदर्भ को समझे बिना इस भावानुभूति की पूर्ण व्याख्या संभव नहीं। *कथासार (पृ. 3)* में उल्लिखित है कि "प्रजा के मन में उठे संदेह" के कारण राम को यह निर्णय लेना पड़ा। यहाँ 'प्रजा का संदेह' केवल एक कथात्मक उपकरण नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना का प्रतिनिधि है। यह वही बिंदु है जहाँ नाटक निजी और सार्वजनिक के द्वंद्व को उजागर करता है। भरतमुनि के सिद्धांत में यद्यपि सामाजिक संरचना का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता, परंतु विभावों की प्रकृति में यह निहित है कि वे सांस्कृतिक संदर्भ से निर्मित होते हैं। इस दृष्टि से लोकापवाद एक सशक्त उद्दीपन विभाव है, जो केवल घटना नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक दबाव का प्रतीक है।

राम का निर्णय—सीता का परित्याग—यहीं पर एक जटिल रसात्मक स्थिति उत्पन्न करता है। यदि इसे केवल करुण की दृष्टि से देखा जाए तो यह अन्यायपूर्ण प्रतीत हो सकता है, किंतु वीर रस की दृष्टि से यह त्याग और कर्तव्य का उदाहरण है। इस प्रकार यहाँ दो स्थायीभाव, शोक और उत्साह, एक ही क्रिया में अंतर्निहित हैं। यह द्वंद्व ही नाटक की गहराई का स्रोत है। राम का चरित्र इस कारण एकरेखीय नहीं रह जाता, बल्कि बहुआयामी बन जाता है, जहाँ प्रत्येक निर्णय अनेक भावों को एक साथ सक्रिय करता है।

सीता के चरित्र में करुण रस की पराकाष्ठा देखने को मिलती है, परंतु यह करुणा निष्क्रिय नहीं है। उसमें एक प्रकार की गरिमा और आत्मस्वीकृति भी है। उनके संवादों में बार-बार जो संयम दिखाई देता है, वह करुण रस को विलापमूलक होने से बचाता है और उसे एक उच्चतर स्तर पर ले जाता है। यह वही स्थिति है जिसे अभिनवगुप्त 'उदात्तीकरण' के रूप में देखते हैं, जहाँ व्यक्तिगत दुःख एक सौंदर्यात्मक अनुभव में रूपांतरित हो जाता है।

नाटक के संवादों की एक विशेषता यह है कि वे प्रत्यक्ष कथन के साथ-साथ आंतरिक मौन को भी व्यक्त करते हैं। कई स्थानों पर जो नहीं कहा गया, वही अधिक प्रभावशाली बन जाता है। यह मौन स्वयं एक अनुभाव है, जो दर्शक को सक्रिय व्याख्या की ओर प्रेरित करता है। उदाहरणतः राम और सीता के बीच की दूरी केवल शब्दों में नहीं, बल्कि उनके बीच उपस्थित मौन में भी व्यक्त होती है। यह मौन करुण रस की तीव्रता को और बढ़ाता है।

रस-सिद्धांत के व्यापक संदर्भ में देखा जाए तो *"श्रीराम"* नाटक एक ऐसी संरचना प्रस्तुत करता है, जहाँ विभिन्न रस एक क्रमिक विकास के माध्यम से प्रकट होते हैं। प्रारंभ में स्मृति और प्रेम के माध्यम से श्रृंगार की उपस्थिति होती है, जो शीघ्र ही विरह में परिवर्तित होकर करुण रस का रूप ले लेती है। इसके साथ ही राम के निर्णयों में वीर रस की झलक मिलती है, और अंततः सभी भाव शांत रस में परिणत होते हैं।

यह क्रमिकता नाटक को एक भाव-यात्रा का रूप देती है, जहाँ दर्शक भी पात्रों के साथ इस यात्रा में सहभागी बनता है। अभिनवगुप्त और भरतमुनि के बीच रस की व्याख्या में जो अंतर है, वह इस नाटक के विश्लेषण में विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाता है। भरतमुनि जहाँ रस को संरचनात्मक तत्वों के समन्वय से उत्पन्न मानते हैं, वहीं अभिनवगुप्त उसे एक आंतरिक अनुभूति के रूप में देखते हैं। *"श्रीराम"* नाटक में यह दोनों दृष्टियाँ एक साथ सक्रिय दिखाई देती हैं। एक ओर विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का स्पष्ट संयोजन है, तो दूसरी ओर साधारणीकरण के माध्यम से उत्पन्न आनंदानुभूति भी है। इस प्रकार यह नाटक भारतीय काव्यशास्त्र की दोनों प्रमुख परंपराओं का समन्वय प्रस्तुत करता है।

आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टियों के आलोक में यह नाटक और भी अधिक अर्थपूर्ण हो उठता है। लोकापवाद का प्रसंग आज के सामाजिक मीडिया युग में भी प्रासंगिक है, जहाँ सार्वजनिक धारणा व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती है। इस दृष्टि से राम का निर्णय एक कालातीत नैतिक प्रश्न बन जाता है। नागेन्द्र का यह कथन कि रस-सिद्धांत आधुनिक साहित्य की व्याख्या में भी सक्षम है (नागेन्द्र 54), इस नाटक के संदर्भ में पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है।

यदि संपूर्ण नाटक को एक इकाई के रूप में देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि इसकी संरचना एक वृत्ताकार (circular) संरचना है, जहाँ प्रारंभिक स्मृति अंततः शांति में रूपांतरित हो जाती है। यह वृत्ताकारता भारतीय दार्शनिक परंपरा के उस विचार से जुड़ी है, जहाँ जीवन को एक चक्र के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार नाटक केवल भावात्मक ही नहीं, बल्कि दार्शनिक स्तर पर भी अर्थपूर्ण हो उठता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि अंततः यह कहा जा सकता है कि आचार्य चतुरसेन का *"श्रीराम"* नाटक भरतमुनि के रस-सिद्धांत का एक सशक्त उदाहरण है। इसमें करुण रस की प्रधानता के साथ शृंगार, वीर और शांत रसों का संतुलित और प्रभावी समन्वय है। यह नाटक न केवल रामकथा का पुनर्पाठ प्रस्तुत करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि भारतीय नाट्य परंपरा में रस केवल सौंदर्य का उपकरण नहीं, बल्कि जीवन की गहनतम अनुभूतियों का माध्यम है। इस दृष्टि से यह कृति न केवल साहित्यिक, बल्कि दार्शनिक और सांस्कृतिक महत्व की भी है। आचार्य चतुरसेन का *"श्रीराम"* नाटक भरतमुनि के रस-सिद्धांत का एक जीवंत उदाहरण है, जिसमें करुण रस की प्रधानता के साथ शृंगार, वीर और शांत रसों का बहुआयामी समन्वय है। यह नाटक दर्शाता है कि साहित्य का उद्देश्य केवल कथा कहना नहीं, बल्कि जीवन की जटिलताओं को इस प्रकार प्रस्तुत करना है कि वे दर्शक के भीतर एक गहन सौंदर्यात्मक अनुभव उत्पन्न करें। इस दृष्टि से यह कृति भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है और इसका अध्ययन न केवल साहित्यिक, बल्कि दार्शनिक और सांस्कृतिक विमर्श के लिए भी अत्यंत आवश्यक है।

******

संदर्भ सूची:

1. नागेन्द्र. *भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका*. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1993।
2. नागेन्द्र. *रस सिद्धांत*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2001।
3. शुक्ल, रामचन्द्र. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. प्रयाग: लोकभारती प्रकाशन, 2012।
4. पांडेय, हजारीप्रसाद. *भारतीय साहित्य की भूमिका*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2005।
5. वर्मा, रामकुमार. *हिन्दी नाटक का विकास*. इलाहाबाद: साहित्य भवन, 1998।
6. मिश्र, केशवप्रसाद. *रस सिद्धांत और हिन्दी नाटक*. वाराणसी: चौखम्बा, 2002।
7. त्रिपाठी, राममूर्ति. *भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत*. दिल्ली: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2010।
8. तिवारी, रामचन्द्र. *आलोचना के सिद्धांत*. इलाहाबाद: लोकभारती, 2008।
9. सिंह, नामवर. *कविता के नये प्रतिमान*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2000।
10. सिंह, नामवर. *छायावाद*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2003।
11. गुप्त, गणपति चन्द्र. *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र*. दिल्ली: राजकमल, 1995।
12. शर्मा, रामविलास. *भारतीय साहित्य की भूमिका*. नई दिल्ली: राजकमल, 1999।

धूमिल के काव्य में सत्ता-संघर्ष

जय कुमार तिवारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग
IGNTU, अमरकंटक
मो. 9691278517 ईमेल- tiwari501jay@email.com

सारांश- समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर धूमिल के काव्य तत्कालीन भारत के राजनीतिक यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं। स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक प्रतिस्पर्धा ने भारतीय राजनीति में सत्ता संघर्ष को जन्म दिया। सत्ता का यह संघर्ष सभी राजनीतिक दलों पर हावी हो गया। गठबंधन तथा आपसी भाईचारे की राजनीति ने विपक्षी दलों को भी कमजोर किया। कुर्सी के मोह ने नेताओं की कर्त्तव्यनिष्ठा तथा ईमानदारी को भी खत्म कर दिया। इसने आम आदमी के जीवन को भी प्रभावित किया। भारतीय जनमानस का राजनीति से मोहभंग होने लगा। इस परिस्थिति ने असंतोष को जन्म दिया। धूमिल जनवादी कवि हैं। उन्होने समाज के इस यथार्थ को अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। धूमिल के काव्य में तत्कालीन राजनीतिक यथार्थ, सत्ता संघर्ष, असंतोष तथा क्रांति चेतना को स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

बीज शब्द- सत्ता संघर्ष, लोकतंत्र, राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, मोहभंग, गठबंधन, यथार्थ, युगबोध, संसद, संविधान।

मूल आलेख- धूमिल समकालीन हिंदी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। धूमिल ने समकालीन सामाजिक-राजनीतिक परिवेश को अपने कविता का वर्ण्य-विषय बनाया है। हिंदी कविता में समकालीन कविता की शुरुआत 1970 के आस-पास से माना जाता है। आजादी के बाद एक स्वतंत्र सत्ता की स्थापना ने जनता को बड़ी उम्मीदें दी। भारतीय संविधान ने लोकतंत्र को शासन के मूल तत्व के रूप में स्वीकार किया। राजनीतिक दलों के उदय ने राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया। राजनीतिक दल अपने कर्त्तव्यों से विमुख हो कर पार्टी हितों को प्राथमिकता देने लगे। इस वजह से 1947 के बाद भारतीय राजनीति का सफर काफी उतार-चढ़ाव भरा था। सत्ता की राजनीति तथा मोहभंग से उपजे असंतोष एवं निराशा ने भारतीय जनमानस को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। लोक में राजनीतिक मोहभंग की भावना पनपने लगी, स्वतंत्र्योत्तर स्वप्न टूटते चले गए, समाजवादी चेतना ने आक्रोश को जन्म दिया, शोषितों, किसान तथा मजदूरों मे क्रांतिकारी तेवर दिखने लगे, व्यवस्था की विद्रूपताओं पर व्यंग्य किया जाने लगा तथा कविता भी भाषाहीन तथा आमेआदमी के नजदीक हो चली थी। इसने समकालीन कविता के स्वरूप को निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। "इस काव्यधारा के कवियों का मूल प्रतिपाद्य राजनीति और व्यवस्था की विद्रूपताओं के फलस्वरूप जन सामान्य में व्याप्त मूल्यहीन स्थितियों को उद्घाटित कर जन-मुक्ति के मूल्य के प्रतिष्ठापक हैं। सही और सार्थक पहचान इनका संबल है" (राजपाल, पृ.42)

धूमिल के काव्य समकालीन हिंदी कविता का प्रतिनिधित्व करते हैं। धूमिल की कविताओं का कथ्य तथा शिल्प समकालीन कविता के लिए प्रतिमान हैं। धूमिल की भाषा जन भाषा के नजदीक है, "भाषा का अर्थ है जीने की पद्धति और जीने का ढंग। भाषा यानी जनतंत्र की भाषा, जनतांत्रिक अधिकारों की भाषा, आजादी और सुखी जिंदगी के हक की भाषा" (सिंह, 2012, पृ. 100) यही भाषा हमें धूमिल की कविताओं में दिखाई देता है। यह धूमिल को जनकवि के रूप में स्थापित करता है।

युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए धूमिल की कविताओं में सत्ता-संघर्ष भी अभिव्यक्त होता है। राजनीति में सत्ता-संघर्ष राजनीतिक नेताओं के बीच नेतृत्व, अधिकार और प्रभाव को लेकर होने वाले संघर्ष के रूप में सामने आता है। यह आमतौर पर जबरदस्ती, पैरवी, गठबंधन निर्माण जैसी राजनीतिक व्यवहारों से व्यक्त होती है। इसके परिणाम स्वरूप आमजन काफी प्रभावित होता है। इस संघर्ष का ही परिणाम होता है कि राजनीतिक मूल्य गिरते चले जाते हैं, कुव्यवस्था व्याप्त होने लगती है, शासन जनता के बजाए पार्टी हितों को महत्व देने लगता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में विपक्ष का मजबूत होना सकारात्मक माना जाता है, जबकि सत्ता के संघर्ष ने पार्टियों के बीच गठबंधन को बढ़ावा दिया है, राजनीति अब सत्ता तथा कुर्सी तक सिमट गई है।

धूमिल की कविता, कविता न होकर आम जन के समक्ष प्रस्तुत एक संवाद की तरह प्रतीत होता है। काशीनाथ सिंह के शब्दों में "वह बहस करता, अपने को साफ करता, इस बीच मिलने वाले सुझावों और प्रतिक्रियाओं को अपने दिमाग में बिठाता जाता और यह सिलसिला तब तक जारी रखता जब तक कविता पूरी नहीं हो जाती। शब्दों के प्रयोग, सटीक मुहावरे, सही और अनिवार्य तुक, सार्थक वाक्य-विन्यास पर इतनी मेहनत करने वाला दूसरा आदमी नहीं देखा" (सिंह, 1996, पृ.22)। धूमिल लय या तुकबंदी पर ध्यान नहीं देते थे, वह सत्ता के संघर्ष को सामान्य शब्दों में बस कह देते थे, वह कविता हो जाती है। इसीलिए धूमिल की कविताओं में समकालीन यथार्थ स्पष्ट है।

"व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विरोध, विसंगतियों पर पैना व्यंग्य, व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के बदलते हुए आयाम भी उनकी कविता में अभिव्यंजित हुए हैं। सच्चे अर्थों में वे युग बोध के कवि हैं। उन्होंने जो कुछ भी देखा, जैसा देखा उसे वैसा ही चित्रित किया है। उनके काल में समकालीन यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। यही कारण है कि उनकी अधिकांश कविताओं में व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन के कथ्य के साथ-साथ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ भी समाहित हैं" जोशी, पृ54)। धूमिल के काव्य में राजनीति की कुटिलता तथा संघर्ष की भी अभिव्यक्ति है। राजनीति में बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने नेताओं का इमान छीन लिया। उनकी कुटिलता स्पष्ट नजर आने लगी। राजनीति नें अपनी जगह बनाए रखने के लिए तथा सत्ता मोह उन्हें आमजन की आवाज से दूर ले गया। अब राजनीति जनता के लिए नहीं बल्कि 'कुर्सी की राजनीति' होने लगी थी। वह सत्ता में अपनी जगह बनाने के लिए आम-आदमी की जरूरतों के साथ खेलने लगे थे। धूमिल स्वयं लिखते हैं-

"एक आदमी रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूंछता हूँ-
यह तीसरा आदमी कौन है
मेरे देश की संसद मौन है" (कल सुनना मुझे, पृ.66)

सत्ता के इस संघर्ष में आदमी ही आदमी का दुश्मन बनता चला गया। राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के चलते नेता आम आदमी की जरूरतों से खेलने लगे। सामान्य जन के बीच भेद-भाव, सांप्रदायिकता, जातीय मतभेद आदि को चुनाव के नारे-बाजी का विषय बनाया जाने लगा।

न कोई प्रजा है
न कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ

आदमी का खुलासा

षड्यंत्र है।" (सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, पृ. 21)

सत्ता बनाए रखने के लिए कानूनों से छेड़-छाड़ आम हो गया। धूमिल की कविताओं ने सत्ता के यथार्थ को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। "धूमिल की कविताओं में परिवेशगत यथार्थ के चित्रण के साथ ही साथ व्यवस्था और राजनीतिक तंत्र के विरुद्ध इनका विद्रोह उभड़कर सामने आया है। समकालीन कविता के अंतर्गत इनकी पहचान विद्रोही कविता और वैचारिक संरचना, आम आदमी की जिन्दगी के मुहावरे, व्यंग्य-विडंबना और सपाटबयानी के कारण है"(सिंह, 2006.पृ.235)।

धूमिल सत्ता के मनसूबों पर भी सवाल करते हैं। यह प्रश्न धूमिल का सत्ता से नहीं, बल्कि जनता का संसद से है। वह मोहभंग के बाद आम आदमी के मन में उपजा विचार मात्र है। जनप्रतिनिधि जनता को ही भूल गए हैं, लोग याद हैं मतदाता के रूप में। आजादी का अर्थ ही भूल गए हैं। आजादी को भावनात्मक बनाकर खेल रहे नेताओं से यह प्रश्न उल्लेखनीय है-

"सुनसान गलियों से चोरों की तरह गुजरता हुए
अपने आप से सवाल करता हूं
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है" (कल सुनना मुझे, पृ 12)

सत्ता पक्ष जनता की भावनाओं से वाकिफ है, वह उन्हें वास्तविक मुद्दों से भटकाने के लिए नित-नए मुद्दे प्रस्तुत करता है। जनता को टुच्ची सुविधाएं उपलब्ध करा कर उनकी भावनाओं के साथ खेल रहा है-

तुम चुप रहोगे और लज्जा के
उस निरर्थक गूंगेपन से सहोगे।
यह जानकर कि तुम्हारी मातृभाषा
उस महरी की तरह है, जो
महाजन के साथ रात भर
सोने के लिए/एक साड़ी पर राजी है
सिर कटे मुर्गे की तरह फड़कते जनतंत्र में सुबह
सिर्फ, चमकते हुए रंगों की चालबाजी है।" (कल सुनना मुझे, पृ.15)

एक ही कुर्सी के लिए अलग-अगल पार्टियों की राजनीतिक खेल खेल रहे हैं। जनता उनके ही अनुसार इधर-उधर हो रही है। जनता की अपनी कोई विचार धारा नहीं है, अपने कोई मतभेद नही हैं, वह नहीं जानता कि कौन सा नेता उनके किस हित के लिए काम करेगा अथवा नहीं, लेकिन वह रैलियों में पूरे जोश के साथ समर्थन कर रहा है। वह आज इस पार्टी के लिए तो कल किसी दूसरे, तीसरे के लिए। जनता इस बात को नहीं समझ पा रही है कि यदि सब का लक्ष्य एक ही कुर्सी है, एक ही जन के लिए प्रतिनिधित्व है तो अलग-अलग दलों की नारेबाजी तथा वादों में इतना अंतर क्यों है-

हां यह सही है, कुर्सियों वहीं है
सिर्फ, टोपियां बदल गयी हैं और-
सच्चे मतभेद के अभाव में
लोग उछल-उछल कर
अपनी जगहें बदल रहे हैं
चढ़ी हुई नदी में
हर तरफ विरोध विचारों का दलदल है
सतहों पर हलचल है/नये-नये नारे हैं
भाषण में जोश है" (पटकथा, संसद से सड़क तक, पृ.106)

मंत्री चरित्रहीन हो गए हैं या यूं कहें कि चरित्रहीन, अपराधी तथा अयोग्य लोगों का ही संसद पर बोलबाला हो गया है। अब तो राजनीति भी नीचले स्तर की होने लगी है। जो कभी किसी बड़े राजनीतिक विचारधाराओं को लेकर आगे बढ़ रहे थे, वह टुच्चेपन पर उतर आए हैं-

"लाल हरी झण्डियां-
जो कल तक शिखरों पर फहरा रहीं थी
वक्त की निचली सतहों में उतरकर
स्याह हो गई हैं और चरित्रहीनता
मंत्रियों की कुर्सी में तब्दील हो चुकी है"
(शहर में सूर्यास्त, संसद से सड़क तक, पृ.43)

चुनाव आते ही माहौल बदलने लगता है। भाषणों तथा रैलियों में जनता का महत्व बढ़ जाता है। वह उनके लिए संसद की सीढियां हैं, वह सर्वोपरि हैं। सभी वादे, आश्वासन जो पिछले चुनावों में प्रयुक्त हुए थे कुछ और संश्लिष्ट हो कर फिर से दोहराये जाने लगे हैं। यह राजनीति आम आदमी की समझ से बाहर है -

सुविधा परस्त लोगों के/ऊसर दिमाग में
थूहर की तरह उगी हुई राजनीति
शब्दों के बाहर का व्याकरण है"
(संसद से सड़क तक, पृ.47)

शासन तंत्र सत्ता प्रतिपक्ष के हित में कार्य करते हैं। विपक्ष के साथ प्रतिस्पर्धा में वित्त मंत्री भी सत्ताधारी दल के हितों का ही समर्थन कर रहे होते हैं। विपक्ष को उतना मौका ही नहीं दिया जाता कि वह अपने कार्यों से जनता को प्रभावित कर सकें, हालांकि विपक्ष का भी अंतिम लक्ष्य जनता को प्रभावित कर मत अर्जन ही होता है। समकालीन समय में शासकों की यह मनमानी एवं भेदभाव को जनता नहीं समझ पाती है, लेकिन धूमिल समझते हैं-

"वित्त मंत्री की ऐनक का
कौन सा शीशा कितना मोटा है
और विपक्ष की बेंच पर बैठे हुए
नेता के भाईयों के नाम
सस्ते गल्ले की कितनी दुकानों का
कोटा है"। (संसद से सड़क तक, पृ.84)

संसद और संविधान के नाम पर आम आदमी को शोषण होता है। सत्ता धारियों की सुख सुविधाओं की कीमत आदमी के जीवन से चुकता किया जाता है। जनरक्षक ही भक्षक बना हुआ है। चुनाव के बीत जाने के बाद शासन जनता को भूल जाती है-

ड़फले पर बजती है भूख, पैर में घंटियां
दुपहर की आंच में सिकती हैं
रोटियां/मजा करो/तुम अपनी संसद के साथ
हम अपनी सांसत के साथ"
(रोटियों का शहर,संसद से सड़क तक, पृ.39)

धूमिल अपनी कविता 'स' और 'त' के खेल के माध्यम से सत्ता संघर्ष में उपयोग किए जाने वाले कुछ और कारगर हथियारों का जिक्र करते हैं। सत्ता या तो हत्या करके, डरा -धमका कर हासिल की जाती है, या पैसे लुटा कर। कोई भी दल काम को महत्व नहीं देता है, विकल्प के अभाव में इनमें से कोई एक ही सत्ता में भी आ जाते हैं। यह सदियों से होता आ रहा है । अंग्रजों के शासन का आधार भी यही दो थे, तथा मुसलमानी आक्रमण भी इन में से ही एक थे। यह प्रवृत्ति आज भी है, धूमिल भी अभिव्यक्त करते हैं-

"सत्ता का जन्म बन्दूक की नली से /होता है
सत्ता का जन्म सन्दूक की तली से होता है
और देखो वे किसे चुनते हैं?"
(सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, पृ. 63)

यही कारण है कि संसद का दरवाजा कानूनी तौर पर आम आदमी के लिए खुले होने के बावजूद भी कभी वहां तक नहीं पहुंच पाता है। अक्सर अपराधी या प्रभावशाली वर्गों का ही बोल-बाला हो गया है। जनता शासन के इस जाल को धीरे-धीरे समझती है, धूमिल तो बहुत

पहले ही समझ गए थे। वह शासन के लिए सिर्फ मतदान की गिनती के लिए नहीं हैं, वह रैलियों की भीड़ नहीं हैं, जनता के पास भी आवाज है, संसद दमन करने की शक्ति है, क्रांति की शक्ति है। धूमिल भी इस क्रांति चेतना के पक्षधर हैं-

"तुम जानते हो शब्द शस्त्र बन गए हैं
और अगवा बंदूकक की निशान देही पर
कविता ने ढूढ लिया है अपनी मुक्ति का रास्ता
दुश्मन की छाती के खून भरे छेद से" (कल सुनना मुझे, पृ.58)

जनता भावनात्मक बंधनों को भी समझ चुकी है। गांधी और आजादी के नाम पर हो रही राजनीति से अब जनता का मोहभंग हो रहा है। सत्ता की इस राजनीति से रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति नहीं हो पा रही है, यह त्याज्य है। जो जनता रैलियों, जुलुसों में भीड़ बनती आई है वह भी अपना मूल्य समझ रही है, अब वह रोटी के लिए सोंचेगा। यह चेतना शासन तंत्र से मोहभंग का है। उसे अब शासन के कोई आशा या उम्मीद नहीं है, यह आम जन का असंतोष है-

"उस मुहावरे को समझ गया हूं
जो आजादी और गांधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूंख मिट रही है, न मौसम बदल रहा है,
लोग बिलबिला रहे हैं, पेड़ों को नंगा करते हुए
पत्ते और छाल खा रहे हैं
मर रहे हैं
दान कर रहे हैं
जलसों-जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे हैं और
और अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं"।

(धूमिल, कल सुनना मुझे, पृ.18-19)

इस तरह धूमिल का काव्य समकालीन राजनीतिक परिदृश्य का खुला चित्रण करता है। वह सत्ता के संघर्ष, नीति तथा आम जनता से विमुखता को भी अभिव्यक्त करता है। समकालीन राजनीति में राजनीतिक दलों का आपसी संघर्ष भी आम जन जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। शासन तंत्र के प्रति जनता का अविश्वास बढ़ता गया, राजनीतिक वादों से मोहभंग की स्थिति ने हर स्तर पर प्रभावित किया। धूमिल जनकवि हैं, वह समकालीन यथार्थ को स-स्वर प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं।

****

संदर्भ:-

1. धूमिल, कल सुनना मुझे, दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2010
2. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1972
3. धूमिल, सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1983
4. सिंह, काशीनाथ, काशी का अस्सी, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2011
5. नवल, नंद किशोर, समकालीन काव्य यात्रा, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2004
6. सिंह, काशीनाथ, अपना मोर्चा, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012
7. सिंह, काशीनाथ, आलोचना भी रचना है, नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन, 1996
8. राजपाल, हुकुमचंद, समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2015
9. जोशी, मीनाक्षी, धूमकेतु धूमिल और साठोत्तरी कविता, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2021

अकाल में उत्सव- समकालीन भारतीय ग्रामीण समाज का प्रतिरूप

प्रो.प्रिया
सरकारी आर्टस कॉलज ,केरल
(संप्रतिः विसिटिंग प्रोफेस्सर कसान फेडेरल विश्वविद्यालय) कसान,रूस
फोनः 9447279181 मेलःpriyabhaskarannair@gmail.com

सार-भारतीय किसान होरी से कभी आगे नहीं बढा है या बढ पा रहा है।वास्तव में यह बहुत ही भीषण स्थिति है।देश प्रगति की ओर तेजी से अग्रसर हो रही है।हर क्षेत्र में वह अपनी उन्नति को दिखाकर सबको गौरव कर रही है।पर माँ भारती के ये किसान अब भी अपनी दरिद्रता व अधिकारी वर्ग के गलत कारनामों के चंगुल में फंसा हुआ है यही चिंतन मनन का विषय है।यह कब तक यह होता जाएगा।क्योंकि गोदान पढते समय किस प्रकार की मनासिकता थी उसी मनासिकता से ही इस को और फांस जैसे अन्य उपन्यासों को हम पढते हैं। इसका मतलब है कहीं हम गलत रास्ते से जा रहे हैं।इसमें किसी न किसी प्रकार हल ढूंढना जरूरी है।गोदान का समय तो अंग्रेज राज था।पर उससे भी गयी बीती करतूत हमारे तथाकथित अधिकारी वर्ग आज भी कर रहे हैं। इसको इस जनतंत्र देश में हल निकालना बहुत जरूरी नहीं अवश्यंभावी भी है।पंकज सुबीर जी ने रामप्रसाद और उनकी पत्नी एवं तीन बच्चों वाले परिवार का चित्र एक फिल्मी ढंग से खींचा है।जो हरेक के मन को छूता ही नहीं सबके मन में एक प्रश्न चिह्न डालता है कि आखिर कसूर किसका है।सत्ता का या सत्ता को गलत ढंग से आगे ले जानेवाले एक बहुसंख्यक मनुष्यों की गलत मानसिकता का।

बीज शब्द - तोंडी - पैरों में पहननेवाली एक आभूषण।देवधामी -उन सभी धार्मिक स्थलों की यात्रा तथा वहाँ जाकर नये दूल्हा- दुल्हन को धोक (साष्टांग) दिलवाने की प्रथा।

प्रस्तावना- इस उपन्यास में एक भी पंक्ति बढा चढाकर नहीं लिखा गया है ।क्योंकि जिस प्रकार हमारे मन को उस गांव की तरफ से उस किसान के पास से उस परिवार से यह उपन्यास हटाता नहीं है और पूरा होने के बाद भी वह किसान एवं पूरा चित्र हमारे मन मस्तिष्क में जम कर रह जाता है जिस प्रकार होरी और धनिया हमारे मन में है ठीक उसी प्रकार रामप्रसाद एवं परिवार भी है।उस समय के बारे में हम सोच सकते थे कि वह तो अंग्रज राज का ही परिणाम है। पर आज हम क्या दिलासा दे सकता है इस किसान के परिवार को।साहित्य के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है।इस उपन्यास के बारे में शीर्षस्थ आलोचक मैनेजर पाण्डेयजी ने 2016में जनसत्ता समाचार पत्र में साहित्य इस बरस चर्चा के अंतर्गत बताया था कि '-यह गाँव और किसान जीवन के दुःख-दर्द कहनेवाली रचना है।इस उपन्यास को पढकर कहा जा सकता है कि किसान जीवन में आजकल सुख कम और दुःख ज्यादा है।इस उपन्यास में एक किसान की आत्महत्या भी है।शासन प्रशासन द्वारा उस किसान को पागल घोषित कर अपनी जिम्मेदारी से बचने की कोशिश की जाती है'।1हमेशा किसान को मान एवं अपने सत्कर्म करते ही दिखाया जाता है।अर्थात् किसान कभी किसी प्रकार के झूठ को स्वीकृत नहीं करते। वे मान को हमेशा केलिए पहला स्थान देते है।फिर भी अधिकारी वर्ग उनकी वेदना को नजरअंदाज करने में माहिर है।उन्हें जाने अनजाने किसी प्रकार की सहायता न देते हुए आगे बढने में ही उन लोगों को तृप्ति मिलता है।उनको यह सोचना चाहिए कि इन किसान के रहते ही वे अपना काम कर सकता है और तनख्वाह भी प्राप्त कर रहे हैं।पर कौन सोचता है।दूसरों के बारे में सोचना उनके चप्पल में जाकर खडे होकर के सोचना एवं दया आदि सकारात्मक भावनाओं से उनसे बर्ताव करना आदि एक सच्चा मनुष्य का गुण होनी चाहिए।पर आजकल हर कहीं मस्का लगाना झूठ को अपना आभूषण मानना एवं अपने से थोडा निचले लोगों को परेशान करना उनकी खिल्ली उठाना आदि आजकल के मानवीय बर्ताव में चार चांद लगाने वाली चीजें बन गई है।सिर्फ दिखावा संस्कृति का पनपना एवं राजनीतिक लोग व अधिकारी वर्ग के गैरजिम्मेदारी मनोभाव आदि सामाजिक जीवन को खासकर तथाकथित निम्न तबके के लोगों का जीना दूभर कर दिया है इसका सीधा साक्ष्य ही यह उपन्यास देता है।

इसमें सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के हर पहलुओं को सच्चाई के साथ साझा करने में लेखक सफल हो गया है।राजनीतिक लोगों की गलत व्यवहार, स्वार्थवश कर्म, दिखावा प्रदर्शन एवं दलगत राजनीति का कच्चा ब्यौरा व आपसी द्वन्द्व आदि जो समाज का वास्तविक चित्र का साफ विवरण ही है। कई पहलुओं में बांटकर इस उपन्यास को हम देख सकते हैं।जैसे एक किसान अपने परिवार को चलाने में कितनी मुश्किलें सह लेता है,उस गांव की राजनीतिक माहौल क्या है,अधिकारी वर्ग किस प्रकार इन दरिद्र लोगों को निस्सहाय बना देता है,स्त्री जीवन के दर्द व समर्पण,प्राकृतिक आपदा किस प्रकार एक किसान की जिन्दगी को चकनाचूर कर देता ह,और अंत में इन सबके होते अधिकारी वर्ग व शासक अपनी अपनी सत्ता को कायम रखने की होड में क्या क्या करतूतें करते है इन सबका पूरा चित्र ही यह उपन्यास हमें प्रदान करता है।

किसान एवं परिवार- उस गांव का नाम ही एक प्रकार से किसान के विरुद्ध सा है।सूखा पानी नाम है उस गाँव का ।रामप्रसाद एवं कमला अपने तीन बच्चों को लेकर वहाँ जी रहे हैं।उन दोनों के बीच की वार्तालापों को लेखक ने उनकी बोली में ही कर दिया है।भले ही पूरा अर्थ समझ में नहीं आते पर भी उन दोनों के बीच की उन भावनाओं को उन अनुभूतियों को समझने में कोई दिक्कत नहीं है।शायद उन दोनों के बीच की उन बोलियों से हो रही बातें ही इस उपन्यास की वास्तविकता को बरकरार रखा है ऐसा मुझे लगा।रात का खाना सिर्फ सूखा रोटी व प्याज व मिर्च के साथ लेनेवाले उस परिवार को दिखाकर यह समझाने की कोशिश की है कि देश भर में इन किसानों के द्वारा उगाये गये कितने अन्न हम कूडे कचरे में डालते हैं हर दिन और जो उगाता है वे आज भी एक समय ठीक रूप से खा नहीं पा रहे है।यही समाज का दोहरापन है जिस पर गंभीर कदम उठाना है।पूरे सामान का भाव तो बढ गया है पर उसकी तुलना में अब भी धान्य का भाव बेढा नहीं है ।मैं मानती हूँ कि यही वजह है लोग इसको बरबाद भी कर रहे है।गाँव के लगभग हर किसान अपनी पुश्तैनी खेत को ही संभालते आ रहे है।जब पुश्तैनी के रूप में मिलता है तब उस खेत के साथ बैंक का,सोसाइटी का,सूदखोरों का,कर्ज भी मिलता है।इसी प्रकार ही रामप्रसाद अपने जीवन को भी आगे बढाता है।-दो एकड जमीन में परिवार का गुजारा कैसा होता था,यह रामप्रसाद को ही पता था।-[2] इस तरीके से हर कहीं उस परिवार की दारिद्र्य का चित्र खींचा गया है जो पाठकों के मन को छूता भी है।

स्त्री जीवन का दर्द भरा दास्तान-रामप्रसाद की पत्नी कमला का विवरण इस प्रकार किया है कि धनिया का ही प्रतिबिंब हो।एक प्रकार से यह कृति गोदान की पुनःरचना कहें तो अत्युक्ति नहीं है।-'किसान के जीवन में बढते दःख उसकी पत्नी के शरीर पर घटते जेवरों से आकलित किए जा सकते हैं।नई बहू जब आती है तो नए घाघरे,लुघडे,पोलके के साथ तोडी,बजट्टी,ठुस्सी,झालर,लच्छे,बेंदा,करधनी में झमकती है।फिर धीरे-धीरे उम्र बढने के साथ खेती-किसानी की सुरसा अपना मुँह फाडती है और महिलाओं के शरीर पर से एक-एक जेवर कम होता जाता है'।-[3]इसमें ग्रामीण स्त्री के भोलापन एवं कर्तव्यपरायण प्रतिष्ठा को बरकरार रखने की मानसिकता आदि को कमला के व्यवहार व कर्म से दिखाकर यह समझाने की कोशिश की है कि आज भी भारतीय स्त्रीयाँ विशेषकर ग्रामीण स्त्रीयाँ इस मानसिकता को ही लेकर जी रही हैं कि लोग क्या कहेंगे।इसलिए अपने पती के भाई की पत्नी की माँ की मृत्यू होती है तो अपनी तोडी को बेचकर ही वह परिवार के मान को बरकरार रखने के लिए पूरे आचार के साथ मृत्यू के बाद के अनुष्ठानों को पूरा करती है।तोडी को बेचते वक्त रामप्रसाद की मानसिक द्वन्द्व को लेखक ने बहुत ही दर्दनाक ढंग से लिखा है।जब उसे ब्याह करके लाया गया था तब से रामप्रसाद पहले उसकी तोडी को ही देखा करता था क्योंकि शादी के बाद तो वहाँ देवधामी प्रथा चल रही थी।अब वह सुनार के पास जाकर उस तोडी को मजबूरन बेच डाला है। ।यह वह सहन नहीं कर पा रहे थे।कमला ने आर्थिक तंगीपन के कारण एक प्रकार से जबर्दस्ती से ही बेच डालने केलिए उकसाया था।क्योंकि बहिन की माँ की मृत्यू के कुछ दिन बाद वहाँ जाकर बहुत सारे कर्म को पूरा करने केलिए बहुत पैसों की जरूरत पडती है।आज भी इस प्रकार के रस्मों से लोग एकदम परेशान है फिर भी परिवार की प्रतिष्ठा के मद्देनजर यह सब करने में लोग मजबूर हो जाते हैं।रामप्रसाद एवं कमला के साथ भी यही हुआ।लेखक का कहना कि -'औरत की एक विशेषता यह होती है कि वह आंसू देखते ही माँ बन जाती है।फिर इस बात से कोई फर्क नहीं पडता कि आँसू किसके निकल रहे हैं,उसके बच्चों को उस अवसाद से बाहर खींचने की कोशिश कर रही थीं।4-इसमें पति पत्नी के बीच का एक आध्यात्मिक रिश्ते को ही उजागर कर दिया है जो हममें सूकून सा भाव जगाता भी है।

सूखा पानी गांव की राजनीति - यह गाँव उस राज्य के मुख्यमंत्री का ही विधान सभा क्षेत्र है इसलिए हर कोई इस जगह को बहुत ही करीने से देखते है।ताकि कुछ अनहोनी न हो जाए जिसका रिपोर्ट मीडियावाले अपनी रेटिंग बढाने केलिए देने में तुले हुए है। अगला चुनाव होनेवाला है।चुनाव के पहले हर कहीं होने वाले तथाकथित कार्यक्रम के बारे में इस के अधिकारी वर्ग चिंतित है और उसको किस प्रकार कराना है आदि पर चर्चाएं परिचर्चाएं होती रहती हैं।राजनीति की मूल्यहीनता के बारे लेखक सजग है।दलबदल राजनीति हो चाहे दलगत राजनीती के अंतर होनेवाली खोखलेपन हो इन सबका साफ चित्र इसमें से मिलता है।पार्टी के लोगों की अंदरूनी समस्याओं से उसके अंदर के लोग परेशान है।पर कुछ कह नहीं सकता है।क्योंकि राजनीति से हटा दिया जाएगा इस डर से वे किसी से कह नहीं सकता।इस बात की चर्चा में मोहन राठी एवं राकेश पाँडे, जो वहाँ के राजनीतिक कार्यकर्ता है,के मुँह से कहलवाया है।जैसे दलबदल राजनीति पर अपनी गुस्सा जाहिर करता हुआ मोहन राठी जब बात की थी तब उन दोनों के बीच हुई बातचीत से भारतीय राजनीती की अंदरूनी परतें भी सामने आता हुआ नजर आता है।-.....वह तो राजनीति में अपना बिसिनस सेफ करने केलिए आया है।.....क्या इस प्रकार से हर किसी को राजनीति में ले आना सही काम है।.....मेरा तो मानना है कि जहाँ तक संभव हो,वहाँ तक कोशिश करना चाहिए कि धन-पशु राजनीति में नहीं आएँ।.....अगर यह लोग राजनीति में आएँगे, तो राजनीति में आम आदमी के लिए कुछ नहीं बचेगा।.....यह तो वोट खरीदनेवाले लोग है।[5] आगे नेताओं के चुनाव के बारे में कहता है कि -जिले के पार्टी अध्यक्ष का चुनाव भले ही हम कार्यकर्ताओं के वोट से होता है लेकिन,हकीकत यह है कि नाम ऊपर से तय होकर आ जाता है,हमें तो बस उस तय नाम को वोट देना होता है।यह होता है पार्टियों का अंदरूनी लोकतंत्र।.....विरोध करेंगे,तो हाशिए पर डाल दिये जाएँगे।.....पार्टियों को कार्यकर्ताओं नहीं चाहिए होते,उन्हें अंधे,बहरे और गूँगे लोगों की फौज चाहिए होती है।6राजनीतिक लोगों की दल बदल प्रक्रिया को भी इसमें करारे ढंग से आलोचना की है।राजनीतिक लोगों की एवं तथाकथित समाजसेवकों के खोखलेपन को पर्दाफाश करने में यह उपन्यास सफल हुआ है।'जिन्होंने पार्टी के बुरे समय में पार्टी के झंडे उठाए,दरियाँ बिछाई,वह आज कहीं नहीं हैं और हमारे बाद दूसरी पार्टियों से आनेवाले लोग मलाई उडा रहे हैं।हम जब ओपोशिजन में थे,तो जिन सत्ताधारियों के खिलाफ आवाजें उठाने पर पुलीस के डंडे खाते थे,आज वह लोग हमारी पार्टी के सत्ता में आते ही,पाली बदल कर यहाँ आ गए।यहाँ भी आकर उनको पद मिल गए'।7हर कहीं आम जनता निराश हताश है।जहाँ अधिकार है वहां जाने के लिए लोग हमेशा चाहते हैं।दलबदल राजनीति बहुत घिनौना ही है। **अस्पताल का कुप्रबंधन-**हर समय अस्पताल बहुत सारे लोगों के लिए भीषण ही था,है और रहेगा।क्योंकि वहाँ मनावीय मूल्य करुणा आदि का कोई मायना नहीं है। रोगियों के दर्द को समझनेवाले पहचाननावाले डाक्टर या अधिकारी बिरले ही मिलते है।अगर ऐसे लोग है तो उनको लोग देवता के रूप में ही देखता है।बहुमत अपने को किस प्रकार लाभ उठा सकते है इसी के पीछे है हमेशा।यह एक अस्पताल का नहीं है लगभग हरेक अस्पताल का अलिखित नियम सा है।क्योंकि मेडिकल भ्रष्टाचार अन्यों से ज्यादा है आजकल।मानवीय मसीहा बननेवाले लोग मनव के राक्षस में बदलने का रूप हमने बहुत सारे संगर्भ में देखते है।यहां भी रामप्रसाद की बहिन की सांस अस्पताल में है और उन गरीबों से किस प्रकार का बर्ताव सरकारी अस्पताल वाले करते है।इसका विवरण है।पढकर किसी भी प्रकार अतिशयोक्ति सा नहीं लगेगा।क्योंकि यह चालू है हर कहीं।चाहे गाँव में हो या नगर इसमें कोई बदलाव नहीं है।उस माँ को अस्पताल में भर्ती कर बहुत दिन हो गया।पर ठीक इलाज अभी तक नहीं मिला था।नगर में,क्योंकि मुख्यमंत्रि के विधानसभा होने के कारण वहां किसी प्रकार का उत्सव मनाने में सारे अधिकारी जुडे हुए है।रामप्रसाद के आने पर देखा कि कोई डाक्टर नहीं आया है अभी तक।नर्स अपनी ही समझ से बोटल चढा रही है। पूछने पर

वहाँ के वार्ड बांय का वाक्य इन सारे भ्रष्टाचार का पोल खोलता है--'यहाँ सरकारी अस्पताल में तो सब ऐसा ही चलेगा कामचलाऊ,तुम लोग उनको डॉक्टर साहब के घर जाकर दिखा लो एक बार।वहाँ से अच्छी तरह से देख लेंगे।....घर में जाकर दिखा दो,उनकी फीस दे दो,अच्छी तरह से देख लेंगे और अगर तुम्हारी गुंजाइश होगी, तो किसी नर्सिंग होम में भी भर्ती कर देगा'।-8इस प्रकार गरीबों के लिए जो गुण इन सरकारी अस्पतालों से मिलना था उन सबको पूरी तरह मिटाकर अपने अपने नर्सिंग होम में इनको ले जाकर उसका भीषण लाभ उठाने की रीति हमारे समाज का क्रूर सत्य है।इसमें वार्ड बॉय से लेकर सब भागीदार भी है।कमीशन लेकर सब लोग जीने के लिए आदि हो गये है।जब ऐसा नहीं किया तो रोगियों की मौत ही निश्चित है।कलक्टर आदि अधिकारियों के आने पर भी अस्पताल वाले कुछ करने केलिए तैयार नहीं है।कुछ भी हो उनकी मौत हो गयी थी।सरकारी आंबुलन्स की स्थिति के बारे में वर्णन है-'हालांकि अस्पताल में शव वाहन भी था लेकिन वह टायरों की जगह ईंटों पर अस्पताल के प्रागण में ही खडा अपनी दुर्दशा पर आँसू बहा रहा था। साल भर पहले ही स्थानीय सांसद ने एक भव्य कार्यक्रम में किसी सरकारी योजना के तहत आया यह शव वाहन अस्पताल को दिया था'।-[9]

अधिकारी वर्ग का दोहरा व्यवहार-कलक्टर जब अस्पताल में निगरानी के लिए आये थे तब सबको निर्देश दिया था कि सबको ठीक रूप से इलाज दिया जाए।पर कुछ नहीं होता।उसी प्रकार जब रामप्रसाद को किसान क्रेडिट कार्ड के गलत इस्तेमाल कर बिना किसान की जानकारी के उनके खाते से पैसा लेना और रेवन्यू रिकवरी के लिए पेपर भेजना आदि बैंक एवं सब अधिकारी वर्गों के मौन जानकारी से ही होता है।पर इसका बुरा असर गरीब किसान को ही भुगतना पड़ता है।जब उससे गांव के अध्यापक ने कहा कि इन पेपर को लेकर नगर में जाकर बैंक के और रेवन्यू वालों से मुलाकात करने केलिए तो जब उनकी मुलाकात कलक्टर से होता है तो कलक्टर उनकी हालात देखकर चाय एवं खाना दिलाने के लिए कहता है।और जब रामप्रसाद खाना खाता है तो उसे लगता है कि थोडा उनकी पत्नी एवं बच्चों के लिए भी लें तो अच्छा होता ।तो उसने रास्ते में खाने के बहाने कुछ लेता जाता है।जब कलक्टर के अर्दली ने आकर यह बात कलक्टर से बताता है तो उनकी प्रतिक्रिया उनके वास्तविक रूप को दिखाता है।श्रीराम परिहार का कहना है किसान हमेशा ज्यादा लेता है।सब कुछ हडपने की मानसिक स्थिति मे हैं आदि।क्रूर ढंग से यह कहना सचमुच अधिकारी वर्ग की निर्दयता दिखाता है।किसी प्रकार उन्हें नगर उत्सव का आयोजन करना ही है।उसके बीच किसान की कोई परेशानी या कुछ और आ जाए तो मीडिया लोग उसको किसी अन्य प्रकार से उसका रिपोर्ट देगा।इस पर किसी प्रकार रोक रखने केलिए मुखौटा पहनकर अपना काम चलाने की विधा है।कलक्टर श्रीराम परिहार रामप्रसाद को कलक्टरेट में देखते वक्त कार्य पूछता है और उनसे बहुत ही आश्वासन दिलाकर बताता है कि -'जाओ अपने गाँव जाओ,हम बैंक से बात करते हैं इस पूरे मामले में'-10इसके बाद वहाँ के अधिकारियों के बीच की बातचीत कि इस उत्सव खतम होने तक इन्हें कलक्टर से न मिलवाना।उसके बाद हम इनकी भूमि को जब्त कर लेंगे।सब लोगों को पता है कि बैंक वालों ने गलत किया है फिर भी वे किसान के विरुद्ध है।

प्राकृतिक आपदा- प्राकृतिक आपदायें हमेशा किसान के लिए बहुत बडा शत्रु है।कब आयेगा कोई पता नहीं है।जब आयेगा तो किसान का सर्वनाश ही है।इस प्रकार के कठिन परिस्थितियों से गुजर कर भी किसान कभी यह मत सोचता है अगला साल मैं खेती नहीं करेगा।यही उनकी धार्मिकता है।भारी बारिश और वह भी ओले के साथ गिरना उन किसान परिवारों को पूरी तरह त्रस्त कर देता है।फिर जब उसकी मुआवजा के लिए जाते है तो वहाँ के पटवारी रामप्रसाद से रिश्वत के रूप में तीन हजार रूपया मांगता है।क्योंकि रामप्रसाद कलक्टर को मिलने गये थे उस दिन इसी को लेकर बहुत मजाक भी किया गया।इस पर मानसिक विभ्रान्ति का आना स्वाभाविक भी है।रामप्रसाद वहाँ से एक पागल की तरह चला गया और उस रात कुएँ में कूदकर आत्महत्या भी की थी।

उत्सव की तैयारियाँ-दो हिस्सों में इस उपन्यास को बाँटे तो इस उपन्यास का शीर्षक बहुत समीचीन है।क्योंकि अकाल में ही उत्सव का आयेजन होता है ।ये अत्सव किसके लिए है।समाज के तथाकथित उच्चवर्ग के लोगों के लिए ही है।यही इसमें दिखाया गया है।उस रात जब टीवी में इसकी खुदखुशी का रिपोर्ट आता है तो तुरंत उसको रोकने की कोशिश कल्क्टर आदि के द्वारा होता है और किसी न किसी प्रकार उसकी मौत उनके पागल हो जाने से ही हुआ है ऐसा सभी से कहलवाता है।उसके लिए रात में ही सारे अधिकारी वर्ग वहाँ जा पहूँचता है और उसके लिए षडयंत्र रचाता है।उसके भाई को समाझा बुझाकर यह कहलवाता है कि मृत्यू किसी और कारण से हुई है पटवारी के द्वारा रिश्वत माँगने पर नहीं है ।बेडे सबेरे लाश को दफनाकर अन्य मीटिया के लोगों के आने तक उस पूरे मामले को नगण्य कर दिया जाता है।यही अधिकार की शक्ति है।जिसको आम लोगों को समझना भी चाहिए।

मीडिया की अदा-यह कहानी बरसों-बरस से लिखी जा रही है और बरसों-बरस से पढी जा रही है।मगर आज भी वैसी की वैसी ही है।पात्र बदलते हैं मगर घटनाएँ नहीं बदलतीं।ऐसा लगता है, जैसे किसी स्थगित से समय में जाकर यह कथाएँ फँस गई हैं।जहाँ से इनकी मुक्ति नहीं हो पा रही है।इस कथन से इस उपन्यास का सब इतिवृत्त सामने आता है।लेखक की अपनी कथन से ही इसको समेटना भी समीचीन है।आगे आनेवाले समय जिस प्रकार प्रेमचंद,संजीव जैसे लेखकों ने सोचा था कि कुछ तो परिवर्तन होगा। इसी सोच के साथ हम भी आगे बढेंगे।क्योंकि हमें राहगीर बनाने के लिए आशा ही चाहिए। आजकल मीडिया किस प्रकार समाचारों को बिना सच्चाई के साथ लेते है और देते है इसका चित्र ही है रामप्रसाद की मृत्यू के बाद के समाचार।

यह उपन्यास बहुत सारे प्रश्न पाठकों के सामने रखकर ही समाप्त होता है।जैसे लेखक का प्रश्न कि खेतों में दिन रात परिश्रम करने वाले किसान के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य तय है किन्तु, दवाओं का कहीं कोई न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं है।वाली बात हम सबको सोचने पर मजबूर कर देता है।'सरकारी व्यवस्था शेर के शिकार करने के समान होती है, जब शेर अपने शिकार में से पेट भर खा लेता है,तो बाकी का शिकार अपने से छोटे जानवरों, मतलब गीदडों आदि के लिए छोड देते हैं।'[11]एक प्रकार से मन को मसोस कर ही यह उपन्यास से गुजर सकता है।कुछ भी हो इसमें बदलाव जरूर होनी चाहिए।

****

संदर्भ सूची:

1.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश कवर पेज
2.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.10
3.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.11
4.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.23
5.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.84
6.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.85
7.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.86
8.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.57-58
9.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.69-70
10.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.149
11.पंकज सुबीर 2018 अकाल में उत्सव,शिवना प्रकाशन, सीहोर,मध्यप्रदेश पृ.सं.15

आतंकवाद-विरोधी गतिविधियाँ

डॉ. लाल बहादुर राम
एसोसिएट प्रोफेसर,
सैन्य विज्ञान विभाग, समता पी जी कॉलेज सादात,गाजीपुर

सारांश -आतंकवाद समकालीन विश्व में वैश्विक शांति, सुरक्षा और मानवाधिकारों के लिए सबसे गंभीर खतरों में से एक है। जहाँ एक ओर राज्य अपने नागरिकों को आतंकवादी खतरों से बचाने के लिए बाध्य हैं, वहीं दूसरी ओर आतंकवाद-रोधी उपाय कई बार मौलिक मानवाधिकारों और विधि के शासन के लिए चुनौती बन जाते हैं। यह शोध पत्र आतंकवाद, मानवाधिकार और आतंकवाद-रोधी रणनीतियों के बीच जटिल संबंधों का समालोचनात्मक अध्ययन करता है। अंतरराष्ट्रीय कानूनी ढाँचों, विशेषकर संयुक्त राष्ट्र के दिशा-निर्देशों के आधार पर, यह अध्ययन दर्शाता है कि आतंकवाद जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा जैसे मूलभूत अधिकारों को कैसे प्रभावित करता है। साथ ही, यह भी स्पष्ट करता है कि यदि आतंकवाद-रोधी उपायों को उचित रूप से लागू न किया जाए तो वे यातना, अवैध हिरासत, भेदभाव और नागरिक स्वतंत्रताओं के हनन का कारण बन सकते हैं।
यह शोध निष्कर्ष निकालता है कि प्रभावी आतंकवाद-रोधी रणनीतियाँ मानवाधिकारों के सम्मान पर आधारित होनी चाहिए, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

मुख्य शब्द: मानवाधिकार, आतंकवाद, आतंकवाद-रोधी उपाय, अंतरराष्ट्रीय कानून, सुरक्षा, नागरिक स्वतंत्रता, संयुक्त राष्ट्र

परिचय (Introduction)

आतंकवाद एक वैश्विक समस्या बन चुका है जो विश्व के लगभग हर क्षेत्र को प्रभावित करता है। यह न केवल जीवन की हानि और संपत्ति के विनाश का कारण बनता है, बल्कि लोकतांत्रिक संस्थाओं, आर्थिक स्थिरता और सामाजिक सामंजस्य के लिए भी खतरा उत्पन्न करता है।
संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, आतंकवाद का मानवाधिकारों के उपभोग पर सीधा और गंभीर प्रभाव पड़ता है, विशेषकर जीवन, स्वतंत्रता और शारीरिक सुरक्षा के अधिकार पर। दूसरी ओर, राज्यों का दायित्व है कि वे अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों को आतंकवादी खतरों से सुरक्षा प्रदान करें। किन्तु इस दायित्व को निभाते समय कई सरकारें ऐसे उपाय अपनाती हैं जो मानवाधिकारों का उल्लंघन करते हैं, जैसे—मनमानी गिरफ्तारी, यातना, निगरानी और असहमति का दमन।
इस शोध का मुख्य उद्देश्य है:
- आतंकवाद और मानवाधिकारों के संबंध का अध्ययन करना
- आतंकवाद-रोधी कानूनी ढाँचों का विश्लेषण करना
- मानवाधिकार संबंधी चुनौतियों की पहचान करना
- संतुलित एवं अधिकार-सम्मत नीतियों का सुझाव देना

अवधारणात्मक ढाँचा (Conceptual Framework)

मानवाधिकारों की प्रकृति, क्षेत्र एवं विकास

मानवाधिकार केवल नैतिक सिद्धांत नहीं हैं, बल्कि यह एक विकसित अंतरराष्ट्रीय कानूनी व्यवस्था का हिस्सा हैं, जो व्यक्तियों की गरिमा, स्वतंत्रता और समानता की रक्षा करते हैं। ये अधिकार सार्वभौमिक (Universal), अविभाज्य (Indivisible) और परस्पर निर्भर (Interdependent) होते हैं। मानवाधिकारों का विकास ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ा हुआ है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुए अत्याचारों ने अंतरराष्ट्रीय समुदाय को यह सोचने पर मजबूर किया कि एक ऐसी वैश्विक व्यवस्था बनाई जाए जो भविष्य में इस प्रकार के उल्लंघनों को रोक सके। इसी संदर्भ में 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (UDHR) को अपनाया गया, जिसने मानवाधिकारों की आधुनिक अवधारणा को जन्म दिया। समकालीन युग में मानवाधिकार केवल राज्य और नागरिकों के बीच संबंध तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वैश्विक न्याय, पर्यावरणीय सुरक्षा और डिजिटल अधिकारों तक विस्तारित हो चुके हैं। उदाहरण के लिए, इंटरनेट की स्वतंत्रता, डेटा सुरक्षा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक उपयोग को भी अब मानवाधिकारों के अंतर्गत देखा जा रहा है।

आतंकवाद की अवधारणा और कानूनी समझ -आतंकवाद की कोई सार्वभौमिक परिभाषा न होने के बावजूद, इसे सामान्यतः एक ऐसी हिंसात्मक गतिविधि के रूप में समझा जाता है जिसका उद्देश्य भय उत्पन्न करना और राजनीतिक या वैचारिक लक्ष्य प्राप्त करना होता है।
कानूनी दृष्टि से, विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संधियाँ आतंकवाद को विशिष्ट अपराधों के रूप में परिभाषित करती हैं—जैसे विमान अपहरण, बंधक बनाना, और आतंकवादी वित्तपोषण।
आतंकवाद की अस्पष्ट परिभाषा के कारण कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं:
- कुछ राज्य राजनीतिक विरोध को भी आतंकवाद के रूप में प्रस्तुत करते हैं
- मानवाधिकारों के उल्लंघन को वैध ठहराने के लिए आतंकवाद का उपयोग किया जाता है
- अंतरराष्ट्रीय सहयोग कमजोर होता है

इसलिए, आतंकवाद की स्पष्ट और संतुलित परिभाषा अत्यंत आवश्यक है ताकि कानून का दुरुपयोग न हो।

आतंकवाद का मानवाधिकारों पर प्रभाव

प्रत्यक्ष उल्लंघन-आतंकवादी घटनाओं का सबसे स्पष्ट प्रभाव जीवन के अधिकार पर पड़ता है। निर्दोष नागरिकों की हत्या, बम विस्फोट, और आत्मघाती हमले सीधे तौर पर मानवाधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक प्रभाव -आतंकवाद केवल भौतिक क्षति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक संरचना को भी प्रभावित करता है। प्रभावित क्षेत्रों में लोग निरंतर भय और असुरक्षा की भावना में जीते हैं।
दीर्घकालिक प्रभावों में शामिल हैं:
- PTSD (Post-Traumatic Stress Disorder)
- सामाजिक अविश्वास
- समुदायों के बीच विभाजन

आर्थिक प्रभाव -आतंकवाद आर्थिक विकास को बाधित करता है। पर्यटन, निवेश और व्यापार में गिरावट आती है। सरकारों को सुरक्षा पर अधिक खर्च करना पड़ता है, जिससे सामाजिक कल्याण योजनाओं पर असर पड़ता है।

राजनीतिक एवं संस्थागत प्रभाव -आतंकवाद लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमजोर करता है और कई बार सरकारों को कठोर और अधिनायकवादी नीतियाँ अपनाने के लिए प्रेरित करता है। इससे नागरिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लग सकता है।

आतंकवाद-रोधी उपायों में राज्य की जिम्मेदारी

राज्य का प्राथमिक कर्तव्य अपने नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करना है। इसके लिए आवश्यक है:
- खुफिया तंत्र को मजबूत करना
- सुरक्षा एजेंसियों का समन्वय
- आतंकवादी नेटवर्क को समाप्त करना

यदि राज्य यह दायित्व निभाने में असफल रहता है, तो यह मानवाधिकारों के उल्लंघन के रूप में देखा जा सकता है।

कानूनी सीमाएँ -आतंकवाद-रोधी उपायों को कानूनी ढाँचे के भीतर रहकर लागू करना आवश्यक है। यदि सुरक्षा के नाम पर अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो यह लोकतांत्रिक मूल्यों के खिलाफ है।

आतंकवाद-रोधी उपायों में मानवाधिकार चुनौतियाँ -अत्यधिक बल का प्रयोग कई बार सुरक्षा बल आतंकवाद से निपटने के लिए अत्यधिक बल का उपयोग करते हैं, जिससे निर्दोष नागरिकों को नुकसान होता है। यह अंतरराष्ट्रीय कानून के "संतुलन और आवश्यकता" सिद्धांत का उल्लंघन है। यातना और जबरन पूछताछ यातना का उपयोग सूचना प्राप्त करने के लिए किया जाता है, लेकिन यह मानवाधिकारों का गंभीर उल्लंघन है और इससे प्राप्त जानकारी भी अक्सर अविश्वसनीय होती है। मनमानी गिरफ्तारी बिना उचित कानूनी प्रक्रिया के लोगों को हिरासत में रखना न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है। भेदभाव और प्रोफाइलिंग आतंकवाद-रोधी नीतियाँ कई बार विशेष समुदायों को निशाना बनाती हैं, जिससे सामाजिक असमानता बढ़ती है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सरकारें आलोचना को दबाने के लिए आतंकवाद विरोधी कानूनों का दुरुपयोग कर सकती हैं। निगरानी और निजता डिजिटल युग में निगरानी बढ़ गई है, जिससे व्यक्तिगत गोपनीयता खतरे में है।

आतंकवादरोधी कानूनी ढाँचा–

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून -अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून आतंकवाद-रोधी उपायों के लिए एक मूलभूत ढाँचा प्रदान करता है, जो यह सुनिश्चित करता है कि सुरक्षा के नाम पर मानवाधिकारों का हनन न हो। यह कानून राज्यों को कुछ परिस्थितियों में अधिकारों पर सीमित प्रतिबंध लगाने की अनुमति देता है, किन्तु इसके लिए कठोर शर्तें निर्धारित की गई हैं।

इन शर्तों में मुख्यतः तीन सिद्धांत शामिल हैं:

वैधतता) Legality) – कोई भी प्रतिबंध विधि द्वारा स्थापित होना चाहिए।

आवश्यकता) Necessity) – प्रतिबंध केवल तभी लगाया जा सकता है जब वह वास्तविक और तात्कालिक खतरे से निपटने के लिए आवश्यक हो।

अनुपातिकता) Proportionality) – अपनाए गए उपाय खतरे के अनुपात में होने चाहिए और अत्यधिक नहीं होने चाहिए। इसके अतिरिक्त, कुछ अधिकार ऐसे होते हैं जिन्हें किसी भी परिस्थिति में निलंबित नहीं किया जा सकता, जैसे—जीवन का अधिकार, यातना से मुक्ति का अधिकार, और दासता से स्वतंत्रता। आधुनिक समय में, डिजिटल निगरानी, साइबर सुरक्षा और डेटा संरक्षण के संदर्भ में भी मानवाधिकार कानून का महत्व बढ़ गया है, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि तकनीकी प्रगति के साथ-साथ नागरिक स्वतंत्रता सुरक्षित रहे।

आपातकालीन स्थिति में अधिकारों का निलंबन -आतंकवादी खतरों की गंभीरता को देखते हुए कई बार राज्य आपातकाल (Emergency) घोषित करते हैं, जिसके दौरान कुछ अधिकारों को अस्थायी रूप से निलंबित किया जा सकता है।

किन्तु अंतरराष्ट्रीय कानून इस प्रक्रिया को कठोर नियंत्रणों के अधीन रखता है:

- आपातकाल केवल **वास्तविक और असाधारण संकट** की स्थिति में ही घोषित किया जा सकता है।
- अधिकारों का निलंबन **अस्थायी और सीमित अवधि** के लिए होना चाहिए।
- यह उपाय **भेदभावपूर्ण नहीं होना चाहिए।**
- कुछ मूलभूत अधिकार, जैसे—यातना से मुक्ति, जीवन का अधिकार—कभी भी निलंबित नहीं किए जा सकते। यदि राज्य इन शर्तों का पालन नहीं करते, तो यह अधिकारों के दुरुपयोग औरअधिनायकवाद की ओर ले जा सकता है। इसलिए, आपातकालीन शक्तियों के उपयोग पर न्यायिक और संसदीय निगरानी अत्यंत आवश्यक है।

अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानून (International Humanitarian Law) -अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानून (IHL) सशस्त्र संघर्ष की स्थिति में लागू होता है और इसका मुख्य उद्देश्य युद्ध के प्रभावों को सीमित करना तथा नागरिकों और गैर-लड़ाकों की सुरक्षा सुनिश्चित करना है।आतंकवाद-रोधी अभियानों में, विशेषकर जब वे सशस्त्र संघर्ष का रूप ले लेते हैं, IHL के सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं:

- भेद (Distinction) – नागरिकों और लड़ाकों के बीच स्पष्ट अंतर किया जाना चाहिए।
- अनुपातिकता (Proportionality) – सैन्य कार्रवाई से होने वाली क्षति अत्यधिक नहीं होनी चाहिए।
- सावधानी (Precaution) – नागरिकों को नुकसान से बचाने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए।

IHL यह भी स्पष्ट करता है कि:

- नागरिकों पर जानबूझकर हमला करना प्रतिबंधित है
- सामूहिक दंड (Collective Punishment) अवैध है

इस प्रकार, IHL आतंकवाद-रोधी अभियानों को मानवीय और कानूनी सीमाओं के भीतर रखने में सहायक होता है।

अंतरराष्ट्रीय आपराधिक कानून (International Criminal Law)

अंतरराष्ट्रीय आपराधिक कानून उन अपराधों से संबंधित है जो संपूर्ण मानवता के विरुद्ध माने जाते हैं। कई आतंकवादी कृत्य, विशेष रूप से जब वे व्यापक और संगठित रूप में किए जाते हैं, **मानवता के विरुद्ध अपराध (Crimes Against Humanity)** या **युद्ध अपराध (War Crimes)** की श्रेणी में आ सकते हैं।

इस कानून के अंतर्गत:

- अपराधियों को अंतरराष्ट्रीय न्यायालयों में दंडित किया जा सकता है
- व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Individual Criminal Responsibility) निर्धारित किया जाता है
- "आदेश का पालन" (Following Orders) को बचाव के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता

यह कानून यह सुनिश्चित करता है कि गंभीर अपराध करने वाले व्यक्तियों को दंड से बचने का अवसर न मिले, चाहे वे किसी भी देश या पद से संबंधित हों।

शरणार्थी कानून (Refugee Law) -आतंकवाद और संघर्ष के कारण लाखों लोग अपने देश छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। ऐसे में अंतरराष्ट्रीय शरणार्थी कानून उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करता है। इसका प्रमुख सिद्धांत है:

Non-Refoulement (नॉन-रिफाउलमेंट) – किसी भी व्यक्ति को उस देश में वापस नहीं भेजा जा सकता जहाँ उसकी जान या स्वतंत्रता को खतरा हो।

हालाँकि, सुरक्षा चिंताओं को ध्यान में रखते हुए:

- यदि कोई व्यक्ति आतंकवादी गतिविधियों में शामिल पाया जाता है, तो उसे संरक्षण से वंचित किया जा सकता है
- राज्यों को शरण प्रक्रिया में सुरक्षा जांच करने का अधिकार होता है

इस प्रकार, शरणार्थी कानून मानवता और सुरक्षा के बीच संतुलन स्थापित करता है।

आतंकवाद के पीड़ितों के अधिकार

आतंकवाद के पीड़ितों को अक्सर नीतियों में पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता, जबकि वे इस समस्या के सबसे अधिक प्रभावित पक्ष होते हैं। पीड़ितों के अधिकारों को निम्नलिखित आयामों में समझा जा सकता है:

स्वास्थ्य और पुनर्वास-पीड़ितों को त्वरित चिकित्सा सहायता, दीर्घकालिक उपचार और पुनर्वास सेवाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक सहयोग-आतंकवाद के प्रभाव से उत्पन्न मानसिक आघात को दूर करने के लिए परामर्श और मनोचिकित्सा सेवाएँ आवश्यक हैं।

आर्थिक सहायता और मुआवजा
सरकारों को पीड़ितों को आर्थिक सहायता प्रदान करनी चाहिए ताकि वे सामान्य जीवन में लौट सकें।
न्याय तक पहुँच) Access to Justice)
पीड़ितों को न्यायिक प्रक्रिया में भाग लेने, मुआवजा प्राप्त करने और दोषियों के खिलाफ कार्रवाई की मांग करने का अधिकार होना चाहिए।
सम्मान और गरिमा
पीड़ितों के साथ सम्मानजनक व्यवहार किया जाना चाहिए और उनकी पहचान एवं गोपनीयता की रक्षा की जानी चाहिए।
सुरक्षा और मानवाधिकारों में संतुलन(विस्तृत)
विधि का शासन (Rule of Law)
किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में सभी कार्य कानून के अनुसार होने चाहिए। आतंकवाद-रोधी उपाय भी विधि के शासन के अधीन होने चाहिए, ताकि मनमानी और शक्ति के दुरुपयोग को रोका जा सके।
जवाबदेही (Accountability)
सरकार और सुरक्षा एजेंसियों को उनके कार्यों के लिए उत्तरदायी बनाया जाना आवश्यक है। इसके लिए:
• स्वतंत्र न्यायपालिका
• मानवाधिकार आयोग
• संसदीय निगरानी
महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
संतुलन (Proportionality)
कोई भी सुरक्षा उपाय इतना कठोर नहीं होना चाहिए कि वह नागरिक स्वतंत्रता को पूरी तरह समाप्त कर दे। उपायों का उद्देश्य केवल खतरे को नियंत्रित करना होना चाहिए, न कि समाज पर अत्यधिक नियंत्रण स्थापित करना।
मूल कारणों का समाधान (Root Causes) (विस्तार)
आतंकवाद केवल सुरक्षा उपायों से समाप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए उन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारणों को समझना आवश्यक है जो लोगों को उग्रवाद की ओर प्रेरित करते हैं।
मुख्य कारणों में शामिल हैं:
• गरीबी और बेरोजगारी
• शिक्षा की कमी
• सामाजिक और राजनीतिक बहिष्करण
• अन्याय और असमानता
इन कारणों को दूर किए बिना आतंकवाद का स्थायी समाधान संभव नहीं है।
अंतरराष्ट्रीय संगठनों की भूमिका
संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठन वैश्विक स्तर पर आतंकवाद से निपटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
इनकी प्रमुख भूमिकाएँ हैं:
• **मानक निर्धारण (Standard Setting)** – अंतरराष्ट्रीय कानून और दिशा-निर्देश बनाना
• **निगरानी (Monitoring)** – सदस्य देशों द्वारा पालन की समीक्षा करना।
• **तकनीकी सहायता (Technical Assistance)** – देशों को क्षमता निर्माण में सहायता देना।
• **अंतरराष्ट्रीय सहयोग (Cooperation)** – सूचनाओं और संसाधनों का आदान-प्रदान।
ये संगठन वैश्विक शांति और सुरक्षा को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।
समालोचनात्मक विश्लेषण
मानवाधिकार और आतंकवाद-रोधी उपायों के बीच संबंध अत्यंत जटिल और बहुआयामी है। अक्सर यह माना जाता है कि सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए मानवाधिकारों में कटौती आवश्यक है, किन्तु यह धारणा पूरी तरह सही नहीं है।
अत्यधिक कठोर और दमनकारी नीतियाँ:
• समाज में असंतोष और अलगाव की भावना को बढ़ाती हैं।
• उग्रवाद और कट्टरता को प्रोत्साहित कर सकती हैं।
• सरकार की वैधता को कमजोर करती हैं।
इसके विपरीत, मानवाधिकार-आधारित दृष्टिकोण:
• जनता का विश्वास बढ़ाता है।
• कानून के शासन को मजबूत करता है।
• दीर्घकालिक शांति और स्थिरता सुनिश्चित करता है।
इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि सुरक्षा और मानवाधिकार परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रभावी आतंकवाद-रोधी रणनीति वही है जो मानवाधिकारों का सम्मान करते हुए सुरक्षा सुनिश्चित करे।
निष्कर्ष -आतंकवाद और मानवाधिकारों के बीच संबंध आधुनिक वैश्विक परिदृश्य में अत्यंत जटिल और संवेदनशील विषय के रूप में उभरता है। यह स्पष्ट है कि आतंकवाद न केवल मानव जीवन और सुरक्षा के लिए खतरा है, बल्कि यह लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक स्थिरता और आर्थिक विकास को भी गंभीर रूप से प्रभावित करता है। इसके साथ ही, आतंकवाद-रोधी उपायों के कार्यान्वयन में यह जोखिम बना रहता है कि कहीं राज्य स्वयं मानवाधिकारों का उल्लंघन न करने लगें। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सुरक्षा और मानवाधिकार एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर पूरक हैं। यदि आतंकवाद-रोधी नीतियाँ मानवाधिकारों के अनुरूप नहीं होतीं, तो वे दीर्घकालिक रूप से न केवल असफल सिद्ध होती हैं, बल्कि उग्रवाद और असंतोष को भी बढ़ावा देती हैं। अतः यह आवश्यक है कि सभी नीतियाँ विधि के शासन, पारदर्शिता, जवाबदेही और न्याय के सिद्धांतों पर आधारित हों। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून, मानवीय कानून और आपराधिक न्याय प्रणाली इस संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त, आतंकवाद के मूल कारणों—जैसे गरीबी, सामाजिक बहिष्करण, असमानता और राजनीतिक अस्थिरता—को दूर किए बिना इस समस्या का स्थायी समाधान संभव नहीं है। पीड़ित-केंद्रित दृष्टिकोण अपनाना भी अत्यंत आवश्यक है, जिससे प्रभावित व्यक्तियों को न्याय, पुनर्वास और सम्मान प्राप्त हो सके। साथ ही, अंतरराष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से वैश्विक सहयोग को सुदृढ़ करना भी अनिवार्य है। अंततः, एक प्रभावी आतंकवाद-रोधी रणनीति वही है जो सुरक्षा सुनिश्चित करने के साथ-साथ मानवाधिकारों की रक्षा को अपनी प्राथमिकता बनाए रखे। यही दृष्टिकोण दीर्घकालिक शांति, न्याय और वैश्विक स्थिरता की दिशा में सबसे उपयुक्त मार्ग प्रदान करता है।

****

संदर्भ सूची-

1. संयुक्त राष्ट्र. (1948) *मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (Universal Declaration of Human Rights).*
2. संयुक्त राष्ट्र. (2006) *वैश्विक आतंकवाद रोधी रणनीति (UN Global Counter-Terrorism Strategy).*
3. संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त का कार्यालय (OHCHR). (2008). *मानवाधिकार, आतंकवाद और आतंकवाद रोधी उपाय (Human Rights, Terrorism and Counter-Terrorism).*
4. अंतरराष्ट्रीय नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार वाचा (ICCPR), 1966.
5. अंतरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार वाचा (ICESCR), 1966.
6. जिनेवा कन्वेंशन, 1949 एवं उनके अतिरिक्त प्रोटोकॉल.
7. संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद. (.(2001 *आतंकवाद रोधी संकल्प संख्या 1373.*
8. अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय का रोम विधान (Rome Statute), 1998.
9. शरणार्थियों की स्थिति से संबंधित सम्मेलन (Refugee Convention), 1951.
10. बासिउनी, एम. चेरीफ. (.(2008 *अंतरराष्ट्रीय आपराधिक कानून (International Criminal Law).*
11. सॉल, बेन. (.(2014 *अंतरराष्ट्रीय कानून और आतंकवाद पर शोध पुस्तिका (Research Handbook on International Law and Terrorism).*
12. श्मिड, एलेक्स पी. (.(2011 *आतंकवाद अनुसंधान पर रूटलेज हैंडबुक (The Routledge Handbook of Terrorism Research).*
13. एमनेस्टी इंटरनेशनल. *आतंकवाद और मानवाधिकार पर विभिन्न रिपोर्ट्स.*
14. ह्यूमन राइट्स वॉच. *वार्षिक रिपोर्ट: मानवाधिकार और आतंकवाद.*
15. भारत सरकार, गृह मंत्रालय. *भारत में आतंकवाद रोधी नीतियों पर विभिन्न रिपोर्ट्स.*

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

बदलते वैश्विक परिदृश्य में भारत के समक्ष चुनौतियों के समाधान में ग्राम पंचायतों की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

DOI- 10.5281/zenodo.19326086

मौ. सुलेमान
शोधार्थी एवं असिस्टेंट प्रोफेसर,
राजनीति विज्ञान विभाग,
गुलाब सिंह हिंदू (पी०जी०) कॉलेज
चांदपुर - स्याऊ, बिजनौर (उत्तर प्रदेश)
ईमेल:suleman.rza15@gmail.com मो:8510889925

प्रोफेसर (डॉ०) दिनेश सिंह
शोध पर्यवेक्षक एवं प्रभारी
राजनीति विज्ञान विभाग,
गुलाब सिंह हिंदू (पी०जी०) कॉलेज
चांदपुर - स्याऊ, बिजनौर (उत्तर प्रदेश)
ईमेल:drdineshsingh009@gmail.com मो: 9456283738

शोध सार—वर्तमान समय में वैश्वीकरण, जलवायु परिवर्तन, तकनीकी क्रांति, आर्थिक असमानता तथा सतत विकास से जुड़ी चुनौतियाँ विश्व के साथ-साथ भारत के समक्ष भी गंभीर रूप से उपस्थित हैं। इन चुनौतियों का प्रभाव विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों पर दिखाई देता है, जहाँ आजीविका, संसाधन प्रबंधन, डिजिटल समावेशन तथा सामाजिक-आर्थिक विकास से संबंधित अनेक समस्याएँ उभर रही हैं। भारत में पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक आधार प्रदान करने वाला 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 स्थानीय स्वशासन को सुदृढ़ बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास रहा है। इसके अंतर्गत ग्राम पंचायतों को ग्रामीण विकास, जनभागीदारी तथा स्थानीय संसाधनों के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई है। यह अध्ययन बदलते वैश्विक परिदृश्य के संदर्भ में भारत के समक्ष उपस्थित प्रमुख चुनौतियों जैसे जलवायु परिवर्तन, ग्रामीण बेरोजगारी, डिजिटल विभाजन तथा सतत विकास के समाधान में ग्राम पंचायतों की भूमिका का विश्लेषण करता है। विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों, जैसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) परिवर्तित नाम विकसित भारत गारंटी फॉर रोजगार एंड आजीविका मिशन (ग्रामीण), स्वच्छ भारत मिशन, तथा डिजिटल इंडिया पहल के क्रियान्वयन में ग्राम पंचायतों की सक्रिय भागीदारी स्थानीय स्तर पर विकास की प्रक्रिया को गति देती है। उदाहरण के रूप में कई राज्यों में जल संरक्षण, सामुदायिक भागीदारी तथा स्थानीय रोजगार सृजन की योजनाओं के माध्यम से ग्राम पंचायतों ने सतत विकास की दिशा में उल्लेखनीय योगदान दिया है। यह शोध मुख्यतः विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें उपलब्ध साहित्य, सरकारी रिपोर्टों तथा स्थानीय शासन से संबंधित अनुभवजन्य तथ्यों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन यह दर्शाता है कि यदि ग्राम पंचायतों को पर्याप्त वित्तीय संसाधन, प्रशासनिक स्वायत्तता तथा तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान किया जाए, तो वे वैश्विक चुनौतियों के स्थानीय समाधान विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। अतः भारत में समावेशी एवं सतत विकास की दिशा में ग्राम पंचायतों को सशक्त बनाना अत्यंत आवश्यक है।

मुख्य शब्द: ग्राम पंचायत, वैश्विक परिदृश्य, ग्रामीण विकास, स्थानीय शासन, सतत विकास.

1. भूमिका - इक्कीसवीं सदी में वैश्विक स्तर पर तीव्र सामाजिक, आर्थिक, तकनीकी और पर्यावरणीय परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। वैश्वीकरण, जलवायु परिवर्तन, डिजिटल क्रांति, आर्थिक असमानता, खाद्य सुरक्षा और सतत विकास जैसी चुनौतियाँ आज विश्व समुदाय के समक्ष प्रमुख मुद्दों के रूप में उभर कर सामने आई हैं। इन वैश्विक परिवर्तनों का प्रभाव भारत जैसे विकासशील देशों पर विशेष रूप से देखा जा सकता है, जहाँ जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा (जनगणना 2011 के अनुसार 68.8 %) आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है और जिसकी आजीविका मुख्यतः कृषि एवं स्थानीय संसाधनों पर आधारित है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्य भी यह संकेत देते हैं कि वैश्विक चुनौतियों का प्रभावी समाधान तभी संभव है जब विकास की प्रक्रिया स्थानीय स्तर तक पहुँचे और उसमें जनसहभागिता सुनिश्चित की जाए।

भारत में स्थानीय स्वशासन की परंपरा प्राचीन काल से रही है, किंतु आधुनिक लोकतांत्रिक ढाँचे में इसे सशक्त रूप 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से प्राप्त हुआ। इस संशोधन के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई तथा ग्राम पंचायतों को स्थानीय शासन की आधारभूत इकाई के रूप में स्थापित किया गया। इसके अंतर्गत ग्राम पंचायतों को ग्रामीण विकास, सामाजिक न्याय, स्थानीय संसाधनों के प्रबंधन तथा जनकल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी दी गई है। वर्तमान समय में जब वैश्विक स्तर पर आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियाँ बढ़ रही हैं, तब ग्राम पंचायतों की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, कृषि संकट, बेरोजगारी, डिजिटल विभाजन तथा सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिए, जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा के अनिश्चित पैटर्न और जल संकट ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है। ऐसे में मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों की ग्राम पंचायतों ने जल संरक्षण, वर्षा जल संचयन और सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से स्थानीय समाधान विकसित किए हैं। इसी प्रकार महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम परिवर्तित नाम विकसित भारत गारंटी फॉर रोजगार एंड आजीविका मिशन (ग्रामीण) के माध्यम से ग्राम पंचायतों ने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन तथा आधारभूत संरचना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इन्हीं संदर्भों में उक्त शोध अध्ययन बदलते वैश्विक परिदृश्य में भारत के समक्ष उपस्थित चुनौतियों के समाधान में ग्राम पंचायतों की भूमिका का विश्लेषण करने का प्रयास करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि स्थानीय शासन की संस्थाएँ किस प्रकार ग्रामीण विकास को गति दे सकती हैं तथा वैश्विक स्तर पर उभर रही चुनौतियों के समाधान में स्थानीय स्तर पर व्यावहारिक और प्रभावी योगदान प्रदान कर विकसित भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

2. बदलते वैश्विक परिदृश्य में भारत के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ

(i) जलवायु परिवर्तन: वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जलवायु परिवर्तन भारत सहित समूचे विश्व के लिए एक गंभीर चुनौती बनकर उभरा है। अनियमित वर्षा, बढ़ता तापमान, सूखा, बाढ़ तथा प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति में वृद्धि का प्रत्यक्ष प्रभाव विशेष रूप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है, क्योंकि भारत की एक बड़ी जनसंख्या आज भी कृषि और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। जलवायु परिवर्तन

के कारण कृषि उत्पादन में अनिश्चितता बढ़ी है, जिससे किसानों की आय और ग्रामीण आजीविका प्रभावित हो रही है। अंतर-सरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल (IPCC, 2021) की रिपोर्ट भी यह संकेत देती है कि विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव ग्रामीण समुदायों पर अधिक गहरा पड़ता है।

(ii) आर्थिक असमानता: आर्थिक असमानता भी वर्तमान वैश्विक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण चुनौती है। वैश्वीकरण और आर्थिक विकास के बावजूद समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आय और संसाधनों के वितरण में असंतुलन देखा जा रहा है। भारत में यह असमानता विशेष रूप से ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित रोजगार अवसर, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता तथा संसाधनों की कमी के कारण आर्थिक विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी रहती है। विश्व असमानता रिपोर्ट (World Inequality Report, 2022) के अनुसार आय और संपत्ति के वितरण में बढ़ती असमानता सामाजिक और आर्थिक स्थिरता के लिए गंभीर चुनौती उत्पन्न कर सकती है। इसलिए समावेशी विकास को सुनिश्चित करना भारत के लिए अत्यंत आवश्यक है।

(iii) डिजिटल विभाजन: डिजिटल क्रांति ने विश्व स्तर पर शासन, शिक्षा, व्यापार और संचार के स्वरूप को व्यापक रूप से बदल दिया है, किंतु इसके लाभ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँच पाए हैं। भारत में शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की उपलब्धता, डिजिटल साक्षरता तथा तकनीकी संसाधनों की कमी के कारण डिजिटल विभाजन की समस्या स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। डिजिटल सेवाओं के विस्तार के बावजूद कई ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी डिजिटल अवसंरचना और तकनीकी प्रशिक्षण का अभाव है। नीति आयोग की रिपोर्ट 2022 के अनुसार डिजिटल समावेशन को बढ़ावा देना ग्रामीण विकास और सुशासन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि डिजिटल माध्यमों के द्वारा सरकारी योजनाओं की पारदर्शिता, जवाबदेही और प्रभावशीलता में वृद्धि संभव है।

(iv) ग्रामीण बेरोजगारी: ग्रामीण बेरोजगारी भारत की एक प्रमुख सामाजिक-आर्थिक समस्या है। कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, भूमि के सीमित संसाधन, औद्योगिक विकास का अभाव तथा कौशल विकास की कमी के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते। परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में ग्रामीण युवाओं का शहरों की ओर पलायन होता है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस समस्या के समाधान के लिए केंद्र सरकार द्वारा महात्मा मनरेगा जैसी योजनाएँ लागू की गई हैं, जिनका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम रोजगार उपलब्ध कराना तथा आधारभूत संरचना का विकास करना है।

(v) सतत विकास की चुनौती: विकास की प्रक्रिया को पर्यावरणीय संतुलन और सामाजिक न्याय के साथ आगे बढ़ाना आज के समय की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। तीव्र औद्योगिकीकरण, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन तथा पर्यावरणीय क्षरण के कारण सतत विकास (Sustainable Development) की अवधारणा वैश्विक स्तर पर प्रमुख नीति एजेंडा बन चुकी है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्य (SDGs) इस दिशा में वैश्विक प्रयासों का एक महत्वपूर्ण उदाहरण हैं (United Nations, 2015)। भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह चुनौती और भी जटिल है, क्योंकि यहाँ आर्थिक विकास, पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक समावेशन के बीच संतुलन स्थापित करना आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में सतत और समावेशी विकास को बढ़ावा देने के लिए स्थानीय संसाधनों का संरक्षण, सामुदायिक भागीदारी और विकेंद्रीकृत शासन प्रणाली की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

3. इन चुनौतियों के समाधान में ग्राम पंचायतों की भूमिका

(i) ग्रामीण विकास योजनाओं का क्रियान्वयन: भारत में ग्राम पंचायतें ग्रामीण विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन की आधारभूत इकाई के रूप में कार्य करती हैं। 1992 में 73वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया, जिसके बाद ग्राम पंचायतों को स्थानीय विकास योजनाओं के संचालन और निगरानी की जिम्मेदारी सौंपी गई। वर्तमान समय में ग्राम पंचायत विकास योजना (GPDP) के माध्यम से पंचायतें अपने क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुसार वार्षिक विकास योजनाएँ तैयार करती हैं, जिनमें आधारभूत संरचना, शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल और सामाजिक कल्याण से जुड़े कार्य शामिल होते हैं। भारत सरकार के पंचायती राज मंत्रालय (2023) के अनुसार देश में लगभग 2.6 लाख ग्राम पंचायतें स्थानीय विकास योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। इससे विकास प्रक्रिया में स्थानीय आवश्यकताओं और जनसहभागिता को प्राथमिकता मिलती है।

(ii) मनरेगा, स्वच्छ भारत मिशन और डिजिटल सेवाओं का संचालन: ग्राम पंचायतें केंद्र और राज्य सरकार की अनेक महत्वपूर्ण योजनाओं के क्रियान्वयन में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। उदाहरण के लिए मनरेगा के अंतर्गत रोजगार उपलब्ध कराने, कार्यों का चयन करने तथा मजदूरी भुगतान की निगरानी का दायित्व पंचायतों पर होता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय (केन्द्र) के अनुसार वर्ष 2022–23 में मनरेगा के अंतर्गत 6 करोड़ से अधिक ग्रामीण परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराया गया, जिसमें पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसी प्रकार स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) के अंतर्गत शौचालय निर्माण और स्वच्छता जागरूकता अभियान को ग्राम पंचायतों के माध्यम से व्यापक स्तर पर लागू किया गया, जिसके परिणामस्वरूप 2019 में भारत को खुले में शौच से मुक्त (ODF) घोषित किया गया (ग्रामीण विकास मंत्रालय, 2019)। इसके अतिरिक्त डिजिटल इंडिया पहल के अंतर्गत कई ग्राम पंचायतों में डिजिटल सेवाओं, ऑनलाइन प्रमाण पत्र, ई-गवर्नेंस और सार्वजनिक सेवा केंद्रों (CSC) के माध्यम से नागरिक सेवाओं की उपलब्धता बढ़ाई जा रही है।

(iii) जल संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण: जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय असंतुलन की चुनौतियों के समाधान में भी ग्राम पंचायतों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ग्रामीण क्षेत्रों में जल संरक्षण, वृक्षारोपण तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन से जुड़े अनेक कार्य पंचायतों के माध्यम से संचालित किए जा रहे हैं। उदाहरण के रूप में महाराष्ट्र के हिवरे बाजार गाँव को जल संरक्षण और सामुदायिक भागीदारी के सफल आदर्श मॉडल के रूप में देखा जाता है, जहाँ ग्राम पंचायत के नेतृत्व में जल संचयन, वृक्षारोपण और संसाधन प्रबंधन के प्रयासों से गाँव की अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय सुधार हुआ (Planning Commission Report, 2013)। इसी प्रकार कई राज्यों में मनरेगा के माध्यम से ग्रामीण सड़कों का निर्माण, तालाबों का निर्माण, जल संचयन संरचनाओं का विकास तथा भूमि संरक्षण कार्य किए गए हैं, जिससे पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में सहायता मिली है।

(iv) स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन: ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों को बढ़ाने में भी ग्राम पंचायतें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पंचायतें स्थानीय संसाधनों के आधार पर लघु उद्योग, कृषि आधारित गतिविधियों तथा स्वयं सहायता समूहों (Self Help Groups) को प्रोत्साहित करती हैं। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को पंचायतों के माध्यम से संगठित किया गया है, जिससे ग्रामीण परिवारों की आय बढ़ाने में सहायता मिली है। ग्रामीण विकास मंत्रालय की रिपोर्ट (2022) के अनुसार देश में लगभग 8 करोड़ से अधिक महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों से प्रत्यक्ष

रूप से जुड़ी हुई हैं, जो स्थानीय स्तर पर उद्यमिता और रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

(v) सामाजिक समरसता और जनभागीदारी को बढ़ावा: ग्राम पंचायतें केवल विकास योजनाओं के क्रियान्वयन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक समरसता और लोकतांत्रिक भागीदारी को भी मजबूत करती हैं। पंचायत स्तर पर आयोजित ग्राम सभाएँ स्थानीय नागरिकों को निर्णय प्रक्रिया में शामिल होने का अवसर प्रदान करती हैं। पंचायती राज मंत्रालय के अनुसार ग्राम सभा स्थानीय लोकतंत्र का महत्वपूर्ण मंच है, जहाँ विकास योजनाओं पर चर्चा, सामाजिक लेखा परीक्षा (Social Audit) तथा जनसमस्याओं के समाधान की प्रक्रिया संचालित होती है (Ministry of Panchayati Raj, 2023)। इससे शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित होती है तथा स्थानीय समुदाय में सहयोग और सहभागिता की भावना विकसित होती है।

4. सुझाव -बदलते वैश्विक परिदृश्य में भारत के समक्ष उपस्थित चुनौतियों के समाधान के लिए ग्राम पंचायतों को केवल योजनाओं के क्रियान्वयन तक सीमित न रखकर उन्हें स्थानीय विकास के नवाचारी केंद्र (Local Development Innovation Centres) के रूप में विकसित करना आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित व्यावहारिक एवं क्रियान्वित किए जा सकने वाले सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

(i) "ग्राम इनोवेशन लैब" मॉडल की स्थापना: प्रत्येक ग्राम पंचायत में ग्राम इनोवेशन लैब (Village Innovation Lab) स्थापित की जा सकती है, जिसका उद्देश्य स्थानीय समस्याओं के लिए स्थानीय स्तर पर समाधान विकसित करना होगा। इस लैब में पंचायत प्रतिनिधियों के साथ-साथ स्थानीय शिक्षक, युवा, स्वयं सहायता समूह, कृषि विशेषज्ञ और तकनीकी संस्थानों के विशेषज्ञों को भी शामिल किया जा सकता है। यह मंच गाँव की प्रमुख समस्याओं जैसे जल संकट, कृषि उत्पादकता, अपशिष्ट प्रबंधन, स्थानीय रोजगार और डिजिटल सेवाओं पर विचार कर व्यावहारिक समाधान विकसित करेगा। उदाहरण के रूप में कर्नाटक और केरल में स्थानीय स्तर पर सामुदायिक नवाचार परियोजनाओं के माध्यम से ग्रामीण समस्याओं के समाधान विकसित किए गए हैं। यदि इस मॉडल को पंचायत स्तर पर संस्थागत रूप दिया जाए तो ग्रामीण विकास में स्थानीय ज्ञान और नवाचार का प्रभावी उपयोग संभव हो सकेगा।

(ii) "ग्राम डेटा बैंक एवं साक्ष्य आधारित योजना प्रणाली" (Evidence-Based Planning): ग्रामीण विकास योजनाओं की प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत में ग्राम डेटा बैंक विकसित किया जाना चाहिए। इसमें गाँव के प्रत्येक परिवार से संबंधित सामाजिक-आर्थिक जानकारी जैसे आय, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, भूमि स्वामित्व और कौशल का व्यवस्थित डिजिटल रिकॉर्ड तैयार किया जाए। इस डेटा के आधार पर पंचायतें ग्राम पंचायत विकास योजना (GPDP) को अधिक सटीक और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप बना सकती हैं। केरल राज्य में स्थानीय निकायों द्वारा डेटा आधारित योजना निर्माण की पहल को सफल माना गया है (Kerala State Planning Board, 2019)। यदि इस मॉडल को राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया जाए तो ग्रामीण विकास योजनाएँ अधिक लक्ष्यित और परिणामोन्मुख हो सकती हैं।

(iii) "ग्राम रोजगार क्लस्टर" मॉडल: ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या के प्रभावी समाधान के लिए पंचायत स्तर पर ग्राम रोजगार क्लस्टर (Village Employment Cluster) विकसित किए जा सकते हैं। इसमें एक पंचायत या आसपास की पंचायतों के समूह में उपलब्ध स्थानीय संसाधनों के आधार पर छोटे उद्योगों और आजीविका गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाए। उदाहरण के लिए कृषि प्रसंस्करण इकाइयाँ, डेयरी, मधुमक्खी पालन, हस्तशिल्प, जैविक खेती और ग्रामीण पर्यटन जैसी गतिविधियाँ पंचायत स्तर पर संगठित की जा सकती हैं। भारत में खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) के माध्यम से कई क्षेत्रों में ऐसे मॉडल सफलतापूर्वक विकसित किए गए हैं। पंचायत यदि स्थानीय उद्यमिता को प्रोत्साहित करे और बाजार से जोड़ने की व्यवस्था विकसित करे, तो यह मॉडल ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी रोजगार सृजन का प्रभावी माध्यम बन सकता है।

(iv) "डिजिटल पारदर्शिता बोर्ड" और सामाजिक जवाबदेही प्रणाली: पंचायत शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही को मजबूत बनाने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत में डिजिटल पारदर्शिता बोर्ड (Village Transparency Dashboard) स्थापित किया जा सकता है। इस प्रणाली के अंतर्गत पंचायत के बजट, योजनाओं, विकास कार्यों, लाभार्थियों की सूची तथा व्यय से संबंधित सभी जानकारी सार्वजनिक रूप से डिजिटल माध्यम से प्रदर्शित की जाए। पंचायत भवन या सार्वजनिक स्थानों पर डिजिटल स्क्रीन के माध्यम से यह जानकारी प्रदर्शित की जा सकती है, साथ ही इसे ऑनलाइन पोर्टल पर भी उपलब्ध कराया जा सकता है। इससे नागरिकों को पंचायत कार्यों की जानकारी आसानी से मिल सकेगी और सामाजिक निगरानी की प्रक्रिया मजबूत होगी। विश्व बैंक की रिपोर्टों में भी स्थानीय शासन में पारदर्शिता बढ़ाने के लिए डिजिटल सूचना प्रणाली को प्रभावी उपाय माना गया है (World Bank, 2019)।

(v) "जल-ऊर्जा आत्मनिर्भर ग्राम पंचायत" मॉडल: जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकट को ध्यान में रखते हुए ग्राम पंचायतों को जल और ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयास किए जाने चाहिए। इसके अंतर्गत पंचायत स्तर पर वर्षा जल संचयन, तालाबों का पुनर्जीवन, सामुदायिक सौर ऊर्जा परियोजनाएँ और ऊर्जा-कुशल पंचायत भवन विकसित किए जा सकते हैं। भारत के कई राज्यों में सौर ऊर्जा आधारित पंप और पंचायत भवन स्थापित किए गए हैं, जिन्हें व्यापक स्तर पर अपनाया जा सकता है (Ministry of New and Renewable Energy, 2022)। यदि पंचायत स्तर पर जल संरक्षण और नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा दिया जाए तो यह न केवल पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने में सहायक होगा बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा और जल सुरक्षा भी सुनिश्चित करेगा।

(vi) "ग्राम नेतृत्व एवं नीति विद्यालय-ग्राम पंचायतों की प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए पंचायत प्रतिनिधियों और ग्राम प्रधानों के लिए ग्राम नेतृत्व एवं नीति विद्यालय (Village Leadership School) की स्थापना की जा सकती है। इस संस्थान का उद्देश्य पंचायत प्रतिनिधियों को प्रशासनिक प्रबंधन, डिजिटल शासन, वित्तीय योजना, सामाजिक समावेशन और सतत विकास से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान करना होगा। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में विश्वविद्यालयों, प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थानों और सामाजिक संगठनों की भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती है। इससे पंचायत प्रतिनिधियों की नेतृत्व क्षमता और प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि होगी तथा वे स्थानीय शासन को अधिक प्रभावी ढंग से संचालित कर सकेंगे।

5. निष्कर्ष -वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर तेजी से हो रहे सामाजिक, आर्थिक, तकनीकी और पर्यावरणीय परिवर्तनों ने भारत सहित पूरे विश्व के सामने अनेक नई चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। जलवायु परिवर्तन, आर्थिक असमानता, डिजिटल विभाजन, ग्रामीण बेरोजगारी तथा सतत विकास से संबंधित समस्याएँ विशेष रूप से ग्रामीण समाज को प्रभावित कर रही हैं। उक्त चुनौतियों का प्रभावी और त्वरित समाधान केवल राष्ट्रीय या राज्य स्तर की नीतियों से ही सम्भव नहीं है, बल्कि स्थानीय स्तर पर सशक्त और उत्तरदायी शासन व्यवस्था की भी आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में भारत की पंचायती राज प्रणाली, विशेष रूप से ग्राम पंचायतें,

स्थानीय विकास और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की आधारभूत इकाई के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हालाँकि ग्राम पंचायतों के समक्ष वित्तीय संसाधनों की कमी, प्रशासनिक हस्तक्षेप, तकनीकी संसाधनों का अभाव तथा प्रशिक्षण की सीमित व्यवस्था जैसी कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं, जिनके कारण पंचायतों की संभावित भूमिका पूरी तरह से सामने नहीं आ पाती। इसलिए आवश्यक है कि ग्राम पंचायतों को अधिक वित्तीय और प्रशासनिक स्वायत्तता प्रदान की जाए, पंचायत प्रतिनिधियों के लिए नियमित प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण की व्यवस्था की जाए तथा डिजिटल शासन और पारदर्शिता को बढ़ावा दिया जाए। इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास को अधिक प्रभावी बनाने के लिए ग्राम इनोवेशन लैब, ग्राम डेटा बैंक, ग्राम रोजगार क्लस्टर और डिजिटल पारदर्शिता बोर्ड जैसे नवाचारी मॉडल विकसित किए जा सकते हैं। ये पहलें स्थानीय संसाधनों, जनभागीदारी और तकनीकी नवाचार को एक साथ जोड़कर पंचायत शासन को अधिक प्रभावी बना सकती हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि यदि ग्राम पंचायतों को पर्याप्त संसाधन, अधिकार और संस्थागत समर्थन प्रदान किया जाए तो वे न केवल ग्रामीण विकास को गति दे सकती हैं, बल्कि बदलते वैश्विक परिदृश्य में भारत के समक्ष उपस्थित चुनौतियों के समाधान में भी महत्वपूर्ण और प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं।

****

संदर्भ-

1. Government of India. (1992). The Constitution (Seventy-Third Amendment) Act, 1992. Ministry of Law and Justice. NewDelhi https://panchayat.gov.in/en/document/73rd-constitutional-amendment-act-1992/
2. Finance Commission of India. (2021). Report of the Fifteenth Finance Commission (2021–2026). Government of India. Official report: https://fincomindia.nic.in
3. Ministry of Panchayati Raj. (2024).Annual Report 2024–25. Government of India.
4. https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s316026d60ff9b54410b3435b403afd226/uploads/2025/02/20250219868964551.pdf?utm_source=chatgpt.com
5. Ministry of Rural Development. (2023). Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) Annual Report
6. https://www.dord.gov.in/static/uploads/2024/02/f13c435389b9dc6ec6aa4b647fc11614.pdf
7. Ministry of Panchayati Raj. (2022). Rashtriya Gram Swaraj Abhiyan: Capacity Building of Panchayats Report. https://panchayat.gov.in
8. NITI Aayog. (2022).Governance and Rural Development Report.
9. https://www.niti.gov.in/sites/default/files/2023-02/Annual-Report-2022-2023-English_1.pdf
10. Artificial Intelligence (AI) Transforming Rural India
11. https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2231706&reg=3&lang=2
12. United Nations. (2015). Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development. https://sdgs.un.org/2030agenda
13. World Bank. (2022). Social accountability and local governance in India. (Social Accountability And Service Delivery Effectiveness:)
14. https://documents1.worldbank.org/curated/en/099534209302293819/pdf/IDU0aff7666c06b8804bc00a9170ce2d26867056.pdf
15. UNDP. (2020). Local governance innovation report. https://www.undp.org
16. IPCC. (2021). Climate change 2021: The physical science basis. Cambridge University Press. https://www.ipcc.ch/report/ar6/wg1/
17. World Inequality Lab. (2022). World inequality report 2022. Harvard University Press. https://wir2022.wid.world
18. Kerala State Planning Board. (2019). Local government data-based planning report. https://spb.kerala.gov.in
19. Mathew, G. (2000). Panchayati Raj Institutions and Human Rights in India
20. https://www.jstor.org/stable/4413076
21. Bardhan, P., & Mookherjee, D. (2006). Decentralization and Local Governance in Developing Countries. MIT Press.
22. https://direct.mit.edu/books/edited-volume/2386/Decentralization-and-Local-Governance-in
23. Sen, A. (1999). Development as Freedom. Oxford University Press.
24. https://kuangaliablog.wordpress.com/wp-content/uploads/2017/07/amartya_kumar_sen_development_as_freedombookfi.pdf

वीरेन्द्र जैन के उपन्यासों में चरित्र- चित्रण

जोषी सुनिलकुमार भावेशभाई
पीएच.डी. शोधार्थी
गोविन्द गुरु विश्वविद्यालय, गोधरा (गुजरात)
डाक पता- अक्ष पार्क, सरकारी आयुर्वेदिक औषधालय के पास,आनंदनगर रोड,नखत्राणा-३७०६१५, तहसील- नखत्राणा, जिला- कच्छ (गुजरात) मो-८१४१८१८१२३

पात्र योजना में प्रमुख रूप से दो शिल्प विधियों को देखा जा सकता है,- १) वर्णनात्मक २) विश्लेषणात्मक. वर्णनात्मक शिल्प विधि में लेखक स्वतंत्र और आसानी से लिखनी चलाता है, उसमें पात्र के बाहरी स्वरूप का विस्तृत वर्णन होता है।

कभी-कभार उपन्यासकार की विचार शक्ति पात्रों को हकीकत में बदल देती है और वह पात्र संवेदना और सहानुभूति से होकर भावात्मक जुड़ाव महसूस करता है, जैसे हमारे आसपास वह सब घटित हो रहा हो। विश्लेषणात्मक शैली का उपयोग मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के लिए उपयुक्त है, क्योंकि इसमें पात्रों के ज्यादातर मन के भाव जीवन में आने वाली चुनौतियाँ और मानसिक स्थितियों का चित्रण किया जाता है।

'सबसे बड़ा सिपहिया' उपन्यास के चरित्र सत्य की धरातल से उभरे सामाजिक चरित्र है। हर एक चरित्र अपने आप में जिम्मेदार दिखता है। सभी पात्र अपने अस्तित्व को छोड़कर मानो सिपहिया बन चुके हो ऐसा इस उपन्यास में प्रतीत होता है। सभी वर्दीधारी में एक पत्रकार का पात्र होता है, जो सत्य की राह पर चलने वाला ईमानदार चरित्र होता है। ड्यूटी ऑफिसर (डी.ओ) यूनिफॉर्म पहने रौब नही जमाता, उतना तो यूनिफॉर्म पहने बिना ही दिखता है, परंतु यथार्थ की धरा पर ऐसा नही देखने मिलता। प्रत्येक इंसान को गुनहगार की नजरों से नहीं देखा जा सकता है।

इस उपन्यास में जैनजी ने पात्रालेखन बड़ी गहराई से किया है। इससे चरित्रों में सजीवता देखने मिलती है। वर्दीधारी के कर्तव्य, गतिविधियाँ, जिम्मेदारियाँ और निष्ठा सभी का अस्वीकार करते अपनी क्षमता का अनुचित उपयोग करते दिखाया गया है। पुलिस के आचरण के साथ-साथ सामान्य जनता के हक और कानून की धजियाँ उड़ाते तथा अभद्र भाषा का प्रयोग करके जनता को भयभीत कर निर्दयता की जानकारी दी है। उपन्यास का प्रधान पात्र पत्रकार आनंद 'सागर' पत्रिका का उपसंपादक होता है। "अपने संस्थान की प्रमुख पत्रिका 'सागर' के लिए उसने पिछले सप्ताह अपने प्रदेश में आए नए ओ.जी. पुलिस का इंटरव्यू लिया था।"(१)

एक दिन पत्रकार आनंद के घर में चोरी होती है, वह थाने में रिपोर्ट लिखवाने जाता है। पुलिस स्टेशन में अपनी पहचान 'पत्रकार' न देकर सामान्य नागरिक बताता है, तब से उसे बुरे दौर से गुजरना पड़ता है। थाने में रिपोर्ट न लिखकर, उससे घूस लेने के प्रयत्न किए जाते है। इस बीच कुछ घटनाएँ थाने में आनंद देखता है, तब पूरे दिन थाने में बैठकर उसे पुलिस की कथनी और करनी में अंतर दिखता है। बाद में उसे धन की लालच देकर उसकी इमानदारी खरीदने का प्रयत्न होता है, लेकिन उसमें विफलता मिलती है।

सच्चा पत्रकार जो अपने कर्तव्य पथ पर चलने वाला होता है, उस पत्रकार को मवालियों के द्वारा पिटाया जाता है। उसे चरित्रहीन भी बताया जाता है, उसे जबरन दस्तखत करने पड़ते हैं तथा आई.जी पुलिस अफसर एक मीडिया कार्यक्रम में नाटकीय रूप से उसकी गलती को क्षमा करके सार्वजनिक सूचना देते हैं। अंत में पत्रकार आनंद पुलिस के

षडयंत्र और धूर्तता के सामने हार जाता है। इस बीच वह अपना सब कुछ खो देता है। लेखक ने इस उपन्यास में पुलिस व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है।

'शब्द-बध' उपन्यास के प्रधान पात्र आनंदवर्धन की जीवन कथा पर उपन्यास की रचना की गई है। लेखक ने इस उपन्यास में पात्रालेखन बहुत ही सूक्ष्मता से हमारे सामने रखा है। उपन्यास में पात्रों को सत्य की धरा पर रखकर शब्दों को कसाईखाने में रख सामाजिक चित्रण प्रस्तुत किया है। सामाजिक जीवन को उपन्यासकार ने सूक्ष्मता से हमारे सामने रखकर, सभी चरित्रों की मदद से इस उपन्यास की कथावस्तु के रूप में बुना गया है। कथनी और करनी में जहाँ फर्क दिखाई देता है, ऐसे समय शब्दों का कुछ मोल न रहकर हर-क्षण शब्द का वध किया जा रहा है। तब प्रकाशन की दुनिया में लेखक और पाठकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कुछ प्रकाशक भी शब्दों का वध करते पाए जाते है।

आनंदवर्धन प्रधान पात्र होने के साथ-साथ वह एक संस्थान में लेखक होता है। संस्थान में लेखन कार्य दौरान लेखक के आत्म सम्मान को ठेस पहुँचती है। तब संस्थान से निकल जाना ही बेहतर समझते है। पहले पहल अपना लेखन कार्य 'लोकहितकारी' नाम के संस्थान से शोध सहायक पद से शुरू करते है। इस पद पर रहने पर उन्हें प्रकाशन संस्थानों का काला सच पता चलता है। जहाँ पर धनपतियों के काले धन को सफेद धन किया जाता है। लेखक आनंदवर्धन के जीवन में कठिनाइयाँ या जोखिम होने के बावजूद भी डटकर सामना करने की शक्ति कूट-कूट कर भरी होती है। वह खुद के हक के लिए खड़े तो होते है, पर कुछ समय के पश्चात लेखक को प्रकाशन संस्थान से निकाला जाता है।

बाद में वह 'अरिहंतजी' के पास लेखन कार्य करते है। यहाँ पर लेखक के सामने नया सत्य बाहर निकल कर आता है, कि अरिहंतजी एक प्रसिद्ध लेखक होते है, लेकिन अरिहंतजी के प्रकाशनों को पिता के नाम पर प्रकाशित न करके उसका बेटा अपने शीर्षक देकर प्रकाशित करता था। यह बात आनंदवर्धन को अरिहंतजी के अपमान समान लगती है। तो वहाँ से आनंदवर्धन लेखन कार्य छोड़ देते है। वहाँ से लेखक कुछ संस्थानों में लेखन कार्य करते है। इस दौरान आनंदवर्धन की 'प्रतिबद्ध' प्रकाशन के साम्यवादी विचारधारा वाले मालिक से भेट होती है। यहाँ पर आनंदवर्धनजी देखते है, कि मालिक और नौकरों के बीच आपसी वैमनस्य ज्यादा बढ चुका होता है। महाविद्यालयों में चल रहे पाठ्यक्रम की किताबों में स्थान प्राप्ति हेतु चालाकी से फेरबदल के प्रयत्न यह सब लेखक देखते है।

यहाँ पर लेखक अपनी रचना शक्ति का बचाव नहीं कर पाते है, परिस्थिति अत्यंत गंभीर हो जाने पर लेखक के सब पुस्तकों को मालकिन के द्वारा जला दिया जाता है और लेखक को वहाँ से निकाल दिया जाता है। बाद में लेखक पत्रकारिता जगत में पैर रखते है। यहाँ पर कथावस्तु पूर्ण होती है, पर पाठकों की सोच में कुछ सवालों को लेकर हलचल चलती ही रहती है।

'गैल और गन' उपन्यास का मुख्य पात्र आज्ञाप्रसाद, जो अयोध्याप्रसाद का एकमात्र पुत्र है। जो पूर्णतः आवेदनकर्ता की भूमिका में चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में ग्राम्य क्षेत्र के व्यक्तियों के बीच वैचारिक टकराव, विरोध और संघर्ष आदि को दिखाया गया है। सभी चरित्र गाँव से संबंधित है, इस बात को केंद्र में रखकर लेखक ने ग्राम्य जीवन को सूक्ष्म रूप से चित्रित किया है। यह उपन्यास भले ही पत्रात्मक शैली में लिखा गया हो, लेकिन इसमें सभी घटनाओं को दिखाया गया है। जिसमें कुछ नयापन देखने नही मिलता है, क्यूंकि यहाँ छोटे-बड़े संघर्ष और लड़ाई-झगड़े अक्सर चलते रहते है।

दलित वर्ग के लोगों को अभी भी कुछ ग्राम्य विस्तार में बुरा बर्ताव आज भी सहना पड़ रहा है। इस उपन्यास में एक मार्ग (गैल) को लेकर विवाद है। ग्राम्य विस्तार में कुछ लोग अपने लाभ के लिए अपने कायदे कानून बनाते है। उन्हों के लिए कहीं पर से रास्ते बन जाते है और उसका उपयोग होता है।

आवेदनकर्ता आज्ञाप्रसाद और उसके भाई के बीच में टकराव के चलते उससे गैल की हिस्सेदारी छीन लेता है। उसको लेकर नायक न्याय के लिए अधिकारी तथा मिनिस्टर को आवेदन देता है, लेकिन तब्दील होते ही कार्य अटका-सा पड़ा रह जाता है। बाद में गाँव के व्यक्तियों से शत्रुता अधिक हो जाने पर उसे अपने पास 'गन' रखनी पड़ती है। आज्ञा को अपने गाँव में रहने का सौभाग्य बचपन से ही कम मिला था। शहर में पढ़ाई के बाद सतर्कता विभाग में कर्मचारी का पद प्राप्त होता है। वह सर्वोच्च अधिकारी का ड्राइवर है। "बड़े अफसर की दिली तमन्ना थी कि उनके पास सरकारी ड्राइवर भी उनकी अपनी बिरादरी का हो।"(२)

आज्ञाप्रसाद को अफसरों के घर के अलावा तीर्थस्थानों पर साथ में जाना होता था। आज्ञा कुलीन खानदान से था। अफसर भी आज्ञा का कहना मानते थे, इसलिए वह भाई को रोजगार दिलाने में सफल होता है। आज्ञाप्रसाद कठिन परिस्थितियों से लड़ने वाला, निरंतर मेहनती तथा संघर्ष करने वाला व्यक्तित्व है। उसके भाई ने आने-जाने का रास्ता बंद कर दिया, तब वह हार मानकर न बैठा रहा।

सरकारी गैल को पुनः शुरू करने के लिए संघर्षरत रहकर थाने तथा प्रशासनिक विभागों में आवेदन दिया। मुश्केलियों को सहने पर भी सफलता कम मिली। आज्ञा के विरोधियों ने इस अवसर का लाभ प्राप्त कर, अंत में उसे भारी हानि पहुंचाई गई। वह इच्छा रखता है, कि सब शांतिपूर्वक पूर्ण हो जाए। उसके पास गन होते हुए भी वह हिंसा नहीं चाहता था। वीरेन्द्र जैन के इस उपन्यास के पात्रों में विविधता के साथ-साथ सजीवता देखने मिलती है।

****

सन्दर्भ सूची -

१: सबसे बड़ा सिपहिया, वीरेन्द्र जैन. पृ. ९.
२: गैल और गन, वीरेन्द्र जैन. पृ. २५.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

Applications of Fungal Pigments: A Sustaibable Approach Across Industries

Harsh Bagdare[1*], Mukesh Kumar Katakwar[2], Ishwar Bharti[3], Indira Khale[4], Satish Piplode[5] Rohit Sharma[6], Vinars Dawane[7]
[1]Department of Biotechnology and Microbiology, Sardar Vallabhbhai Patel College, Mandleshwer, M.P., 451221, India.
[2]Department of Chmesitry, SBS Govt P G College Pipariya, Narmadapram, M. P., 466175 India,.
[3]Govt. H S School Bani, Mandsaur, M. P., 482051, India,
[4]Department of Physical Sciences, Rabindranath Taore University Bhopal, M. P., 464993 India
[5]Depratment of chemistry, Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal, M. P., 462016 India
[6]Centre for Biodiversity Exploration and Conservation, Tilhari Mandla Road, Jabalpur, , M. P., 482021, India,
[7]Department of Biosciences, Acropolis Institute of Management Studies and Research, Indore, M.P., 453771, India,
Email Address - bagdareh@gmail.com

Abstract: With the worldwide interest for natural, environmentally safe and friendly, substitutes for synthetic pigments is on the rise, fungal pigments have emerged as a promising and sustainable solution across various industries. These pigments are advantageous Their ability to grow quickly, be easily produced, and withstand environmental challenges makes them suitable for large-scale use. Furthermore, fungal pigments exhibition significant biological activities, enhancing their versatility.

This review explores the variety of characteristics and industrial uses of fungal pigments. Several research studies have explored their use in the textile sector, particularly for dyeing materials like cotton, silk, and wool. In the cosmetics industry, pigments such as melanin, carotenoids, and lycopene have been utilized in products like sunscreens, lotions, face creams, and anti-aging treatments. In the food industry, certain fungal pigments have already been commercialized as natural food colorants, including Monascus pigments, arpink red from *P. oxalicum*, riboflavin from *A. gossypii*, and β-carotene from *B. trispora*. This review is discussing the vast potential of fungal pigments across these industries, highlighting their promising role in sustainable and natural product development.

Keywords: Fungal pigments, natural colorants, antimicrobial properties, food industry, cosmetic industry, textile industry.

INTRODUCTION-Color has always been a vital aspect of life for all organisms on Earth. For humans, colors significantly influence various areas, like clothing, food, and daily appliance, making life truly vibrant. Usage of pigments as colouring agents in prehistoric times has been revealed through archaeological discoveries Pigments and crushing tools, predicted to be between 350,000 and 400,000 years old, were found in a den at Twin Rivers, Zambia, offering additional evidence of primitive pigment use. (1).For centuries, most colorants were natural and organic, till the development of mauvine, the first manufactured colorant, by Sir William Henry Perkin in 1856. The innovation transformed the industry, leading to the across-the-board application of artificial colors. These artificial dyes gained popularity because they are easy to produce, have cheap costs, lack unwanted flavors, have remarkable coloring properties, and the fact that only small amounts were necessary to achieve vibrant results.

However, synthetic dyes come with several disadvantages. Dyes like cochineal red, sunset yellow, and tartrazine can cause allergies on their own or when combined with other dyes (2). Additionally, some synthetic dyes used in pharmaceuticals and cosmetic products have been linked to cancer. Due to these health risks, Certain synthetic pigments are prohibited from being used externally. For example, benzidine dyes have been associated with bowel cancer and Carbon black, a pigment frequently found in printing inks, is classified as a potential carcinogen. These drawbacks have driven a growing worldwide interest in natural pigments. Fungal pigments have the potential to fulfil this role.

Fungal pigments can play a crucial role across various industries. Fungi are prevalent in both natural and man-made environments, exhibiting remarkable diversity in species, pigmentation, and morphology. Fungal pigments' significant role in microbial pathogenesis has been widely studied and well-documented. When exposed to environmental stresses like ultraviolet radiation, osmotic pressure, and nutrient shortages, fungi have developed pigmentogenesis as an adaptive survival mechanism. Fungal pigments, considered secondary metabolites, may have been overlooked regarding their significance in cell protection and ecological interactions. Characterized by their diverse structures, these pigments exhibit various bioactivities, including anti-tumor, cholesterol-lowering, anti-obesity anti-atherosclerotic, antioxidative, anti-Alzheimer's, and immunosuppressive functions.

FUNGAL PIGMENTS-fungi are recognized for producing a wide variety of colourful metabolites. *monascus* a genus of fungi which represents earliest documented application for a kind of rice which is red in colour. These are typically present in traditional Oriental cuisine, particularly in Japan, Southern China, and Southeast Asia. A wide array of advantageous properties is demonstrated by these pigments.

The majority of our understanding of fungal pigments stems from studies centered on four main genera.: *Aspergillus*, *Penicillium*, *Paecilomyces*, and *Monascus.* Although fungi can produce a varied range of pigments, typically grouped in four main division: melanins, polyketides, azaphilones, and carotenoids azaphilones (3). In this paper, we will explore these categories.

Carotenoids

The word “carotene” derived from carota which is a Latin word first coined in 18th century by wackenroder, who achieved the extraction and purification of the pigment from carrots. Carotenoid names are not based on their structural characteristics; instead, they are derived from the root word "carotene," prefixed by Greek letters (such as α, β, ε) to indicate the variations in their terminal groups. As of now, so many species of fungi are discovered to do synthesis of carotene (4). Some of them are mentioned in Fig.1 The bright colors and health advantages of different carotenoids have generated attention in numerous sectors. Similar to carotenoids present in other organism, fungal carotenoids are recognized for their distinctive yellow, orange, and red colors (5).

Melanin’s

The formation of fungal melanins occurs through a complicated polymerization process, resulting in compounds that exhibit deep shades of green, black and brown colors. Fungal melanins are characterized by their negative charge and hydrophobic nature. Melanin production plays a crucial role in helping fungi withstand environmental stresses like, extreme temperatures, enzymatic degradation, oxidants, desiccation and UV radiations.

In some pathogenic fungi that affect mammals, melanins might enhance fungal virulence by serving as a mechanism of resistance against the host's immune system (6). Recent research has demonstrated that melanin pigments able to conceal antigens, allowing these pathogens to escape detection by the immune system. This helps the fungi escape phagocytosis and boosts their chances of survival within the host.

Polyketides

A highly diverse collection of natural compounds is represented by polyketides, characterized by their complex carbon skeletons, these compounds are an important source of bioactive molecules with significant pharmaceutical relevance.

Fungal pigments derived from polyketides are produced abundantly by many fungi Particularly prevalent in most genera of filamentous ascomycetes. Two notable classes of these polyketide pigments include anthraquinones and naphthoquinones, which exhibit a variety of colors .

Anthraquinones are able to produce a wide spectrum of colors, ranging from yellows to reds and even blues. Many fungi can produce this metabolite, including HAQNs, the variation in color is associated to the approximately short, conjugated chromophores found in anthraquinones. They tend to exhibit pale yellow hues in their most basic, unsubstituted forms. When substituents are added, these molecules experience significant bathochromic shifts in their absorption maxima, resulting in deeper red and even blue hues. naphthoquinone pigments for instance are generated through numerous species of fungi. Most of them showcase colors that generally range from brown through yellow to orange. Research indicates that in certain Fusarium species, the biosynthesis of naphthoquinone pigments is activated by environmental stresses, often taking place during growth inhibition or cessation (7).

Azaphilones

Fungi produce diverse kind of azaphilone pigments, that are synthesized from polyketides. Featuring pyrone -quinone structures, these pigments consist of a bicyclic core that is highly oxygenated and includes a chiral quaternary center. The structural diversity of these compounds stems from the simplicity of nitrogen incorporation into their frameworks.

Azaphilone-producing fungi are found widely in nature and include various types of microscopic fungi, often referred to as "molds," these pigments produce yellow, red, or green colors seen in fungi. These pigments have great potential in food colorant industries (7).

INDUSTRIAL APPLICATIONS OF FUNGAL PIGMENTS

Textile Industry

A wide range of dyes is extensively used by the textile industry and other sectors. The rising demand for pigments has driven expanded research into utilizing filamentous fungi for pigment production. Through biotechnological methods, anthraquinones are synthesized by various fungi, Interestingly, cynodontin, derived from a fungus, produced two anthraquinone dyes that closely resemble traditional synthetic dyes such as Disperse Blue 7 and Acid Green 28n (8). These anthraquinone dyes exhibit properties comparable to standard dyes. Furthermore, anthraquinones produced by different fungi have demonstrated antimicrobial properties. For example, anthraquinones produce a pink pigment used to dye cotton thread. The dyed thread exhibited

outstanding resistance to light, heat, pH changes, and temperature variations, further highlighting the potential of fungal pigments as environmentally friendly alternatives to conventional dyes.

yellow and red pigments which can be able to dissolve in water have high attraction to wool fibers have been identified by researchers and are suitable for industrial applications due to their stability across various temperatures and pH levels (9). Additionally, *Penicillium species* produce ankaflavin, a Monascus pigment that binds well to wool fibers , and Several species of Penicillium from Amazonian soil produce particularly vibrant pigments suitable for textile applications (10). Additionally, pigments like xylindein, draconin red, and yellow pigment derived from rotting hardwood logs in Canada were successfully applied to dye strips of various fabrics (11).

Cosmetic Industries

With the growing demand for natural products, cosmetic industries are increasingly turning to alternatives to synthetic pigments, and fungal pigments have garnered significant attention for their various benefits. Melanin, carotenoids, and lycopene are pigments that have shown promise for cosmetic applications, Notably, pigments from fungi such as Monascus and similar varieties have already made their way into the market, finding applications in products like skin conditioners, skincare items, and lipsticks (12).

Melanin acts as a natural "sunscreen" by absorbing a wide range of UV and visible light wavelengths. In addition to its UV protection, melanin serves as a potent antioxidant and is commonly found in dermal and cosmetic products like sunscreens and hair dyes. Furthermore, despite the wealth of research demonstrating its potential currently, the majority of melanin-based applications are still under development and have yet to be commercialized. As industries shift toward more sustainable materials, the research on microbial melanin remains an area with significant untapped potential for future innovation.

Food Industries

Much of the research on fungal pigments has focused on their application as food colorants, with this paper emphasizing their potential in various industries, particularly the food sector. Examples include Monascus pigments, arpink red, and β-carotene which are already present in market as edible dye (13).

Monascus, a genus frequently employed as a food coloring agent, is widely utilized in Asian culinary traditions. The pigments typically include six main azaphilone pigments which have showes different colors. Nevertheless, specific strains of species may produce citrinin, a mycotoxin with established nephrotoxic and hepatotoxic side-effects on people (14). Consequently, food colorants derived from this genus are prohibited in the western countries, fuelling ongoing debates regarding their safety in food items. In contrast, melanin has been explored for eco-friendly applications, for instance, in the creation of silver nanostructures known for their broad-spectrum antimicrobial effects against pathogens found in food, presenting promise for both the food and health industries.

Pharmaceutical Industries

The pharmaceutical industry has recognized the significant potential of fungal pigments. One example is bikaverin, a vivid red pigment classified as a naphthoquinone, primarily occurring in the genus Fusarium A polyketide biosynthetic pathway is responsible for the synthesis of bikaverin. This pigment is highly regarded for its bioactive properties and its application as a colorant in textiles. Bikaverin exhibits broad bioactivity, including antimicrobial and anti-proliferative effects This makes it a strong contender for use in pharmaceutical research and different industrial applications (15).

Carotenoids, another class of fungal pigments, also hold a prominent role in the pharmaceutical field, particularly in combating respiratory diseases, ocular complications, chronic illnesses, and neurodegenerative disorders(20). Their immune-boosting properties are largely due to their antioxidant capabilities, they provide protection against cancers in humans and animals through the neutralization of ROS. Serving as precursors to vitamin A, carotenoids act as bioactive compounds that contribute to lowering the chances of degenerative diseases.

These pigments offer promising avenues for further exploration in both pharmaceutical and industrial sectors, with the potential to contribute to sustainable health solutions.

BIOACTIVE PROPERTIES -Several studies have highlighted the health benefits of fungal pigments over synthetic alternatives, Specifically, they exhibit antibacterial properties against a range of harmful yeast bacteria and fungi. It has been suggested by researchers that these bioactive pigments have potential applications as

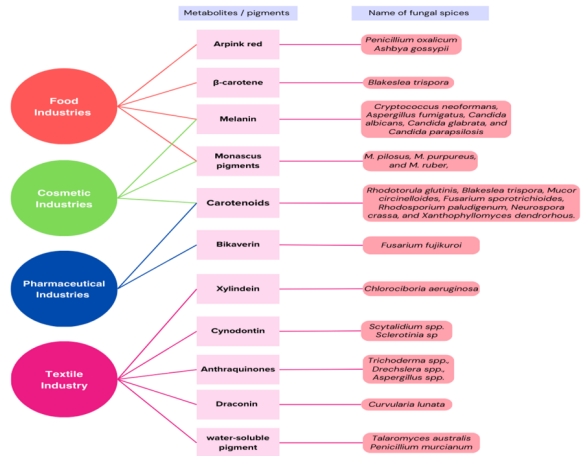

pigments to manufacture medical items such as suture threads, bandages, and face masks, with promising results indicating the feasibility of such applications (16). For instance, *Aspergillus* produces neoaspergillic acid, which exhibits antibacterial activity against bacteria, as well as antifungal action against *Candida* (17).

Fungal pigments have demonstrated anticancer and antitumor properties, with multiple studies suggesting their potential use as anticancer agents. For instance, pigments derived from *Monascus* species have shown significant anticancer activity against various types of cancer, (18). Another study found that melanin from *Phoma* sp. RDSE17, at a concentration of 80 µg/mL, inhibited the growth of human lung cancer cells (19).

In a recent study evaluating the dermal toxicity of pigments fungi in Wistar rats has confirmed that fungal pigments are nontoxic in nature, proposing their promising application in cosmetics and textile dyeing industries, furthermore the antioxidant properties of microbial pigments, like violacein, naphthoquinones and carotenoids from various fungi (16), have been the subject of extensive research. These findings suggest that fungal pigments hold great promise for applications in the healthcare industry.

CONCLUSION-In conclusion, fungal pigments present a potential substitute to synthetic dyes and colorants across different industries. The range of bioactive properties they possess, from antimicrobial to antioxidant and anticancer activities, highlights their potential for sustainable purposes. Fungal-derived pigments can mimic the vibrant hues of artificial dyes in the textile industry while providing environmental advantages. The cosmetic sector is increasingly recognizing the advantages of natural pigments like melanin and carotenoids, which provide UV protection and antioxidant benefits. In food industries, while some fungal pigments face regulatory challenges due to safety concerns, their applications as natural colorants remain significant. Additionally, the pharmaceutical potential of fungal pigments, particularly in producing bioactive compounds like biliverdin and carotenoids, underscores their relevance in health and wellness. As research progresses, fungal pigments are going to play a crucial part in promoting sustainable practices and innovations in these industries.

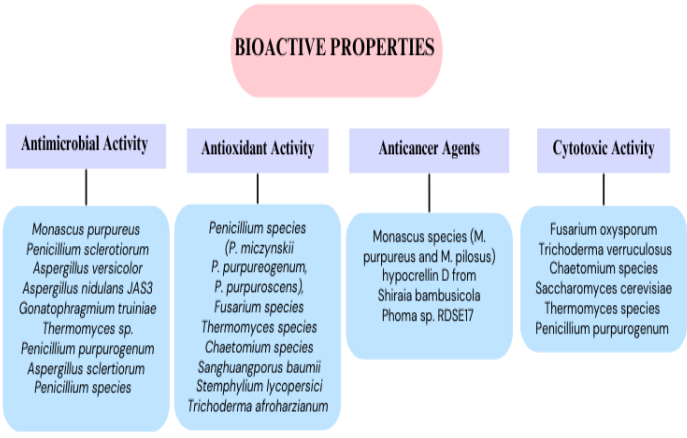

****

REFERENCES

1 Watts, I., Chazan, M., & Wilkins, J. (2016). Early evidence for brilliant ritualized display: Specularite use in the Northern Cape (South Africa) between∼ 500 and∼ 300 ka. *Current Anthropology*, *57*(3), 287-310.

2 Banc, R., Filip, L., Cozma-Petrut, A., Ciobarca, D., & Miere, D. (2024). Yellow and Red Synthetic Food Dyes and Potential Health Hazards: A Mini Review. *Bull. Univ. Agric. Sci. Vet. Med. Cluj-Napoca. Food Sci. Technol*, *81*, 1-17.

3 Lin, L., & Xu, J. (2022). Production of fungal pigments: Molecular processes and their applications. *Journal of Fungi*, *9*(1), 44.

4 Afroz Toma, M., Rahman, M. H., Rahman, M. S., Arif, M., Nazir, K. N. H., & Dufossé, L. (2023). Fungal pigments: Carotenoids, riboflavin, and polyketides with diverse applications. *Journal of Fungi*, *9*(4), 454.

5 Kirti, K., Amita, S., Priti, S., Mukesh Kumar, A., & Jyoti, S. (2014). Colorful world of microbes: carotenoids and their applications. *Advances in Biology*, *2014*(1), 837891.

6 Garcia-Rubio, R., de Oliveira, H. C., Rivera, J., & Trevijano-Contador, N. (2020). The fungal cell wall: Candida, Cryptococcus, and Aspergillus species. *Frontiers in microbiology*, *10*, 2993.

7 Lin, L., & Xu, J. (2022). Production of fungal pigments: Molecular processes and their applications. *Journal of Fungi*, *9*(1), 44.

8 Gomes, D. C. (2024). Fungal Pigments: Applications and Their Medicinal Potential. In *Fungi Bioactive Metabolites: Integration of Pharmaceutical Applications* (pp. 651-681). Singapore: Springer Nature Singapore.

9 Hernández, V. A., Galleguillos, F., Thibaut, R., & Müller, A. (2019). Fungal dyes for textile applications: testing of industrial conditions for wool fabrics dyeing. *The Journal of the Textile Institute*, *110*(1), 61-66.

10 Kalra, R., Conlan, X. A., & Goel, M. (2020). Fungi as a potential source of pigments: harnessing filamentous fungi. *Frontiers in Chemistry*, *8*, 369.

11 Hinsch, E. M. (2018). Oils Colored with Wood-Staining Fungal Pigments: Color Loss, Oxidation, and Structural Breakdown.

12 Saravanan, T. S., Gopikrishnan, V., Manikkam, R., Kaari, M., Annamalai, K. K., Song, J., & Soytong, K. (2024). Translational Value of Natural Pigments with Reference to Healthcare and Cosmetic Applications. In *Translational Research in Biomedical Sciences: Recent Progress and Future Prospects* (pp. 235-250). Singapore: Springer Nature Singapore.

13 Dufossé, L. (2018). Red colourants from filamentous fungi: are they ready for the food industry?. *Journal of Food Composition and Analysis*, *69*, 156-161.

14 Lee, C. H., Lee, C. L., & Pan, T. M. (2010). A 90-D toxicity study of Monascus-fermented products including high citrinin level. *Journal of food science*, *75*(5), T91-T97.

15 Stępień, Ł., Lalak-Kańczugowska, J., Witaszak, N., & Urbaniak, M. (2020). Fusarium secondary metabolism biosynthetic pathways: so close but so far away. *Co-evolution of secondary metabolites*, 211-247.

16 Lagashetti, A. C., Dufossé, L., Singh, S. K., & Singh, P. N. (2019). Fungal pigments and their prospects in different industries. *Microorganisms*, *7*(12), 604.

17 *Aspergillus sclertiorum* DPUA 585 produces neoaspergillic acid, which exhibits antibacterial activity against *Escherichia coli*, *Mycobacterium smegmatis*, and *Staphylococcus aureus*, as well as antifungal action against *Candida albicans*

18 Elkhateeb, W., & Daba, G. (2023). Fungal Pigments: Their Diversity, Chemistry, Food and Non-Food Applications. *Applied Microbiology*, *3* (3), 735-751.

19 Surendirakumar, K., Pandey, R. R., Muthukumar, T., Sathiyaseelan, A., Loushambam, S., & Seth, A. (2022). Characterization and biological activities of melanin pigment from root endophytic fungus, Phoma sp. RDSE17. *Archives of Microbiology*, *204*(3), 171.

20 Metibemu, D. S., & Ogungbe, I. V. (2022). Carotenoids in drug discovery and medicine: pathways and molecular targets implicated in human diseases. *Molecules*, *27*(18), 6005.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

भारतीय ज्ञान परम्परा के विविध आयाम

डॉ. शबनम खान
प्राध्यापक- हिन्दी विभाग
माता जीजाबाई शासकीय (स्वशासी)स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इंदौर

भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध आयामों पर प्रकाश डालने के पूर्व इसके मूल भाव को समझना आवश्यक है। मानवीय चेतना की एक महत्वपूर्ण मूल प्रवृत्ति है – ज्ञान की अभिलाषा। ज्ञान अर्थात गुरू द्वारा प्रदत्त सैद्धांतिक ज्ञान, अवलोकन या अनुभव द्वारा अर्जित तथ्य, विचार एवं तार्किक बोध। भारत का वृहद ज्ञान हमारे आध्यात्मिक देश के जड़-चेतन एवं वैचारिक धरातल में युग-युग से सतत प्रवाहित एवं समाहित वह ज्ञान है, जिसने भारत की निर्मल धरा को 'विश्वगुरु' की संज्ञा से विभूषित किया था। ज्ञान परंपरा से आशय 'एक स्वचलित ज्ञान श्रृंखला ' है। ज्ञान का निरंतर चला आता हुआ विकास क्रम एक अविरल धारा के रूप में ज्ञान-विज्ञान, प्रज्ञान,संज्ञान की हर शाखा-प्रशाखा को पोषित, पल्लवित एवं पुष्पित कर रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा विशेष रूप से प्राचीन भारतीय सभ्यता और वैभवपूर्ण संस्कृतिक विरासत के मूल्यों, धार्मिक और दार्शनिक विचारों, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, कला और साहित्य तथा अन्य विविध क्षेत्रों में सतत समृद्ध रही है। यह परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही है और भारतीय संस्कृति का मूल आधार भी है।

भारतीय ज्ञान परम्परा हमें 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय' की ओर प्रवृत्त करती है। इस प्राचीन ज्ञान अवधारणा की दिशा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास से समाज एवं राष्ट्र निर्माण की ओर निरंतर उन्मुख होती रही है। सुसंस्कृत ज्ञान में ढलकर ही संस्कारवान मनुष्य की संरचना होती है। संस्कारवान जन-मानस मिलकर सभ्य एवं विकसित समाज एवं राष्ट्र की अवधारणा की गढ़ते हैं। प्राचीन काल से ही भारत उच्च मानवीय मूल्यों एवं विशिष्ट अनुसंधान परम्पराओं का देश रहा है। भारतीय सनातन धर्म में वर्णित सभी तैतीस कोटि (प्रकार) के देवी-देवता भी कहीं-न-कहीं ज्ञान-प्रज्ञान के विविध मर्मों एवं निष्काम कर्मों को रेखांकित करते हैं। उनका संकेत रूप में, सत्यम शिवम सुंदरम के मंगल रूप में रहस्योद्घाटन करते हैं। ज्ञानी, ध्यानी, विज्ञानी महर्षियों ने ईश्वर की प्राप्ति के 108 मार्ग प्रतिपादित किए। ऐसा माना जाता है कि देवाधिदेव शिव ने उसमें चार अन्य मार्ग जोड़े। इस तरह कुल 112 मार्गों से ईश्वर की निर्मल आराधना की सुंदर अवधारणा को भारतीय ज्ञान परम्परा एवं दर्शन परंपरा के अंतर्गत समाहित किया गया। हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी को वसुधा का प्रतिरूप माना गया है।

जैसे धरा रत्नगर्भा होती है, वैसे ही नारी अपने अनेक रूपों में मानवीय गुण-रत्नों को जन्म देती है। देवी पार्वती या माता दुर्गा के अनेक रूप इन्हीं उच्च गुणों को प्रदर्शित करते हैं। भगवान विष्णु के दस अवतारों में संयुक्त उच्च मानवीय गुणों से युक्त महामानव ही जन-समुदाय को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं। उदात्त मानवीय गुणों से ही श्रेष्ठ एवं समृद्ध राष्ट्र की परिकल्पना साकार होती है।

श्रीमद्भागवत गीता, 108 उपनिषद, 4 वेद, 18 पुराण, 18 स्मृतियाँ, षड्दर्शन इत्यादि विशद ग्रंथ समूचे विश्व को भारतीय ऋषियों,मनीषियों की अन्यतम भेंट हैं।

"भारतीय ज्ञान परम्परा में गीता को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। समय के दबाओं में, रचना के इतिहास के रूपांतरण में किसी ग्रंथ विशेष की भूमिका पर भारतीय चिंतन परम्परा में पर्याप्त विचार किया गया है। इसमें वैश्विक स्तर पर सर्वाधिक विचार गीता पर हुआ है। इसलिए भारतीय संस्कृति में आरंभ से ही जिन मानवीय अथवा सामाजिक मूल्यों पर बल दिया गया, वे मूल्य किसी ग्रंथ विशेष में विश्लेषित हो, ऐसा विशेष ग्रंथ गीता ही है। ऐसा विचारक मानते हैं कि इस ग्रंथ के माध्यम से जीवन के लक्ष्य को ठीक से जानने-समझने में सहायता मिलती है। आज भी भारतीय चिंतन परम्परा को जानने-समझने के लिए गीता महत्वपूर्ण ग्रंथ है।"[1] आदि शंकराचार्य ने सर्वप्रथम गीता पर भाष्य लिखकर इसे अपने प्रस्थान त्रयी में प्रतिष्ठित किया। अल्पायु में ही शंकराचार्य ने 'ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य के साथ ही ग्यारह उपनिषदों यथा- ईश,केन,कठ,प्रश्न, मुण्डा, मांडुक्य,ऐतरेय,तैत्तिरीय, बृहदारण्यक और छांदोग्योपनिष्द तथा श्वेताश्वर उपनिषदों पर भाष्यों की रचना की। उन्होंने अद्वैत वेदांत की सार्थक अभिव्यंजना की तथा सांख्य दर्शन का मूल कारणवाद एवं मीमांसा दर्शन के मूल ज्ञान-कर्म समुच्चयवाद का तर्कसंगत खण्डन किया। कालांतर भक्तिकालीन आचार्यों रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्क, भास्कराचार्य, वल्लभाचार्य, आदि संतों द्वारा महान ग्रंथ गीता पर भाष्य लिखे गए। इन भाष्यों से ही अद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत जैसे दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ। आधुनिक युग के अन्य विचारकों स्वामी विवेकानंद, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, ओशो रजनीश इत्यादि ने गीता की व्याख्या अपने-अपने ढंग से की। "[2] गीता भारतीय धर्म और संस्कृति में सबसे जीवन्त स्वर है और प्रत्येक समय में सार्थक मानस इसमें अपना समाधान ढूँढता आया है। एक सार्थक रचना ही नहीं बल्कि किसी जीवन्त व्यक्ति की तरह प्रत्येक पीढ़ी को गीता अपनी ओर आमंत्रित करती है, नये संदर्भों के लिए प्रेरित करती है ताकि समय और समाज में नयी दीप्ति प्रकाशित हो। इस प्रकार चिंतकों के माध्यम से भी गीता का नवीन संदेश समाज को प्राप्त होता रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में चार वेदों और वेदांत का अत्यधिक महत्व है। भारतीय ज्ञान के क्षेत्र में वेदों का अत्यधिक महत्व है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'वेदों की ओर चलो' का मंत्र दिया। वेदांत का वास्तविक स्रोत भी वेद है। उसका तात्विक निरूपण करने वाले आचार्य वादरायण हैं। "महर्षि वादरायण के काल में वैदिक धर्मावलम्बियों में मुख्यतः तीन तत्व ज्ञान - कणादि का वैशेषिक दर्शन, गौतम का न्याय और कपिल का सांख्य दर्शन प्रचलित थे। इसमें कणाद भौतिकवाद का, कपिल द्वैत का तथा गौतम द्वैधीभाव का, अनास्था और अविश्वास का प्रचार कर रहे थे। इसके अतिरिक्त अवैदिक मतावलम्बियों में चार्वाक का लोकायत दर्शन, जैनों का अर्हत तथा बौद्धों का तथागत दर्शन प्रचलन में था। ये तीनों अवैदिक दर्शन न तो वेद को मानते थे न ही ईश्वर को।"[3] वस्तुतः भारतीय षड्दर्शन सभी तत्वज्ञानियों को आत्मचिंतन, आत्म मनन एवं आत्मविश्लेषण करने का का अद्वितीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। जहाँ न्याय दर्शन तर्क बुद्धि एवं समीक्षात्मक विवेचना पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, वहीं वैशेषिक दर्शन अणुओं-परमाणुओं के संयोजन-विखंडन,बहुगुणन का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं। सांख्य, योग, वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत दर्शन ने गहन दार्शनिकता का मर्म प्रकट किया है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' में पृथ्वी को माता मानकर सभी मनुष्यों को उसकी दिव्य संतान माना गया है। अतः सभी एक माता के ही संतान हैं, तब सोचकर देखिए भला कि यहाँ कौन ज्येष्ठ और कौन *कनिष्ठ कहलायेगा ? सभी की समान भाव से उत्पत्ति हुई।*

"तेअज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः।"
(ऋग्वेद, 5.59.6)

अर्थात् (पृथ्वी पुत्रों में) कोई ज्येष्ठ नहीं, कोई श्रेष्ठ नहीं, कोई कनिष्ठ भी नहीं, कोई निकृष्ट नहीं और कोई मध्यम श्रेणी का भी नहीं। सभी यहाँ एक समान हैं तथा परस्पर मिलकर समान भाव से, समानता के नैसर्गिक अधिकार के साथ उन्नति करते हैं।

हमारा वृहद वैदिक साहित्य भारतीय संस्कृति, सभ्यता और आध्यात्मिकता का मूल आधार है। वैदिक साहित्य में दार्शनिकता, नैतिकता, न्याय और व्यावहारिक शिक्षा का सहज,सरल और सुंदर तालमेल है। इसके साथ ही समरसता की गूढ़ समझ, पुरूष और प्रकृति का समन्वय तथा अलौकिक अंतर्दृष्टि का प्रज्ञान सहस्राब्दियों से भारतीय जीवन शैली को नव-आयाम देता रहा है। वेद, उपनिषद, दर्शन तथा विभिन्न मत हमारे साहित्य, कला, संगीत, खगोल, ज्योतिष, वास्तुकला, योग मुद्राएँ, समस्त क्रीड़ाएँ और समन्वित शासन पद्धति सहित विभिन्न क्षेत्रों को नई दिशा प्रदान करते रहे हैं।

आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, सुश्रुत, चरक जैसे प्राचीन भारतीय गणितज्ञों ,खगोलशास्त्रियों आयुर्वेद आचार्यों ने अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, चिकित्सा के विविध क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। विकीपीडिया के अनुसार "वराहमिहिर वेदों के ज्ञाता थे मगर वह अलौकिक में आंखे बंद करके विश्वास नहीं करते थे। उनकी भावना और मनोवृत्ति एक वैज्ञानिक की थी। अपने पूर्ववर्ती वैज्ञानिक आर्यभट्ट की तरह उन्होंने भी कहा कि पृथ्वी गोल है। विज्ञान के इतिहास में वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने कहा कि कोई शक्ति ऐसी है जो चीजों को जमीन के साथ चिपकाये रखती है। आज इसी शक्ति को गुरुत्वाकर्षण कहते है।"[4]

विकीपीडिया की जानकारी हमें बताती है कि "वराहमिहिर ने पर्यावरण विज्ञान (इकालोजी), जल विज्ञान (हाइड्रोलोजी), भूविज्ञान (जिआलोजी) के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ की। उनका कहना था कि पौधे और दीमक जमीन के नीचे के पानी को इंगित करते हैं। आज वैज्ञानिक जगत द्वारा उस पर ध्यान दिया जा रहा है। उन्होंने लिखा भी बहुत था। संस्कृत व्याकरण में दक्षता और छंद पर अधिकार के कारण उन्होंने स्वयं को एक अनोखी शैली में व्यक्त किया था। अपने विशद ज्ञान और सरस प्रस्तुति के कारण उन्होंने खगोल जैसे शुष्क विषयों को भी रोचक बना दिया है। जिससे उन्हें बहुत ख्याति मिली। उनकी पुस्तक पंचसिद्धान्तिका (पांच सिद्धांत), बृहत्संहिता, बृहज्जात्क (ज्योतिष) ने उन्हें फलित ज्योतिष में वही स्थान दिलाया है जो राजनीति दर्शन में कौटिल्य का, व्याकरण में पाणिनि का है।" प्राचीन समय में सौरमंडल पर आर्यभट्ट का ज्ञान अद्भुत था। यह ज्ञान अपने समय में सदियों आगे का ज्ञान था। सुश्रुत संहिता चिकित्सा और सर्जरी का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, वहीं चरक संहिता में आयुर्वेद का अद्वितीय ज्ञान-भंडार समाहित है।

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रणीत आष्टांगिक योग दर्शन आज वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित हो चुका है। मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिए योग व ध्यान की महत्ता स्वयंसिद्ध है। योग के महत्वपूर्ण आठ अंग- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हमें क्रमशः सर्वांगीण विकास की ओर अग्रसर होने का सन्मार्ग दिखाते हैं। "भारतीय संस्कृति और दर्शन में योग का विशिष्ट स्थान है। योग विद्या से संबंधित ज्ञान भारतीय प्राचीन ग्रंथों में अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है। इनमें वेद, पुराण, उपनिषद, श्रीमद्भागवत गीता आदि प्राचीन ग्रंथों में योग विद्या विद्यमान है।"[6] योग सूत्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि अपनी रचना 'योग सूत्र' के द्वितीय सूत्र में योग को परिभाषित करते हुए लिखते हैं -

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' (पतंजलि योग सूत्र 1/2)

अर्थात् चित्त या अंतःकरण की वृत्तियों से सर्वथा मुक्त हो जाना ही योग है। योग के दो रूप हैं - राजयोग और हठयोग। जिनका उद्देश्य मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करना है ।राज योग को योग दर्शन का उच्चतम और श्रेष्ठ आध्यात्मिक रूप माना जाता है। राज योग का विशुद्ध लक्ष्य समाधि (कैवल्य) प्राप्त होना है। जो निर्मल दिव्य चेतना या परमात्मा के साथ मिलन की उच्च स्थिति है। राजयोग के अभ्यास में सम्यक ध्यान, सहज एकाग्रता एवं संयत मानसिक अनुशासन शामिल है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में दीक्षित होकर अनेक संतों ने जन मानस को समरसता, भाई-चारा और समन्वय का मार्ग दिखाया है। ऐसे संतों में रामानंद, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, विट्ठलनाथ, गोरखनाथ, संत रविदास (रैदास), संत कबीर, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, दादूदयाल, संत रज्जब, सिंगा जी, गुरुनानक, नामदेव, मीराबाई, सहजोबाई इत्यादि प्रमुख हैं। कबीर की साखियाँ 'ज्ञान की आँख' कही जाती है। उन्होंने सबद और रमैनी द्वारा दिव्य आध्यात्मिक हठयोगिक रहस्यों को उजागर किया।

भारतीय ज्ञान-दर्शन समूचे विश्व के कल्याण की मंगल कामना से अभिप्रेरित एवं निदर्शित है-

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।"[7]

भारतीय ज्ञान परंपरा विशेष रूप से भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मूल्यों, धार्मिक और दार्शनिक विचारों, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, कला और साहित्य तथा अन्यान्य विविध क्षेत्रों में समृद्ध रही है। यह परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही है और भारतीय संस्कृति का पावन मंगलमय मूल आधार है।

भारतीय शिक्षा के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है - प्राचीन काल में शिक्षा का मूल उद्देश्य सर्वजन हिताय की भावना से सद्ज्ञान की प्राप्ति रहा है। इस उद्देश्य के अनुरुप ही शिक्षा का स्वरुप एवं विविध विषय निर्धारित किए जाते थे। आज के युग की महती आवश्यकता है अध्यात्म को विज्ञान से, परमार्थ को व्यवहार से, परंपरा को आधुनिकता से संयुक्त करते हुए वैयक्तिक, सामाजिक एवं वैश्विक जीवन की चुनौतियों के मध्य समरसता, समानता एवं सौहार्द्रता की पुनर्स्थापना के लिए एक सहज सूत्र को तलाशने की।

वर्तमान शैक्षणिक परिदृश्य को देखें तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आधार पर उच्च शिक्षा में शिक्षक-विद्यार्थी तथा शिक्षण-अधिगम के विभिन्न प्रतिमानों में गुणवत्ता लाने के लिए पाठ्यक्रमों में भारतीय ज्ञान परंपरा को समाहित किया जा रहा है। गुणवत्तायुक्त अध्ययन-अध्यापन गुणवत्तापूर्ण जीवन की नींव है। इसको ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की नवीन रूपरेखा बनाए जाने पर जोर दिया जा रहा है। यह हमारे देश के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। इसे जमीनी धरातल पर क्रियान्वित करने के लिए शिक्षाविद् एवं विद्यार्थियों का प्रयास इस दिशा में होना चाहिए कि देश की नींव को सशक्त बनाने में अपना सक्रिय योगदान प्रदान करें।

यह शुभ संकेत है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध आयामों के संदर्भ में समूचे देश भर में अनेक स्तरों पर निरंतर राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं वेबीनार आयोजित किए जा रहे हैं।

******

संदर्भ ग्रंथ :-

1.भाषा और संस्कृति, स्नातक द्वितीय वर्ष, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ- 1
वही, पृष्ठ-3
भाषा और संस्कृति, स्नातक प्रथम वर्ष, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, पृष्ठ-74
वराहमिहिर, विकीपीडिया, गूगल खोज
वही
डा॰. ज्योति जुनगरे, योग एवं ध्यान, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ-5
हरित संदेश, Greenmesg.org, गूगल खोज

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

बालिकाओं के शैक्षिक विकास में महात्मा गांधी का योगदान

रागिनी गौतम
असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड विभाग
श्री अग्रसेन महिला महाविद्यालय, आजमगढ़ (उ.प्र.)

सारांश- महात्मा गांधी ने शिक्षा को भारतीय समाज के नैतिक, सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण का आधार माना। उनके विचार में स्त्री-शिक्षा केवल साक्षरता या डिग्री प्राप्ति तक सीमित न होकर आत्मनिर्भरता, नैतिक चेतना, सामाजिक सहभागिता और राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। गांधीजी का प्रसिद्ध कथन— "एक पुरुष को शिक्षित करने से एक व्यक्ति शिक्षित होता है, परंतु एक स्त्री को शिक्षित करने से पूरा परिवार शिक्षित होता है"— उनके स्त्री-शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण का सार प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में बालिकाओं के शैक्षिक विकास के संदर्भ में गांधीजी के विचारों, उनकी शिक्षा-दृष्टि, सामाजिक असमानताओं के प्रति उनके चिंतन तथा समकालीन परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासंगिकता का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द: स्त्री-शिक्षा, नयी तालीम, आत्मनिर्भरता, ग्राम पुनर्निर्माण, कौशल विकास, लोकविद्या, महिला सशक्तिकरण।

प्रस्तावना-भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति ऐतिहासिक रूप से विरोधाभासी रही है। एक ओर उन्हें 'शक्ति' और 'माँ' के रूप में पूजनीय माना गया, वहीं दूसरी ओर शिक्षा, संपत्ति और निर्णय-निर्धारण के अधिकारों से वंचित रखा गया। सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक निर्भरता और पुरुषप्रधान मानसिकता ने स्त्रियों के शैक्षिक विकास को बाधित किया। महात्मा गांधी ने इस विडंबना को समझते हुए स्त्री-शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का अनिवार्य साधन माना। उनके लिए शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं थी, बल्कि व्यक्ति के समग्र विकास—शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति—का माध्यम थी। गांधीजी का विश्वास था कि राष्ट्र का वास्तविक उत्थान तभी संभव है जब उसकी आधी आबादी—अर्थात महिलाएँ—शिक्षित, जागरूक और आत्मनिर्भर हों। भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति ऐतिहासिक रूप से बहुआयामी रही है। एक ओर उसे 'शक्ति' और 'मातृत्व' का प्रतीक माना गया, तो दूसरी ओर सामाजिक संरचना ने उसे शिक्षा, संपत्ति और निर्णय-निर्माण के अधिकारों से वंचित रखा। स्त्री-शिक्षा का प्रश्न केवल साक्षरता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और मानवाधिकारों से जुड़ा हुआ मुद्दा है। महात्मा गांधी ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम माना। उनके अनुसार शिक्षा व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा—तीनों का समन्वित विकास करती है। उन्होंने स्त्री -शिक्षा को राष्ट्रनिर्माण की अनिवार्य शर्त बताया। गांधीजी का यह कथन कि "एक स्त्री को शिक्षित करने से पूरा परिवार शिक्षित होता है" इस तथ्य को रेखांकित करता है कि महिला शिक्षा समाज की आधारशिला है। गांधीजी की शिक्षा-दृष्टि केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण,आत्मनिर्भरता, श्रम की गरिमा और नैतिक मूल्यों पर आधारित थी। वे शिक्षा को ग्राम पुनर्निर्माण और स्वावलंबन की व्यापक योजना का अंग मानते थे। उनके अनुसार यदि महिलाएँ शिक्षित और आत्मनिर्भर होंगी, तो सामाजिक रूढ़ियाँ स्वतः समाप्त होंगी और समाज में समता की स्थापना होगी।

गांधीजी की शिक्षा-दृष्टि और स्त्री-शिक्षा- गांधीजी ने 'नयी तालीम' (Basic Education) की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें शिक्षा को श्रम, उत्पादन और नैतिक मूल्यों से जोड़ा गया। उनका मानना था कि शिक्षा जीवन से जुड़ी होनी चाहिए, न कि केवल परीक्षा-उन्मुख।स्त्री-शिक्षा के संदर्भ में उनके प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं—

(क) समग्र विकास की शिक्षा- गांधीजी का मत था कि शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिए। बालिकाओं को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जो उनमें आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करे।

(ख) समानता पर आधारित शिक्षा- उन्होंने स्त्री और पुरुष को एक ही सत्ता के दो रूप माना। उनके अनुसार महिलाओं को स्वयं को पुरुषों से हीन या आश्रित नहीं समझना चाहिए। शिक्षा के माध्यम से यह मानसिक दासता समाप्त की जा सकती है।

(ग) जनसामान्य के अनुकूल शिक्षा-गांधीजी ने शिक्षा को ग्रामीण भारत की आवश्यकताओं से जोड़ने पर बल दिया। उनका मानना था कि शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो जो व्यापक जनसमुदाय, विशेषकर ग्रामीण महिलाओं, के जीवन को उन्नत कर सके।

शिक्षा और सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन

गांधीजी भली-भाँति जानते थे कि महिलाओं की दर्दशा का कारण केवल अशिक्षा नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना में निहित असमानता है। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज, संपत्ति में अधिकार की कमी आदि समस्याएँ स्त्री-शिक्षा में बाधक थीं।

उन्होंने कहा कि शिक्षित महिलाएँ समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और रूढ़ियों के विरुद्ध रचनात्मक विद्रोह करें। यह विद्रोह हिंसात्मक नहीं, बल्कि नैतिक और तर्कसंगत होना चाहिए। शिक्षा महिलाओं को सामाजिक बंधनों से मुक्त करने का माध्यम बन सकती है।

शिक्षा और आत्मनिर्भरता का संबंध= गांधीजी की शिक्षा-दृष्टि में आत्मनिर्भरता का विशेष स्थान है। वे मानते थे कि शिक्षा व्यक्ति को रोजगारोन्मुख बनाये।

(क) व्यावसायिक शिक्षा का महत्व- माध्यमिक स्तर से ही कौशल आधारित पाठ्यक्रम आरंभ किये जाएँ। हस्तशिल्प, कृषि-आधारित उद्योग, बुनाई, सिलाई, कढ़ाई, खाद्य प्रसंस्करण आदि को शिक्षा में शामिल किया जाए। स्वास्थ्य कार्यकर्ता, प्राथमिक चिकित्सा, मिडवाइफरी जैसे क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जाए।

(ख) लोकविद्या और स्वदेशी-गांधीजी ने लोकविद्या और स्वदेशी उद्योगों को बढ़ावा दिया। उनका मानना था कि स्थानीय संसाधनों पर आधारित शिक्षा से ग्रामीण बालिकाएँ आत्मनिर्भर बन सकती हैं।

(ग) आर्थिक स्वतंत्रता- आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री-सशक्तिकरण की कुंजी है। जब महिलाएँ आर्थिक रूप से सक्षम होंगी, तभी वे सामाजिक और पारिवारिक निर्णयों में प्रभावी भूमिका निभा सकेंगी।

शिक्षा में लैंगिक असमानता: एक विश्लेषण-स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति हुई, परंतु लैंगिक असमानता बनी रही। 1991 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता दर पुरुषों की तुलना में काफी कम थी। हालाँकि प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं के नामांकन में वृद्धि हुई और विद्यालय छोड़ने की दर में कमी आई, फिर भी उच्च शिक्षा और तकनीकी क्षेत्रों में उनकी भागीदारी सीमित रही। इस स्थिति के प्रमुख कारण—

- आर्थिक तंगी
- सामाजिक रूढ़ियाँ
- विद्यालयों की कमी
- सुरक्षा संबंधी चिंताएँ
- विवाह को प्राथमिकता

गांधीजी के विचारों के आलोक में यह स्पष्ट है कि शिक्षा को जीवनोपयोगी और समाजोपयोगी बनाकर ही इस असमानता को कम किया जा सकता है।

कार्यस्थल और सामाजिक संरचना में सुधार की आवश्यकता

उच्च शिक्षित महिलाओं का एक बड़ा वर्ग विवाह और पारिवारिक दायित्वों के कारण रोजगार क्षेत्र से बाहर हो जाता है। यह राष्ट्र की मानव संसाधन शक्ति का अपूर्ण उपयोग है।

समाधान के रूप में—

- कार्यस्थलों पर शिशु देखभाल केंद्र स्थापित किये जाएँ।
- लचीले कार्य-घंटे और अंशकालिक रोजगार उपलब्ध हों।
- सुरक्षित परिवहन की व्यवस्था हो।
- सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाए।

ये उपाय गांधीजी की उस सोच के अनुरूप हैं जिसमें समाज की संपूर्ण व्यवस्था स्त्री-उत्थान के लिए उत्तरदायी मानी गई है।

समकालीन संदर्भ में गांधीवादी शिक्षा की प्रासंगिकता-आज 'आत्मनिर्भर भारत', 'कौशल विकास', 'डिजिटल शिक्षा' जैसे कार्यक्रम गांधीजी की शिक्षा-दृष्टि से साम्य रखते हैं। यदि बालिकाओं को प्रारंभिक स्तर से ही डिजिटल साक्षरता, उद्यमिता और व्यावसायिक कौशल प्रदान किये जाएँ, तो वे राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। गांधीजी का लक्ष्य केवल शिक्षित महिला नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों से युक्त, सामाजिक रूप से जागरूक और आत्मनिर्भर महिला का निर्माण था।

सैद्धांतिक रूपरेखा -इस शोधपत्र का सैद्धांतिक आधार निम्नलिखित अवधारणाओं पर आधारित है—

(क) गांधीवादी शिक्षा-दर्शन -गांधीजी की 'नयी तालीम' (Basic Education) की अवधारणा के अनुसार—

- शिक्षा जीवनोपयोगी और श्रम-संबद्ध होनी चाहिए।
- शिक्षा का उद्देश्य आत्मनिर्भर नागरिक बनाना है।
- नैतिकता, सत्य और अहिंसा शिक्षा के मूल तत्व हैं।

(ख) मानव पूंजी सिद्धांत -यह सिद्धांत बताता है कि शिक्षा में निवेश व्यक्ति की उत्पादकता और राष्ट्र की आर्थिक उन्नति को बढ़ाता है। स्त्री-शिक्षा में निवेश से परिवार और समाज दोनों को दीर्घकालिक लाभ मिलता है।

(ग) नारीवादी दृष्टिकोण -नारीवादी विचारधारा के अनुसार शिक्षा लैंगिक असमानता को समाप्त करने का सशक्त माध्यम है। गांधीजी ने स्त्री को पुरुष के समान अधिकार और सम्मान देने की वकालत की, जो नारीवादी दृष्टिकोण से सामंजस्य रखती है।

(घ) सामाजिक पुनर्निर्माण सिद्धांत - इस सिद्धांत के अनुसार शिक्षा समाज में व्याप्त असमानताओं को दूर करने का माध्यम है। गांधीजी ने शिक्षा को सामाजिक पुनर्निर्माण का उपकरण माना।

शोध-पद्धति -यह शोधपत्र मुख्यतः गुणात्मक (Qualitative) और विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धति पर आधारित है।

(क) अनुसंधान का प्रकार

वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन।

ऐतिहासिक दस्तावेजों और गांधी साहित्य का अध्ययन।

(ख) स्रोत—प्राथमिक स्रोत: गांधीजी के लेख, भाषण, 'यंग इंडिया', 'हरिजन' आदि पत्रिकाएँ।

द्वितीयक स्रोत: पुस्तकों, शोध-पत्रों, जनगणना रिपोर्टों एवं शिक्षा संबंधी सरकारी दस्तावेजों का अध्ययन।

(ग) डेटा विश्लेषण-

संग्रहित सामग्री का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है, ताकि स्त्री-शिक्षा के संदर्भ में गांधीजी के योगदान को स्पष्ट किया जा सके।

शोध-परिकल्पनाएँ (Hypotheses)

1. गांधीजी की शिक्षा-दृष्टि बालिकाओं के समग्र विकास को प्रोत्साहित करती है।
2. व्यावसायिक एवं कौशल आधारित शिक्षा बालिकाओं की आत्मनिर्भरता में सहायक है।
3. स्त्री-शिक्षा में वृद्धि से सामाजिक एवं आर्थिक असमानता में कमी आती है।
4. गांधीवादी शिक्षा सिद्धांत वर्तमान महिला सशक्तिकरण कार्यक्रमों के लिए प्रासंगिक है।

बालिकाओं के शैक्षिक विकास में गांधीजी का योगदान

(क) समता और आत्मसम्मान की भावना-गांधीजी ने स्त्री को पुरुष के समकक्ष माना। उन्होंने महिलाओं को सामाजिक अन्याय के विरुद्ध जागरूक होने का आह्वान किया।

(ख) व्यावसायिक शिक्षा का समर्थन-उन्होंने शिक्षा को उत्पादन और श्रम से जोड़ा। बालिकाओं को कौशल आधारित शिक्षा देकर आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करने पर बल दिया।

(ग) ग्रामीण महिलाओं के लिए शिक्षा-गांधीजी ने ग्रामीण भारत की महिलाओं की समस्याओं को समझते हुए शिक्षा को उनके जीवन से जोड़ने की बात कही।

(घ) नैतिक और मूल्यपरक शिक्षा-उन्होंने शिक्षा में नैतिक मूल्यों—सत्य, अहिंसा, करुणा—को प्रमुख स्थान दिया।

निष्कर्ष-महात्मा गांधी का स्त्री-शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण न केवल दूरदर्शी और मानवतावादी था, बल्कि वह भारतीय समाज की वास्तविक आवश्यकताओं और चुनौतियों पर आधारित भी था। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति तब तक संभव नहीं है, जब तक उसकी महिलाएँ शिक्षित, जागरूक और आत्मनिर्भर न हों। उनके अनुसार, स्त्री-शिक्षा केवल अक्षरज्ञान तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसमें नैतिक मूल्यों, आत्मसम्मान, स्वावलंबन तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का समावेश होना चाहिए। गांधीजी ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम माना और यह विश्वास व्यक्त किया कि शिक्षित महिला न केवल अपने परिवार का, बल्कि पूरे समाज का निर्माण करती है। उन्होंने 'नैतिक शिक्षा' और 'कार्य-आधारित शिक्षा' (बेसिक एजुकेशन) पर विशेष बल दिया, जिससे महिलाएँ आर्थिक रूप से सशक्त बन सकें और अपने अधिकारों के प्रति सजग रह सकें। वर्तमान संदर्भ में, जब समाज तेजी से बदल रहा है और महिलाओं की भूमिका हर क्षेत्र में बढ़ रही है, गांधीजी के विचार और भी प्रासंगिक हो जाते हैं। यदि शिक्षा को जीवनोपयोगी, मूल्यपरक, कौशल-आधारित तथा रोजगारोन्मुख बनाया जाए, तो बालिकाएँ न केवल आत्मनिर्भर बनेंगी, बल्कि वे नेतृत्वकर्ता, नवप्रवर्तक और सामाजिक परिवर्तन की वाहक भी बन सकती हैं। अतः यह आवश्यक है कि नीति-निर्माता, शिक्षाविद् और समाज मिलकर गांधीजी के सिद्धांतों को आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में समाहित करें, ताकि महिला शिक्षा को एक सशक्त दिशा मिल सके। इस प्रकार, स्त्री-शिक्षा के माध्यम से एक समतामूलक, सशक्त और प्रगतिशील समाज की स्थापना संभव हो सकेगी, जो राष्ट्र के समग्र और सतत विकास में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

****

संदर्भ सूची

1. गांधी, महात्मा (1929). *Young India*.
2. गांधी, महात्मा (1937). *Basic Education (Nai Talim)*.
3. गांधी, महात्मा. *Harijan*. विभिन्न अंक।
4. राधाकृष्णन, एस. (1967). *Great Women of India*.
5. Census of India (1991). Government of India.
6. Aggarwal, J.C. (2009). *Development of Education System in India*.
7. Nanda, B.R. (1995). *Mahatma Gandhi: A Biography*.
8. Government of India. (Va

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

छापा कला में भारतीय महिला छापाकारों का योगदान

आशुतोष त्रिपाठी
शोधार्थी
ड्राइंग और पेंटिंग विभाग
के.आर.जी. कॉलेज, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, (मध्य प्रदेश)

(प्रो.) डॉ. जया जैन
शोध निर्देशिका
विभागाध्यक्ष- ड्राइंग और पेंटिंग विभाग,
के.आर.जी. कॉलेज, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, (मध्य प्रदेश)

सारांश - छापा कला, जिसे प्रिंटमेकिंग या ग्राफिक आर्ट के रूप में जाना जाता है, कला के इतिहास में यह एक लोकतांत्रिक और बहुआयामी माध्यम रही है। इस शोध पत्र में छापा कला के क्षेत्र में महिला छापाकारों के योगदान का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वैश्विक और भारतीय संदर्भ दोनों शामिल हैं। छापा कला की उत्पत्ति चीन से हुई और यूरोप में 15वीं शताब्दी में विकसित हुई, लेकिन महिलाओं की भागीदारी 18वीं शताब्दी से उल्लेखनीय रूप से बढ़ी, जहां इसे सामाजिक रूप से स्वीकार्य माध्यम माना गया। वैश्विक स्तर पर कैथे कोल्विट्ज जैसी कलाकारों ने युद्ध, गरीबी और मातृत्व जैसे सामाजिक मुद्दों पर अपनी छाप छोड़ी, जबकि भारतीय संदर्भ में अनुपम सूद, जरिना हाशमी, देवयानी कृष्णा और नैना दलाल जैसी छापाकारों ने लिंग, प्रवास, पहचान और दैनिक जीवन की संवेदनाओं को उकेरा। यह पत्र ऐतिहासिक विकास, प्रमुख कलाकारों के जीवन और कार्यों, तकनीकी नवाचारों, चुनौतियों तथा समकालीन प्रभाव का परीक्षण करता है। महिलाओं ने छापा कला को न केवल तकनीकी रूप से समृद्ध किया बल्कि इसे नारीवादी विमर्श, सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत अनुभवों का वाहक बनाया। छापा कला की बहुलता (मल्टीपल एडिशन) ने इन कलाकारों को व्यापक दर्शकों तक पहुंचने में सक्षम बनाया, जिससे कला लोकतंत्रीकरण हुआ। भारतीय संदर्भ में 'नभ स्पर्श: भारतीय महिला छापाकार' जैसी प्रदर्शनियां इस योगदान को उजागर करती हैं, जिसमें लगभग 150 महिला कलाकारों के कार्य शामिल हैं। शोध से स्पष्ट होता है कि महिलाओं ने पुरुष-प्रधान कार्यशालाओं और सामाजिक बाधाओं के बावजूद छापा कला को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया। उनके कार्यों में शरीर की संवेदनशीलता, घर की अवधारणा, विभाजन की पीड़ा और पर्यावरणीय चेतना प्रमुख हैं। निष्कर्षतः, महिला छापाकारों का योगदान न केवल कला इतिहास को समृद्ध करता है बल्कि समकालीन समाज में लिंग समानता और सांस्कृतिक संवाद को मजबूत करता है। यह शोध मौलिक है क्योंकि इसमें उपलब्ध स्रोतों का संश्लेषण कर नए विश्लेषणात्मक ढांचे प्रस्तुत किए गए हैं, जो भविष्य के अध्ययनों के लिए आधार प्रदान करेगा।

बीज शब्द- छापा कला, महिला छापाकार, अनुपम सूद, जरिना हाशमी, कैथे कोल्विट्ज, भारतीय आधुनिक कला, नारीवादी विमर्श, इंटाग्लियो प्रिंटिंग, प्रवास और पहचान, सामाजिक टिप्पणी, नभ स्पर्श प्रदर्शनी।

परिचय- छापा कला मानव सभ्यता की सबसे पुरानी और प्रभावशाली कला विधाओं में से एक है। यह लकड़ी की ब्लॉक प्रिंटिंग से शुरू होकर इंटाग्लियो, लिथोग्राफी, वुडकट, एक्वाटिंट और डिजिटल हाइब्रिड तक विकसित हुई। छापा कला का मुख्य आकर्षण इसकी पुनरुत्पादकता है, जो एक कलाकृति को कई प्रतियों में उपलब्ध कराती है और इसे लोकतांत्रिक बनाती है। लेकिन लंबे समय तक इसे चित्रकला की तुलना में 'दूसरी श्रेणी' का माध्यम माना जाता रहा। इस माध्यम में महिलाओं का प्रवेश और योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उनकी रचनात्मकता, संघर्ष और सामाजिक जागरूकता को प्रतिबिंबित करता है।भारतीय संदर्भ में छापा कला १६वीं शताब्दी में पुर्तगाली मिशनरियों के साथ आई और १८वीं-१९वीं शताब्दी में प्रेसिडेंसी शहरों में लोकप्रिय हुई। २०वीं शताब्दी के मध्य में कला संस्थानों जैसे दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट और बड़ौदा के एमएसयू में इसका विकास हुआ। महिलाओं ने इस विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, खासकर जब पारंपरिक चित्रकला में उनकी पहुंच सीमित थी। यह शोध पत्र छापा कला में महिला छापाकारों के योगदान को वैश्विक और भारतीय परिप्रेक्ष्य में जांचता है। उद्देश्य है मौलिक विश्लेषण प्रस्तुत करना, जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों, कलाकारों के कार्यों और सामाजिक प्रभाव का संश्लेषण शामिल है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वैश्विक संदर्भ- छापा कला की शुरुआत में महिलाओं की भूमिका सीमित थी, लेकिन १८वीं शताब्दी से यह बदलने लगी। यूरोप में कुलीन वर्ग की महिलाओं के लिए छापा कला सामाजिक रूप से स्वीकार्य थी क्योंकि यह घरेलू वातावरण में की जा सकती थी। क्वीन विक्टोरिया ने परिवार के चित्रों की एचिंग बनाई, जबकि मैडम डी पॉम्पादोर ने उत्कृष्ट एनग्रेविंग की। एलिजाबेथ ब्लैकवेल की 'ए क्यूरियस हर्बल' (१७३७) जैसे कार्यों ने वैज्ञानिक चित्रण में योगदान दिया।

१९वीं-२०वीं शताब्दी में महिलाओं ने छापा कला को सामाजिक टिप्पणी का माध्यम बनाया। जर्मन कलाकार कैथे कोल्विट्ज (१८६७-१९४५) इस क्षेत्र की सबसे प्रमुख हस्ती हैं उन्होंने लिथोग्राफी, एचिंग और वुडकट का उपयोग कर युद्ध, गरीबी और मातृत्व की पीड़ा को चित्रित किया। उनके 'वीवर्स रिवोल्ट' (१८९३-९७) और 'वार' (१९२२-२३) चक्रों में महिलाएं विद्रोह और संघर्ष की प्रतीक हैं। कोल्विट्ज प्रूशियन एकेडमी ऑफ आर्ट्स की पहली महिला सदस्य बनीं, लेकिन नाजी शासन में उनके कार्यों पर प्रतिबंध लगा। उनके छापों ने जन-आंदोलनों को प्रेरित किया क्योंकि ये सस्ते और बहुल थे. अमेरिका में प्रोविंसटाउन वुडकट ग्रुप और WPA (वर्क्स प्रोग्रेस एडमिनिस्ट्रेशन) की महिलाओं ने व्हाइट-लाइन वुडकट और सोशल रियलिज्म विकसित किया। १९४० के दशक में एटेलियर १७ (पेरिस/न्यूयॉर्क) में महिलाओं ने अमूर्त छापा कला में क्रांति लाई। लुईस नेवेलसन जैसी कलाकारों ने प्लेट पर 'गंदगी' छोड़कर पारंपरिक स्वच्छता की अवधारणा को चुनौती दी। इन योगदानों ने छापा कला को तकनीकी और विषयगत रूप से समृद्ध किया, जहां महिलाओं ने लिंग भूमिकाओं को तोड़ा।

भारतीय छापा कला में महिला छापाकारों का विकास भारत में छापा कला का आधुनिकीकरण २०वीं शताब्दी के मध्य में हुआ। प्रारंभिक महिला छापाकारों में देवयानी कृष्णा (१९१०-२०००) प्रमुख हैं,

जिन्होंने अमूर्त एचिंग और इंटाग्लियो में योगदान दिया। १९६०-७० के दशक में दिल्ली और बड़ौदा की कला संस्थाओं ने महिलाओं को प्रशिक्षण दिया। गरही स्टूडियो जैसी साझा कार्यशालाएं महत्वपूर्ण रहीं, जहां महिलाओं ने प्रेस साझा कर काम किया।

'नभ स्पर्श: भारतीय महिला छापाकार' (एनजीएमए, २०२४) प्रदर्शनी ने लगभग १५० महिला छापाकारों के कार्यों को एक मंच दिया इसमें वरिष्ठ और समकालीन दोनों शामिल हैं। यह प्रदर्शनी छापा कला की श्रमसाध्य प्रकृति को रेखांकित करती है – भारी प्रेस, एसिड का उपयोग और साझा संसाधन। महिलाओं ने इसे अपनी संवेदनशीलता से भर दिया।

प्रमुख भारतीय महिला छापाकार और उनके योगदान अनुपम सूद (जन्म १९४४) भारतीय छापा कला की अग्रणी हैं। पंजाब के होशियारपुर में जन्मी सूद ने दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट से शिक्षा ली और १९७१ में ब्रिटिश काउंसिल स्कॉलरशिप पर स्लेड स्कूल ऑफ फाइन आर्ट्स, लंदन में उन्नत इंटाग्लियो तकनीक सीखी। १९७७ से २००३ तक उन्होंने अपनी अल्मा मेटर में पढ़ाया। उनके कार्यों में मानव शरीर की जटिलता प्रमुख है – 'पर्सोना' (१९८८) जैसे एचिंग और एक्वाटिंट में वे महिलाओं की कमजोरी और शक्ति दोनों को दर्शाती हैं । उनके पिता के बॉडीबिल्डिंग प्रेम और थिएटर प्रभाव से प्रेरित होकर उन्होंने शरीर को बहुस्तरीय प्रतीक बनाया। सूद ने छापा कला को भारत में मुख्यधारा का माध्यम बनाया और छात्रों को प्रेरित किया। उनके कार्य विक्टोरिया एंड अल्बर्ट म्यूजियम, एनजीएमए और जापान के फुकुओका म्यूजियम में संग्रहीत हैं। जरिना हाशमी (१९३७-२०२०), जिन्हें जरिना के नाम से जाना जाता है, अलिगढ़ में जन्मीं। गणित की डिग्री के बाद उन्होंने बैंकॉक, पेरिस (एटेलियर १७) और टोक्यो में छापा सीखा। उनकी वुडब्लॉक और इंटाग्लियो छापों में घर, प्रवास और विभाजन की पीड़ा है। 'होम इज ए फॉरेन प्लेस' श्रृंखला और 'डिवाइडिंग लाइन' (२००१) में रेडक्लिफ लाइन की हिंसा को न्यूनतम रेखाओं से उकेरा गया। उर्दू लिपि और ज्यामितीय रूप उनके कार्यों में सांस्कृतिक पहचान को जोड़ते हैं। जरिना ने नारीवादी कला संस्थानों में काम किया और न्यूयॉर्क फेमिनिस्ट आर्ट इंस्टीट्यूट की बोर्ड सदस्य रहीं। उनके कार्यों ने वैश्विक प्रवासी अनुभव को छापा कला में स्थापित किया ।

अन्य उल्लेखनीय कलाकार: · नैना दलाल: दैनिक जीवन की महिलाओं पर लिथोग्राफी और कोलाग्राफी। उन्होंने 'वुमन एंड प्रिंटमेकिंग इन इंडिया' निबंध लिखा। रिनी धुमाल (१९४८-२०२१): भारतीय लोक और आधुनिकता का मेल, रियलिज्म आधारित। · गोगी सरोज पाल: एचिंग और लिथोग्राफी में स्त्रीत्व की संवेदना, मातृत्व और कलाकार जीवन के पत्र। · कंचन चंदर: सेमी-अब्स्ट्रैक्ट लिथोग्राफी। ये कलाकारों ने छापा को व्यक्तिगत इतिहास का दस्तावेज बनाया।

विषयवस्तु, तकनीकी नवाचार और नारीवादी परिप्रेक्ष्य- महिला छापाकारों ने विषयवस्तु में नारी शरीर, घरेलू क्षेत्र, लिंग असमानता और सामाजिक न्याय को केंद्र में रखा। सूद की रचनाएं शरीर को 'इतिहास का भंडार' मानती हैं, जबकि जरिना की छापें 'घर' को राजनीतिक अवधारणा बनाती हैं। कोल्विट्ज ने मातृत्व को विद्रोह का प्रतीक बनाया। तकनीकी रूप से उन्होंने इंटाग्लियो (जिंक प्लेट, एसिड बाइटिंग), वुडकट (रिदमिक पॉजिटिव-नेगेटिव स्पेस) और लिथोग्राफी में महारत हासिल की। भारत में साझा स्टूडियो ने सहयोग बढ़ाया। नारीवादी दृष्टि से 'व्यक्तिगत ही राजनीतिक है' – उनके कार्यों ने घरेलू श्रम, शरीर की स्वायत्तता और प्रवास की पीड़ा को उजागर किया। छापों की बहुलता ने इन मुद्दों को जन-जन तक पहुंचाया।

चुनौतियां और समग्र प्रभाव- चुनौतियां अनेक थीं: भारी प्रेस संचालन, एसिड का खतरा, पुरुष-प्रधान कार्यशालाएं और समाज की अपेक्षाएं। भारत में महिलाओं को पहले प्रशिक्षण सीमित था। फिर भी उन्होंने स्टूडियो स्थापित किए, पढ़ाया और प्रदर्शनियां आयोजित कीं। प्रभाव: छापा कला को मुख्यधारा में लाया, नई पीढ़ी को प्रेरित किया और सांस्कृतिक संवाद बढ़ाया। समकालीन समय में डिजिटल-हाइब्रिड छापे महिलाओं द्वारा पर्यावरण और डिजिटल लिंग मुद्दों पर नए कार्य कर रहे हैं।

निष्कर्ष- छापा कला में महिला छापाकारों का योगदान अपरिहार्य है। उन्होंने माध्यम को तकनीकी, विषयगत और सामाजिक रूप से परिवर्तित किया। वैश्विक स्तर पर कोल्विट्ज ने सामाजिक न्याय का मार्ग प्रशस्त किया, जबकि भारत में सूद और हाशमी ने सांस्कृतिक पहचान और लिंग विमर्श को समृद्ध किया। 'नभ स्पर्श' जैसी पहलों ने इस विरासत को संरक्षित किया। भविष्य में महिलाएं डिजिटल और पारंपरिक का मेल कर नई दिशाएं तय करेंगी। यह योगदान न केवल कला इतिहास का हिस्सा है बल्कि समानता की लड़ाई का प्रतीक भी। शोध से स्पष्ट है कि महिलाओं ने छापा कला को अपनी आवाज दी और दुनिया को देखने का नया तरीका सिखाया।

****

संदर्भ सूची :-

1. "Anupam Sud." *Wikipedia*, Wikimedia Foundation, 12 Apr. 2026, en.wikipedia.org/wiki/Anupam_Sud.
2. "Indian Women Printmakers Take Centre Stage at NGMA's Landmark Show." *The Federal*, 5 Sept. 2024, thefederal.com/category/features/indian-women-printmakers-take-centre-stage-at-ngmas-landmark-show-in-delhi-143146.
3. *Käthe Kollwitz*. National Museum of Women in the Arts, nmwa.org/art/artists/kathe-kollwitz/. Accessed 12 Apr. 2026.
4. *Nabh Sparsh: Indian Women Printmakers*. Exhibition catalogue, National Gallery of Modern Art, New Delhi, 2024.
5. "Naina Dalal." Gallerie Splash, www.galleriesplash.com/artists/246/Naina-Dalal. Accessed 12 Apr. 2026.
6. Sengupta, P., editor. *The Printed Picture: Four Centuries of Indian Printmaking*. Exhibition catalogue, Asia Society, 2012.
7. "Zarina (Artist)." *Wikipedia*, Wikimedia Foundation, 12 Apr. 2026, en.wikipedia.org/wiki/Zarina_(artist).
8. Zarina. *Home Is a Foreign Place*. 1999. The Metropolitan Museum of Art, New York, www.metmuseum.org/essays/in-memoriam-zarina-hashmi. Accessed 12 Apr. 2026.

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

जनवरी - मार्च - 2026

https://shodhutkarsh.com

त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका - 'शोध उत्कर्ष'